राष्ट्रीय समस्या और समाधान

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी

श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक

श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन

परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

परामर्श मण्डल

श्री नरेन्द्र कोहली • श्री इन्द्रेश कुमार

श्री बालकृष्ण नायक • श्री बालमुकुन्द

श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' • डा. कुसुमलता केडिया

श्री आनन्द मिश्र 'अभय' • डा. मदनलाल ओबराय

श्री जुगलकिशोर जैथलिया • डा. बद्री प्रसाद पंचोली

श्री सीताराम महर्षि • श्री तोलाराम लाठ

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, भक्तानन्द
शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
A/3 आर्य नगर
एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
मुरलीपुरा, जयपुर 302039
फोन : 0141-2233765
मो. : 09829547773

ज्ञान गंगा प्रकाशन
पाथेय भवन,
बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
दूरभाष : 0141-2371563

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
नई दिल्ली 110055
फोन : 011-23675667

जागृति प्रकाशन
श्री कृष्णानन्द सागर
एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
दूरभाष : 0120-2538101
मो. : 09871143768

ISBN 978-81-929055-5-6

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2013 ई.
परिवर्धित संस्करण : 2017 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : दो सौ पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरी शंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

RASHTRIY SAMASYA AUR SAMADHAN (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 250

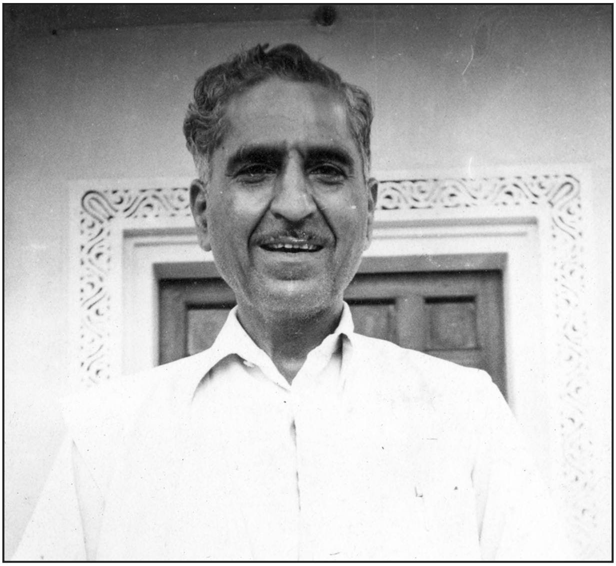

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

कोलकाता में आयोजित 'विदेशों में भारतीय संस्कृति' प्रदर्शनी का रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष, स्वामी श्री लोकेश्वरानन्दजी महाराज को अवलोकन कराते हुए डॉ. ओबराय साथ में हैं श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय के अधिकारीगण सर्वश्री शिवरतन जासू, जुगलकिशोर जैथलिया, रामगोपाल सोनी एवं महावीर बजाज प्रभृति।

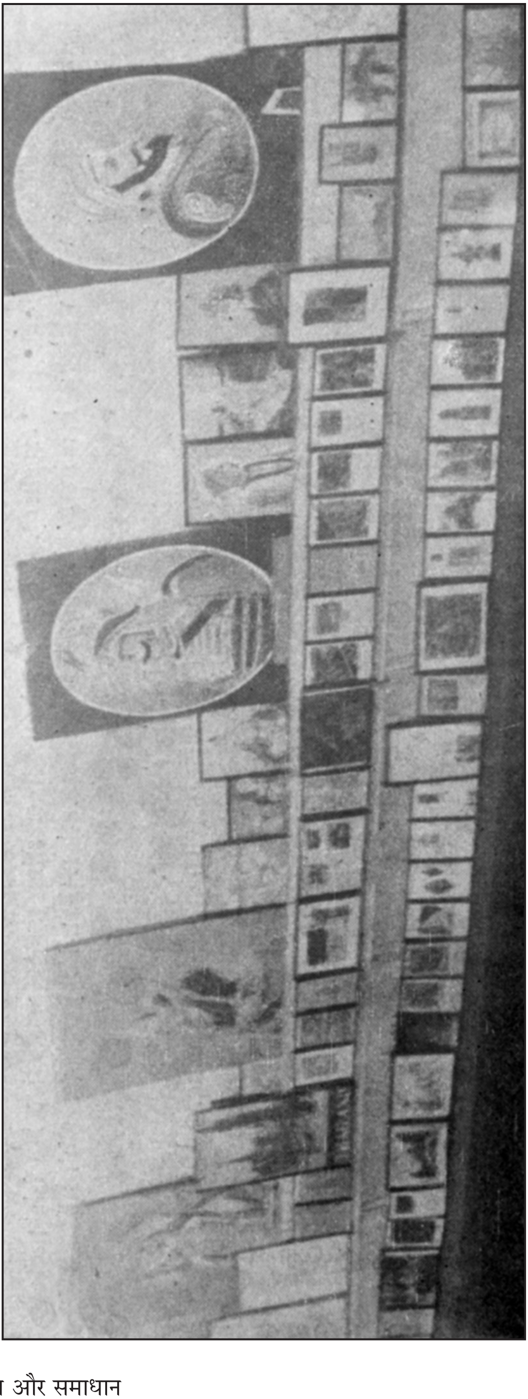

बृहत्तर भारत प्रदर्शनी

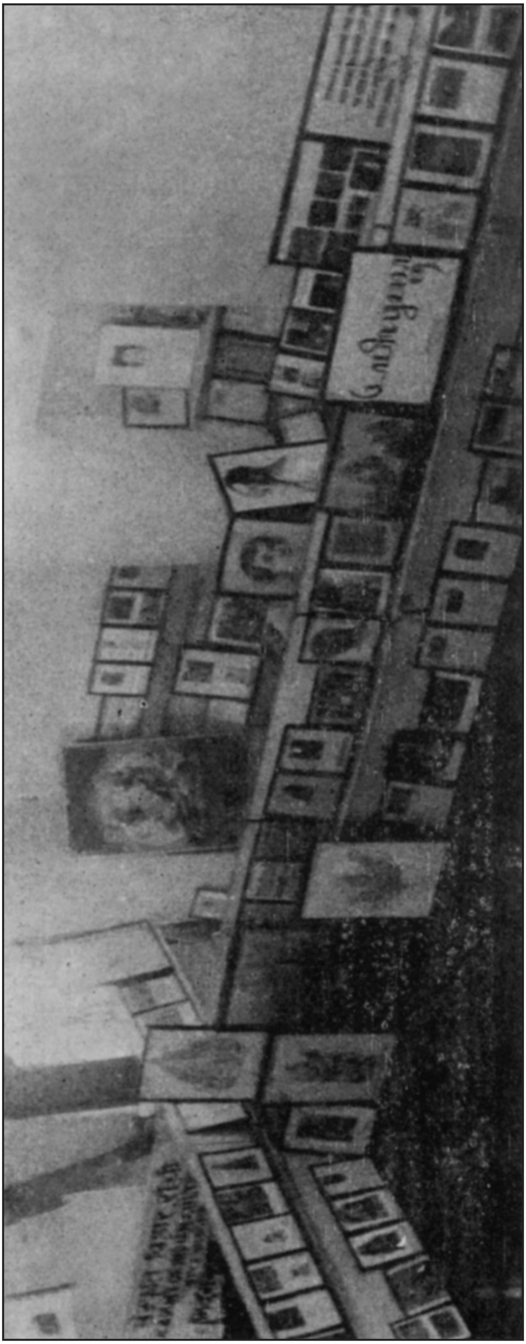

जगतगुरु भारत प्रदर्शनी

सभा भवन

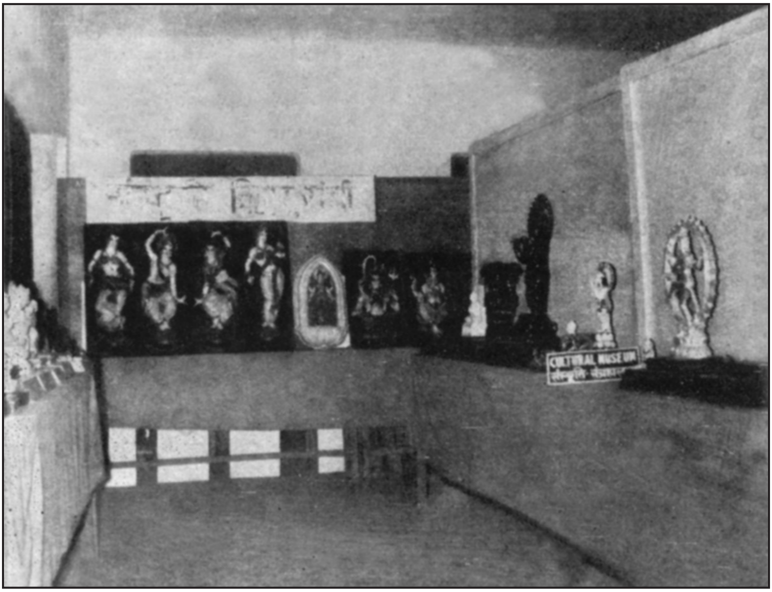

संस्कृति संग्रहालय

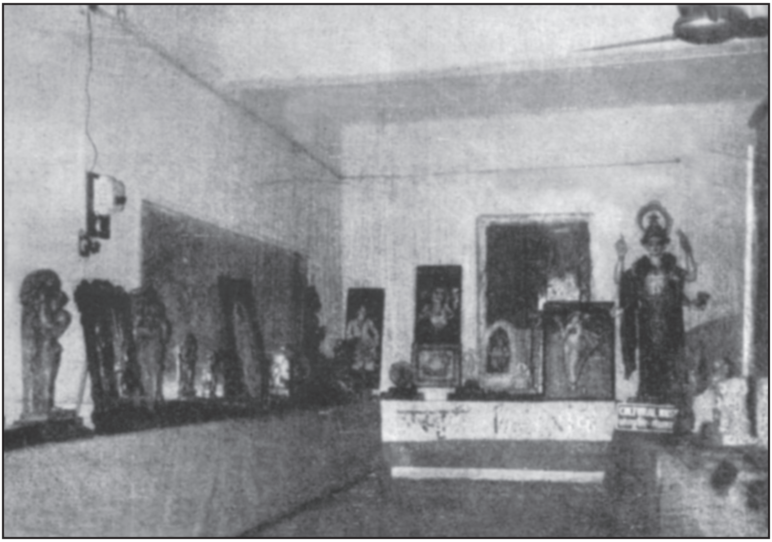

संस्कृति संग्रहालय

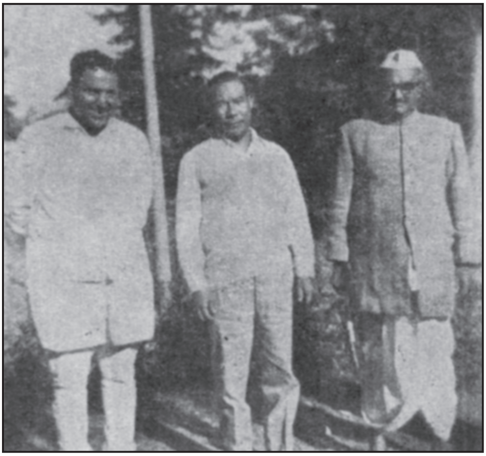

Dialogue with Nagaland

In Jan., 1965, Prof. Oberai visited Nagaland for a first-hand study of the activities of foreign missionaries. Nagas are simple and honest people, being exploited by crooked foreign politicians in the garb of religious preachers. In Oct., 1967, Shri Shilo Ao, Ex-Chief Minister of Nagaland was invited to the Academy of Indian Culture for a fair and frank discussion about the Nagaland and Mizoland problems. Seen in the picture are Prof. H. L. Oberai, Shri Shilo Ao, Shri Narayan Ji, Secretary Adimjati Seva Mandal, Ranchi.

About 800 tribesmen of Mikir hills have offered to re-embrace Bharat Dharma. (V.H.P.)

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र का परामर्श मण्डल

- **श्री नरेन्द्र कोहली**
175, वैशाली, पीतमपुरा, नई दिल्ली-110034
09871681382

- **श्री इन्द्रेश कुमार**
R.S.S. की अखिल भारतीय कार्यकारिणी के सदस्य
09818354177

- **श्री बालमुकुन्दजी संगठन सचिव**
अ.भा.ई. संकलन योजना बाबा साहेब आपटे भवन, केशवकुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली-55
09212447876

- **श्री बालकृष्ण नायक**
केन्द्रीय उपाध्यक्ष (विश्व हिन्दू परिषद्)
(हिन्दू-बौद्ध समन्वय प्रभारी)
09313857322

- **श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र 'पंकज'**
धर्मपाल शोधपीठ,
बी-12, आकृति गार्डन
भोपाल-462002 (म.प्र.)
09425602596

- **प्रो. कुसुमलता केडिया**
निदेशक
धर्मपाल शोधपीठ,
बी-12, आकृति गार्डन
भोपाल-462002 (म.प्र.)
09235619406

- **श्री आनन्द मिश्र 'अभय'**
पूर्व संपादक, राष्ट्र धर्म (हिन्दी मासिक)
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ
094450932265

- **स्व. डॉ. मदनलाल ओबराय**
46, चन्द्रलोक इनक्लेव, पीतमपुरा
नई दिल्ली-110034

- **स्व. श्री जुगलकिशोर जैथलिया**
उपाध्यक्ष भारतीय जनता पार्टी, पश्चिम बंगाल, 42, कालीकृष्णा टैगोर स्ट्रीट, कोलकाता-7

- **डॉ. बद्री प्रसाद पंचोली**
बी-6, दातानगर, रेम्बल रोड,
अजमेर-305006
0145-2425664

- **श्री सीताराम महर्षि**
कृष्ण कुटीर,
रतनगढ़ 331022 (राज.)
09413218586

- **श्री तोलाराम लाठ**
राजस्थान कम्प्यूटर्स, बीकानेर
09351688268

ॐ श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

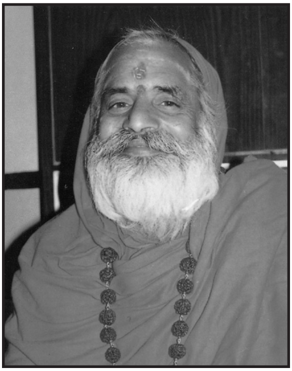

असंख्य महाप्रलयों को, ब्रह्माओं को, कल्पों-मन्वन्तरों और युगों के रूप में प्रवाहित यह अनादि सृष्टि हर कालखण्ड में अपनी विशिष्ट साज-सज्जा को अनावृत करती है। जिस कालखण्ड में तम की शक्तियां प्रकाश की शक्तियों को पराजित कर अट्टहास करती हैं उसी कालखण्ड में तब अवतारों और महापुरुषों के रूप में परम-तत्त्व की मुक्त मुसकान मानव को प्रेम, शान्ति और सुख का अनुभव कराती है—दिव्य-प्रकाश को फैलाती है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय की रचनाओं को इन ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत करने में उनके भ्रातात्रय (डॉ. मदनलाल ओबराय, श्री वृजभूषण ओबराय, श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय) का सब प्रकार से श्लाघनीय सहयोग रहा है। उनके इस भावपूर्ण सहयोग के अभाव में ग्रंथों का प्रकाशन असंभव हो जाता। एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं। उन पर तथा उनके समूचे कुल पर प्रभु की कृपा बरसती रहे—यह शुभ कामना है।

—स्वामी संवित् सोमगिरि

पत्र-1

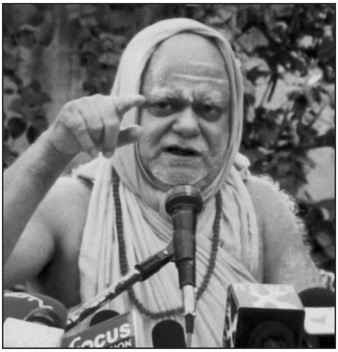

श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी
मानव-प्रबोधन-प्रन्यास
शिवमठ, शिवबाड़ी, बीकानेर 334003
राजस्थान

।।श्रीहरिः।।

—श्रीगणेशाय नमः—

'धर्मनियन्त्रित पक्षपातविहीन-शोषणविनिर्मुक्त सर्वहितप्रद शासनतन्त्र' भारत की अपूर्व विशेषता रही है। यहां के सनातन मनीषियों ने कालक्रम से विलुप्त ज्ञान-विज्ञान को तपोबल से प्रकट करने और विकृत ज्ञान-विज्ञान को विशुद्ध करने के दायित्व का दक्षतापूर्वक निर्वाह किया है। उन्होंने हिरण्यकशिपु, वेन, रावण, दुर्योधन—जैसे दुर्दान्त शासकों को एवं विधर्मियों के कुचक्र को दक्षतापूर्वक विलुप्त कर प्रह्लाद, पृथु, श्रीराम, युधिष्ठिर सरीखे शासकों को उद्भासित कर सर्वहितप्रद शासनतंत्र को प्रतिष्ठित किया; तद्वत् सुधन्वा एवम् शिवाजी जैसे धर्मपरायण-ओजस्विता, शूरता, सुशीलता संपन्न कुशल प्रशासकों को राजपीठ पर पदासीन कर वैदिक साम्राज्य की स्थापना की। इस संदर्भ में देवर्षि नारद, महर्षि भृगु, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, मुनि पुङ्गव व्यास, भगवत्पाद शंकराचार्य और समर्थ श्रीरामदासादि की भूमिका सराहनीय है। वैदिक वाङ्मय की समृद्धि एवम् स्वस्थ क्रान्ति के माध्यम से वैदिक साम्राज्य की प्रतिष्ठा उक्त मनीषियों की अमिट अद्भुत गाथा है।

भारत की मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, अर्थशक्ति और श्रमशक्ति के विश्वस्तर पर दोहन तथा दुरुपयोग से चिंतित सनातन संस्कृति के प्रति आस्थान्वित डॉ. हरवंशलाल ओबराय की कृतियों के संकलन एवं प्रकाशन में संलग्न स्वामी संवित्-सुबोधगिरिजी को तदर्थ साधुवाद है।

अनन्त श्री विभूषित स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती श्रीमज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
गोवर्द्धनमठ-पुरीपीठ
भाद्रशुक्ल चतुर्दशी 2068 संवत्

पत्र-2

ॐ

श्रीशंकरमठ
आबू (राज.)
23.11.11

श्री स्वामी सुबोधगिरिजी

ॐ नमो नारायणाय।

आप द्वारा प्रेषित सद्ग्रंथ के दो संग्रह पाकर अति प्रसन्नता हुई। एक संग्रह श्री स्वामी शारदानन्दजी (महन्त, झूँसी-इलाहाबाद) को प्रेषित कर दिया। विषयसूची देखकर एवं सम्पादकीय पढ़कर प्रभावित हुए बगैर रहा नहीं जा सकता। आपका श्रम सराहनीय एवं अनुकरणीय है। भारतीय मनीषियों ने इतने सद्रत्न अपनी रचना-पिटारियों में संजोये हैं कि उनकी बहुतायत के चलते उनकी उपेक्षा हो रही है। विषयवार यदि वे प्रसंग उपलब्ध हों तो आधुनिक चेतना उनका मूल्य समझे एवं उनके आलोक से उपकृत हो यह संभव है। वाल्मीकि-व्यास-शंकर आदि के भी वचन वर्गीकृत मिल सकें तो बड़ी उपलब्धि हो। भगवत्प्रेरणा से आप इस तरह की संस्कृति-सेवा करते रहें—इस शिव प्रार्थना सहित

स्वयंप्रकाशगिरि

पुस्तक समीक्षा

डॉ. हरवंशलाल ओबराय भारतीय संस्कृति के विख्यात अन्वेषक तथा मूर्धन्य विद्वान् थे। उन्होंने विश्व के 106 देशों की यात्रा की। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध उन्हें लेशमात्र भी उनकी भारतीय संस्कृति की निष्ठा से विचलित नहीं कर सकी। वे सर्वत्र भारतीय संस्कृति की महिमा से जनमानस को अवगत कराते रहे। उनकी लेखनी सर्वत्र गौरवमयी भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का अन्वेषण करती रही। उनके जीवन के मुख्य प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द, मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, डॉ. राधाकृष्णन् और आचार्य रघुवीर थे। इन महामनीषियों एवं उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों ने उनके जीवन में भारतीय संस्कृति का बीजारोपण किया, जो बाद में पल्लवित और पुष्पित होकर समाज के लिये उपयोगी बना। उन्होंने जुगल किशोर बिड़लाजी की प्रेरणा से राँची में संस्कृति-विहार की स्थापना की, जिससे छोटानागपुर के आदिवासी क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित हुई। वहाँ बहुत से सेवाकार्य भी किये गये, जिससे वहाँ के अतिरिक्त बिहार के अन्य क्षेत्रों में भी जागृति हुई। उनका सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा में समर्पित रहा।

ऐसे भारतीय संस्कृति और मानवता के सेवक डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी द्वारा लिखित एवं दिये गये व्याख्यानों का संकलन 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' नामक ग्रन्थ के रूप में सन्तप्रवर स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के द्वारा किया गया है, जो स्वामीजी की प्रखर मेधा तथा अदम्य पुरुषार्थ का परिचायक है। प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खण्डों में विभाजित है (सम्प्रति दो खण्ड और प्रकाशित हुए हैं, जिनकी समीक्षा बाकी रह गयी है)।

प्रथम खण्ड–राष्ट्रीय समस्याओं और इतिहास से सम्बन्धित लेखों का संकलन है। विभिन्न देशों की संस्कृति एवं इतिहास पर चर्चा की गयी है। स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन : एक संगोष्ठी का विवरण एवं राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत् आदि लगभग 80 लेख एवं विभिन्न विषयों से सम्बन्धित बहुत से चित्र भी दिये गये हैं। प्रश्न है–इतिहास क्या है? उत्तर है–इतिहास एक राष्ट्र के उत्थान-पतन की गाथा है। राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्–अर्थात् इतिहास राष्ट्र का चक्षु है। इसके द्वारा राष्ट्र अपने अतीत को पहचानता है। वर्तमान को समझने की चेष्टा करता है और भविष्य के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है।

द्वितीय खण्ड—महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अवलम्बित है। इसमें लगभग 96 लेखों में सन्तों, राजनेताओं, साहित्यकारों, स्वतंत्रता-सेनानियों, वीर शहीदों, प्रतापी राजाओं आदि अनेक प्रकार के महापुरुषों के जीवन-चरित, उनके जीवन-दर्शन एवं उनके जीवन की कुछ प्रेरक घटनाओं का उल्लेख है। इस अध्याय का प्रथम निबन्ध विभूति वन्दना सर्वप्रथम श्रीराधा को समर्पित है। लेखक ने श्रीराधा की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को सिद्ध करने हेतु ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से उद्धरण दिये हैं। श्रीकृष्णप्रिया राधाजी केवल इतिहास के पन्नों तक ही सीमित नहीं, अपितु आज भी चराचर जगत् की स्वामिनी एवं श्रीकृष्ण के अभिन्न अंग के रूप में विराजमान हैं।

तृतीय खण्ड—धर्म, दर्शन, संस्कृति, उत्सव, विज्ञान एवं मनोविज्ञान पर बड़े मूल्यवान एवं सारगर्भित 88 निबन्ध हैं। प्रथम निबन्ध भारतीय दर्शन की पूर्णता में लेखक लिखते हैं, 'भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि-व्यायाम या वाणी-विलास मात्र नहीं, वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना थी। भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।' सूरदास की हृदय वीणा से निःसृत रामायण गीतिका, उपनिषद् की शिक्षा-प्रणाली, स्वतन्त्रता के सांस्कृतिक आधार, शक्तिपूजा का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन आदि बहुत निबन्ध रत्नों से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण वाङ्मय समग्र है।

चतुर्थ खण्ड—'वेदान्त-दर्शन' की वैज्ञानिकता से अभिहीत है। इस खण्ड में ओबरायजी के प्रति लोगों द्वारा लिखित पावन स्मृतियाँ हैं और कुछ पत्र भी हैं, जिससे उनके महान् जीवन की झलकियाँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर 149 सारगर्भित निबन्ध हैं।

पंचम खण्ड का शीर्षक दिया गया है—गीता-दर्शन की सार्वभौमिकता। इसी खण्ड के प्रारम्भ में 'भगवान श्रीकृष्ण और गीता' पर प्रदत्त उनके कई व्याख्यान हैं। संक्षेप में सम्पूर्ण गीता पर छोटे-छोटे निबन्ध हैं। वर्तमान चारित्रिक संकटों में गीता हमारी कैसे सहायता कर सकती है और राष्ट्र के प्रति हमारी दृष्टि कैसी हो—इस पर चर्चा की गयी है।

इस ग्रन्थ के सम्पादक, परामर्शदाता एवं ग्रन्थ-निर्माण के सहयोगी—सभी प्रशंसा एवं सम्मान के योग्य हैं।

—स्वामी प्रपत्त्यानन्द

विवेक ज्योति अक्टूबर 2012

।।श्रीहरिः।।

कृष्ण-कुटीर, रतनगढ़ (राज.)

आदरणीय स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी,

सादर-सप्रेम नमस्कार। आपने डॉ. हरवंशलाल ओबराय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के जो तीन खण्ड प्रकाशित किये हैं उन्हें पढ़कर लगता है कि डॉ. ओबराय देश की दुर्लभ विभूति थे। आपने इनकी सामग्री का जिस प्रकार संकलन एवं संपादन किया है, इसके लिए आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं, समझ में नहीं आता। किसी भी प्रकार का धन्यवाद मेरे हृदय की समस्त भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पायेगा।

सबसे पहले आपको खण्ड एक के संपादकीय के लिए अनेकानेक धन्यवाद देता हूं। आपने अपने संपादकीय में तीनों खण्डों को अच्छी तरह समझने की दृष्टि प्रदान की है। कहना चाहिए, तीनों खण्डों में जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उसका सार आपके संपादकीय में समाहित हो गया है। आपके संपादकीय को पढ़े बिना डॉ. ओबराय के व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त नहीं होती। आपने डॉ. ओबराय की जीवन-झांकी इस तरह प्रस्तुत की है, जैसे हम उनके जीवन को अपनी आंखों के सामने घटित होते हुए देख रहे हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण भारतीय संस्कृति, सनातन धर्म, देशभक्ति, सामाजिक चेतना को जागृत करने में व्यतीत हुआ। उनका व्यक्तित्व जितना सरल, सौम्य एवं प्रभावकारी था, उनका कृतित्व भी उतना ही प्रखर, राष्ट्रीय चेतना को जगाने वाला, भारत की विभूतियों को उजागर करने वाला एवं भारत के विगत की उपलब्धियों पर प्रकाश डालने वाला सफल प्रयास रहा। उन्होंने पूर्ण निष्पक्षता से विश्व की समस्त विभूतियों के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये। उनका ज्ञान अथाह था। शायद ही कोई ऐसा विषय बचा हो, जिसके बारे में उनकी लेखनी न चली हो।

खण्ड एक में उन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं एवं इतिहास पर अपने विचार प्रशंसनीय ढंग से प्रस्तुत किये हैं। इनको पढ़कर ज्ञात होता है कि जो लोग राष्ट्रीय समस्याओं एवं इतिहास पर अपने विचार प्रकट करते रहे हैं, वे संकुचित दृष्टि या पक्षपात पूर्ण ढंग से ऐसा करते हैं। डॉ. ओबराय की दृष्टि राष्ट्रीय समस्याओं को पूर्ण निष्पक्षता एवं निर्भीकता से देखती है। उसमें कहीं भी किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। उनकी रचनाएं पाठक को राष्ट्रीय समस्याओं को गहराई से देखने की क्षमता प्रदान करती है।

दूसरे खण्ड में उन्होंने देश के संत-महात्माओं, साहित्यकारों, धर्मगुरुओं, समाज सुधारकों, भक्त-कवियों, क्रान्तिकारियों एवं विभिन्न क्षेत्रों के अग्रणीय महापुरुषों का बहुत ही सटीक एवं निष्पक्ष विवेचन किया है। इन्हें पढ़कर लगता है कि उनका जीवन देशवासियों को उस सत्य से परिचित कराने में ही समर्पित रहा, जिन लोगों ने संसार के समस्त सुखों का परित्याग कर मानवता के लिए ही अपने आपको समर्पित कर दिया था। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व पाठक को विमुग्ध कर देता है।

तीसरे खण्ड में धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-ज्ञान एवं मनोविज्ञान से सम्बन्धित गंभीर चिंतन एवं व्यापक दृष्टिकोण का दर्शन करते हैं। उन्होंने केवल अध्ययन के आधार पर ही अपने विचार व्यक्त नहीं किये। अध्ययन के साथ गंभीर चिंतन एवं मनन करके ही किसी विषय पर अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने जो कुछ लिखा, उसका उद्देश्य केवल यही रहा कि विश्व भारत को तभी समझ सकता है, जब उसे भारतीय समाज के बहुआयामी जीवन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो और जीवन के हर पहलू की प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो। वास्तव में डॉ. ओबराय ने भारत के जिस उज्ज्वलतम स्वरूप को विश्व के सामने रखा है, वह पूर्णता लिए हुए है और भारत की संस्कृति, भारत के इतिहास, भारत के मनस्वी सुपुत्रों, भारत की एकात्मता और आध्यात्मिक एकता को प्रदर्शित करने वाला है। इन पुस्तकों को पढ़कर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। मुझे विश्वास है कि डॉ. ओबराय के ये ग्रंथ सदियों तक अपने शाश्वत स्वरूप के द्वारा पाठकों के विचारों को मानवता की सेवा के लिए प्रेरित करते रहेंगे। तटस्थता पाठक के मन में यह भाव पैदा करने में समर्थ होंगे कि भारत का सच्चा स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है कि भारत के इतिहास को सही रूप में देखा जाए। उसका मूल्यांकन पूर्ण नष्टतता से किया जाए।

मैं आपको इन पुस्तकों के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूं। आपने इनके प्रकाशन करा जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह आपकी अपूर्व क्षमता का दर्शन कराता है। आपका डॉ. ओबराय के प्रति जो समर्पण रहा, वह सर्वथा वंदनीय एवं विस्मित करने वाला है। इस युग में ऐसे शिष्य ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते।

मैं पुनः पुनः आपके भगीरथ प्रयास को नमन करता हूँ। आप पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें, प्रभु से ही यही मंगलकामना करता हूँ।

अनेकानेक धन्यवाद,

विनीत

सीताराम महर्षि

श्रद्धेय स्वामीजी,

सादर हरि स्मरण।

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र तीनों खण्ड किताब मैंने पढ़ी। आपके प्रयास एवं धैर्य के द्वारा एक अनुपम कृति भारतीय साहित्य ज्ञान भण्डार में जुड़ सकी इसके लिये आपको साधुवाद देते हुए अत्यंत ही हर्ष की अनुभूति होती है। भारतीय दर्शन एवं मनीषियों की जीवनगाथा का जो दिग्दर्शन आपने पूज्यवर के साहित्य से संग्रह किया है वो न केवल धार्मिक चेतना वरन् राष्ट्रीय भावना एवं मानवता को भी एक उत्कृष्ट सोपान पर ले जाने में सक्षम होगा जिसकी आज अत्यंत ही जरूरत है।

आपका प्रयास इस प्रकार ही चलता रहे एवं पल्लवित होता रहे जिससे हम जैसों की प्रेरणा का एक माध्यम बना रहे ऐसी सर्व समर्थ प्रभु से प्रार्थना है। परम पूजनीय स्वामी श्री ईश्वरानंदगिरिजी एवं परम पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरिजी को मेरा शत-शत प्रणाम जिनके आशीर्वाद से ही आप यह कर सकने में सक्षम हुए हैं।

डॉ. के.के. देवड़ा
पुरुलिया (पश्चिम बंगाल)

पुस्तक समीक्षा

भारत के विख्यात संस्कृति-मनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय (1925-1983) के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर 2,688 पृष्ठों में (पांच खण्ड), स्वामी संवित् सुबोधगिरि द्वारा इसका संपादन एवं संकलन उनकी 36 वर्षों की असाध्य तपस्या का प्रतिफल है। स्वामीजी ने इसमें डॉ. ओबराय की अमृतवाणी का नवनीत पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है।

प्रो. ओबराय का जीवन भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पण की अपूर्व गाथा है। वह रावलपिण्डी (बप्पा रावल की जन्मस्थली) में जन्मे, पले तथा सुशिक्षित हुए। संघ के सम्पर्क में आये। देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम की ज्वाला जगी। भारत-विभाजन पर वहाँ फँसे हिंदुओं की सहायता में लग गये। दिल्ली में आकर एम.ए. दर्शन तथा हिन्दी में प्रथम श्रेणी में किया।

महाविद्यालय में शिक्षण के साथ समाजसेवा को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। संस्कृति तथा दर्शन पर अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये। सन् 1982 में मद्रास विश्वविद्यालय में 'इंफ्ल्युलेन्स ऑफ़ इण्डियन कल्चर ऑन प्री-इस्लामिक अरेबिया'—जैसे दुरूह विषय पर व्याख्यान देकर 'डी.लिट्.' की उपाधि प्राप्त की। भारतीय-संस्कृति तथा दर्शन पर निर्भीक होकर विश्व के 106 देशों में भारतीय दृष्टिकोण को रखा। सन् 1965 में उन्होंने बाबू जुगल किशोर बिड़ला के सहयोग और परामर्श से राँची में '**संस्कृति विहार**' **(एकेडमी ऑफ़ इण्डियन कल्चर)** नामक शोध-संस्थान की स्थापना की। अगले 18 वर्षों तक इसके निदेशक रहे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दो बार राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गये। वे आप बाबा साहिब आपटे स्मारक समिति से भी सम्बद्ध थे और उसके पूर्वाञ्चल प्रमुख रहे। दुर्भाग्यवश 19 सितम्बर, 1983 को रायपुर स्टेशन के पास दुर्घटना से उनका शरीर पूरा हुआ। संक्षेप में उनके प्रेरक तथा शोधपूर्ण व्याख्यान, राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत जीवन, समाजसेवी वृत्ति, सम्पूर्ण छोटानागपुर क्षेत्र में वनवासियों के बीच कार्य, सदैव देश की युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करते रहेंगे। वह सही अर्थों में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय संस्कृति के मंत्रद्रष्टा थे।

प्रबुद्ध संपादक ने **डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र** के प्रथम खण्ड में डॉ. ओबराय के (भारत की) 'राष्ट्रीय समस्याओं और इतिहास' पर उनके विचारों का संकलन किया है। इसका शेष भाग 'परिशिष्ट एक' के रूप में खण्ड चार में (पृ. 504-547) दिया गया है। विभाजन के पश्चात् डॉ. ओबराय ने भारतीय गगन में विकराल रूप से उभरती तीन अंतरराष्ट्रीय समस्याओं—1. भारत में ईसाइयत फैलाने का भौंडा तथा बीभत्स ढंग से प्रचार, 2. इसलाम द्वारा धर्मांतरण के कुप्रयास तथा 3. कम्युनिस्टों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को विकृत, भ्रमित करने के षड्यन्त्रों से भारत के प्रबुद्ध जनमानस को अपनी ओजस्वी वाणी तथा लेखों से अवगत कराया है। उन्होंने प्रमाण सहित केरल से नागालैण्ड तक ईसाइयत के कुकर्मों का वर्णन किया है। इसी भाँति मुसलमानों द्वारा कुप्रचार तथा 1957 के पश्चात् केरल में कम्युनिस्ट शासन स्थापित हो जाने से उनके संस्कृति एवं राष्ट्रविरोधी क्रियाकलापों का वर्णन किया है। इस खण्ड में यह भी बतलाया गया है कि डॉ. ओबराय आरामकुर्सी पर बैठकर लिखने वाले व्यक्ति न थे बल्कि प्रत्यक्ष संघर्षरत महारथी भी थे। उन्होंने विदेशी पादरियों के निष्कासन के लिए कार्य किया तथा धर्मांतरण के विरुद्ध शुद्धि-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया।

डॉ. ओबराय ने इतिहास को 'राष्ट्र का चक्षु' बतलाया। उन्होंने अपनी व्याख्यानमाला के द्वारा इतिहास की अनेक समस्याओं का निराकरण तथा प्रचलित भ्रांतियों तथा विकृतियों को हास्यास्पद बताया। कई मूल समस्याओं, जैसे–आर्यों का आदि देश, उनके काल आदि को तर्क तथा तथ्यों की कसौटी पर स्पष्ट किया। डॉ. ओबराय ने भारत की संस्कृति के विश्वव्यापी स्वरूप तथा देन को समझने के लिए चार दुरूह आवरणों को हटाकर उनके रहस्यों को समर्थन के लिए इतिहासकारों की 'सोच' को नवीन दिशा दी। उन्होंने ये चार आवरण बताये—1. ईसा से पूर्व का यूरोप, 2. इसलाम से पूर्व का अरब, 3. कोलम्बस से पूर्व का अमेरिका तथा 4. फिलीप से पूर्व का फिलीपाइन। वह स्वयं भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा इसके सही स्वरूप का दिग्दर्शन कराने अनेक देशों में गये। खण्ड के अन्तिम भाग में देश-विदेश में डॉ. ओबराय को प्राप्त अनेक चित्रों, मूर्तियों को प्रकाशित कर उसकी विश्वसनीयता को पुष्ट किया गया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' ग्रन्थमाला के दूसरे खण्ड में डॉ. ओबराय द्वारा समय-समय पर दिए गए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी महापुरुषों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का गहन विवेचन किया गया है। इसमें लगभग 60 महान् पुरुषों के कार्यों की समीक्षा की गई है। इसके अलावा खण्ड चार के 'परिशिष्ट द्वितीय' में लगभग आधा दर्जन अन्य व्यक्तियों के जीवन को उभारा गया है।

इसमें से कुछ लेख 1958-1860 के दौरान डॉ. ओबराय द्वारा तत्कालीन प्रसिद्ध समाचार-पत्रों –*'वीर प्रताप', 'वीर अर्जुन'* तथा *'मिलाप'* में लिखे गए थे।

प्राचीन काल से भारत ऋषियों, सन्तों, साधकों, चिन्तकों, विचारकों, लेखकों, वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों की भूमि रहा है। निस्सन्देह विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ महान् पुरुषों की इतनी अविरल ज्ञान-शक्ति तथा भक्ति दिखलाई देती हो जितनी भारत में। डॉ. ओबराय ने महर्षि दधीचि के अपूर्व बलिदान से वर्तमान तक अनेक महापुरुषों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दिया है। इन सभी महान् पुरुषों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने युग की चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय जनमानस का मार्गदर्शन किया।

सामान्यतः ये सभी अपने युग के प्रतिनिधि थे।

डॉ. ओबराय ने जहाँ प्राचीन काल के दिव्य ज्ञानी वाल्मीकि, राष्ट्रदर्शन के व्याख्याता महर्षि वेदव्यास, भगवान् बुद्ध, जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी, षड्दर्शन आचार्यों के दिये ज्ञान का सूक्ष्म विवेचन किया; वहीं मध्यकाल में दक्षिण तथा पश्चिम भारत के सन्तों, उत्तर तथा पूर्व के भक्तों तथा पंजाब के गुरुओं की वाणियों की चर्चा की। साथ ही महाकवि कालिदास से लेकर वर्तमान साहित्यकारों के जीवन पर प्रकाश डाला। आधुनिक काल के धर्म तथा समाज-सुधारकों, जैसे–राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, बंकिमचन्द्र, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, श्री गुरुजी–जैसे महान् पुरुषों की देन को बताया। विद्वान् लेखक ने महाराजा विक्रम से लेकर राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, महाराजा रणजीतसिंह से लेकर भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सेनानी लाला लाजपत राय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार ऊधमसिंह आदि पर प्रकाश डाला। इन सभी महान् पुरुषों ने देश की सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण बनाए रखा।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के तृतीय खण्ड में संस्कृति, दर्शन तथा विज्ञान—जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचारों के सन्दर्भ में चिन्तन किया है। उन्होंने दर्शन के क्षेत्र में भारत को 'विश्व का शिरोमणि' बताया है। उन्होंने यह निश्चयपूर्वक तथा तथ्यात्मक रूप से बतलाया है कि दर्शन का जन्म जब यूनान में छठी शताब्दी ई. पूर्व बताया जाता है, तब भारत में दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर 'मध्याह्न काल' था। उन्होंने भौतिकवादी पाश्चात्य जगत् के सम्मुख भारत में इसे 'जीवन की सर्वोत्तम साधना' कहा। वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ कहा। भारतीय धर्म तथा दर्शन का वैशिष्ट्य बताते हुए भारत के षड्दर्शनों के सार के साथ चार्वाक, बौद्ध तथा जैन-दर्शन की चर्चा की। उन्होंने *'ओल्ड टेस्टामेन्ट'*

व *'न्यू टेस्टामेन्ट'* का वर्णन करते हुए धर्मांध पादरियों की कटु आलोचना की। उन्होंने चैतन्य की तीन मौलिक शक्ति के रूप में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म अथवा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की धारणा का विस्तार से वर्णन किया है। शिव, गणेश, राम और कृष्ण को भारत के राष्ट्रीय पुरुष तथा *रामायण* तथा *महाभारत* को राष्ट्रीय महाकाव्य कहा। डॉ. ओबराय ने विज्ञान तथा मनोविज्ञान को भारत की विश्व को आदि देन बतलाया। डॉ. ओबराय ने विदेशों में अपने व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी प्रसार का सप्रमाण वर्णन किया है।

खण्ड चार में डॉ. ओबराय ने 'वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता' पर तात्त्विक तथा व्यावहारिक आधार पर इसे चिर-पुरातन तथा चिर नवीन कहा। उन्होंने वेदोपनिषद्, पुराण, स्मृत्यादि के आधार पर भारतीय दर्शन की मूल मान्यताओं, समस्याओं के साथ उसकी पूर्णता पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने दार्शनिक विषयों–जड़वाद, द्वैतवाद, चैतन्यवाद, जीव-रहस्य, मृत्यु-रहस्य तथा सृष्टि की अत्यन्त सरल व्याख्या की है।

डॉ. ओबराय ने अपने प्रवचनों में हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति के विचारों–आत्मा, कर्म-सिद्धान्त, अनेकता में एकता आदि तत्त्वों का विवेचन किया। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान अथवा मार्क्सवादी विश्लेषण की तुलनात्मक व्याख्या की। डॉ. ओबराय ने भारत की राष्ट्रीय एवं सन्त-परम्परा तथा सेमिटिक विचार-परम्परा का स्पष्ट अन्तर अनेक उदाहरण देते हुए बतलाया। आधुनिक अनेक समस्याओं की कारणमीमांसा करते हुए उन्हें मानव-प्रकृति के विरुद्ध तथा अप्रासंगिक बताया है तथा अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भारतीय परम्परा में ही बताया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के खण्ड पाँच में 'गीता दर्शन की सार्वभौमिकता' पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक तथा महान् चिन्तक ने *श्रीमद्भगवद्गीता* को 'राष्ट्र की आत्मा' तथा विश्व में भारत की पहचान बतलाया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को जब यह ज्ञान दिया गया, तब न कोई बाइबिल का ज्ञान था, न ही कुरान का। उन्होंने बतलाया कि सन् 1776 में प्रथम बार इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ। तभी से यूरोप की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और शीघ्र ही यूरोप, अमेरिका तथा विश्व के श्रेष्ठतम दार्शनिकों एवं अन्य विद्वानों का यह सर्वश्रेष्ठ पठनीय ग्रन्थ बन गया। डॉ. ओबराय ने गीता की विश्वव्यापी देन का सविस्तार वर्णन किया। उन्होंने गीता के प्रत्येक अध्याय को लेकर इसकी व्याख्या की। भारत राष्ट्र में तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसके योगदान की चर्चा की। उन्होंने इसे मानवता के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बतलाया। गीता को

ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का अद्भुत समन्वय बताया। साथ ही वर्तमान भारत की समस्याओं का समाधान तथा विश्व के कल्याण तथा शान्ति का पथ बतलाया।

निस्सन्देह महामनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय के विचारों तथा चिन्तन को समर्थन का यह श्रेष्ठतम प्रयास है। इसके लिए स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी की साधना अद्भुत है। वह कोटिशः बधाई के पात्र हैं। उनकी यह साधना दिव्य तथा स्तुत्य है। देश-विदेश के पुस्तकालयों के लिए यह ग्रंथमाला संग्रहनीय है। भारत के प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

—डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल

अखिल भारतीय इतिहास संस्करण संकलन योजनीक राष्ट्रीय अध्यक्ष
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय;
आवास : 6/1277-ए, माधवनगर, सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)

(**इतिहास दर्पण :** अंक 18(2) विजयादशमी, 2013; **जाह्नवी** मासिक के अप्रैल, 2014 तथा **बप्पा रावल** मासिक के जनवरी, 2014 के अंक में प्रकाशित)

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

संघ-प्रवाह में से प्रगटा एक बौद्धिक कर्मयोगी

सच, मैं स्वामी संवित् सुबोधगिरि का ऋणी हूं कि उन्होंने पांच खण्डों में 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' प्रकाशित करके संघप्रवाह के एक देदीप्यमान बौद्धिक रत्न की स्मृति को झाड़-पोंछकर ताजा कर दिया। अंग्रेजी में एक कहावत है–'आउट आफ साइट, आउट आफ माइन्ड' (आंखों से ओझल तो स्मृति से गायब)। 89 वर्ष से अनवरत बह रहा संघ-प्रवाह असंख्य ऐसे तेजस्वी अंतःकरणों की अखंड मालिका है जिन्होंने कर्म के क्षेत्र में, बौद्धिकता के क्षेत्र में असामान्य कर्तृत्व को प्रगट किया और जो या तो प्रसिद्धि पराङ्मुखता में खो गये या विस्मृति के गर्त में समा गये। नामों की सूची इतनी लम्बी है कि आज उन सब नामों को खोज पाना भी संभव नहीं रहा है। डॉ. हरवंशलाल ओबराय भी ऐसे ही नवरत्नों की सूची में बहुत ऊंचा स्थान पाने के अधिकारी हैं। विस्मृति की धूल झाड़ने के बाद मुझे स्मरण आता है कि साठ के दशक में अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के अध्यक्ष के नाते वे बहुत चर्चित थे। लम्बे पंजाबी कोट और संकरी मोरी के पाजामे में जब वे मंच पर आते तो पहली नजर में उनका व्यक्तित्व पंडाल या हॉल में एकत्र विशाल श्रोता-समूह को बहुत प्रभावित नहीं करता था, पर जब उनका विद्वत्तापूर्ण ओजस्वी, धाराप्रवाह वक्तृत्व आगे बढ़ता तो सभी श्रोता मंत्रमुग्ध रह जाते। उन दिनों विद्यार्थी परिषद् के अ.भा. अध्यक्ष पद के लिए चयनित होना स्वयं में बहुत बड़ी बात थी। परिषद् का संगठन देशभर में बहुत प्रभावी स्थिति प्राप्त कर चुका था।

सन् 1925 में पाकिस्तान में छूट गये रावलपिंडी में जन्मे हरवंशलाल ओबराय की जीवनयात्रा फूलों की सेज जैसी सुगम नहीं रही। अपने माता-पिता की दस संतानों में वे तीसरे नम्बर पर थे। बाल्यकाल में ही संघ-प्रवाह का अंग बन गये। रावलपिंडी में ही स्नातक तक शिक्षा पाई, साथ ही संघ के द्वितीय वर्ष प्रशिक्षित कार्यकर्ता की स्थिति में पहुंच गये। युवावस्था में प्रवेश करते ही देश विभाजन का वज्रपात झेलना पड़ा। अपने क्षेत्र से अंतिम हिन्दू सिख को सुरक्षित

बाहर ले आने का कर्तव्य पूरा करके ही खंडित भारत की गोद में शरण ली। कुछ दिन मेरठ में बिताकर दिल्ली को आगे की पढ़ाई का केन्द्र बनाया। दर्शनशास्त्र और हिन्दी में एमए करके पंजाब के कई विद्यालयों में शिक्षण कार्य करके जालंधर के डीएवी कालेज में दर्शनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद पर पहुंच गये। विद्यार्जन, शिक्षक कर्म के साथ-साथ संघ-साधना भी अखंड चलती रही। 1948 में संघ-सत्याग्रह करके जेल गये तो 1975-77 के आपातकाल में कुख्यात 'मीसा' के अन्तर्गत उन्नीस महीने जेल में काटे। ज्ञान-साधना और राष्ट्र-साधना के संगम का उच्च उदाहरण प्रस्तुत किया।

अपने इन्हीं सब गुणों के कारण प्रो. हरवंशलाल अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के अ.भा. अध्यक्ष पद पर 1960-61, 1961-62, दो वर्ष तक लगातार अभिषिक्त हुए। उनके पाण्डित्य, ओजस्वी धाराप्रवाह वक्तृत्व की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी, जिससे आकर्षित होकर यूनेस्को ने उन्हें यूरोप और अमरीका आदि देशों में भारतीय दर्शन, संस्कृति और इतिहास पर भाषणमाला देने के लिए आमंत्रित किया। और जीवन के अंत तक उनकी विदेशयात्रा का यह क्रम चलता रहा। कुल मिलाकर 106 देशों की उन्होंने यात्रा की, वहां के विश्वविद्यालयों में और बौद्धिक मंचों पर उन्होंने अपने भाषणों की गहरी छाप छोड़ी। 1963 में अमरीका में स्वामी विवेकानन्द के जन्मशताब्दी समारोह में उनके शिकागो व्याख्यान (1893) पर डॉ. ओबराय के भाषण ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। वहां प्रसिद्ध उद्योगपति बिड़ला परिवार का एक सदस्य चन्द्रकान्त बिड़ला भी श्रोताओं में उपस्थित थे। इस भाषण को सुनकर वे चमत्कृत रह गये। उनके पितृतुल्य सेठ जुगल किशोर बिड़ला ने हरवंशलालजी की प्रतिभा को पहचाना। उन्होंने रांची में अपने बीआईटी नामक संस्थान में दर्शन-मानविकी में स्वतन्त्र संकाय की स्थापना करके हरवंशलालजी को उस संकाय का अध्यक्ष बना दिया और इस प्रकार छोटानागपुर क्षेत्र उनका स्थायी कार्यक्षेत्र बन गया। इस क्षेत्र में विदेशी ईसाई मिशनरियों के द्वारा भोले-भाले वनवासियों के मतान्तरण का कार्य तेजी पर था। हरवंशलालजी के योद्धा मन ने इसे अपने लिए चुनौती माना और मतान्तरण की गति को अवरुद्ध करने के लिए ईसाई पादरियों के विरुद्ध खम ठोंक कर खड़े हो गये। बौद्धिक धरातल पर चुनौती देने के साथ-साथ उन्होंने मैदान में उतर कर भी उन्हें ललकारा। धर्मप्राण श्री जुगल किशोर बिड़ला ने उन्हें मतान्तरण की चुनौती के विरुद्ध रांची में स्व. आचार्य रघुवीर के सरस्वती विहार के अनुकरण पर 'संस्कृति विहार' नामक संस्थान स्थापित करने की प्रेरणा एवं आर्थिक सहयोग प्रदान किया। अप्रैल 1964 में उन्होंने संस्कृति विहार की स्थापना का उपक्रम आरंभ किया। वहां अध्ययन, प्रचार एवं शोध की

व्यवस्था की। 20 मई, 1965 को मां आनन्दमयी की अध्यक्षता एवं वृन्दावन के प्रज्ञाचक्षु सन्त स्वामी शरणानन्दजी के उद्‌बोधन के साथ काशी के मूर्धन्य विद्वान महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज ने 'संस्कृति विहार' का विधिवत् उद्‌घाटन किया। डॉ. हरवंशलाल ने 19 सितम्बर 1983 को रायपुर स्टेशन पर एक दुर्घटना में अपनी अकाल मृत्यु तक 18 वर्ष संस्कृति विहार के निदेशक का दायित्व निर्वाह किया।

स्वयं बहुपाठी विद्वान होते हुए भी उनका विश्वास था कि समाज में गौरवभाव जगाने के लिए मोटे-मोटे ग्रंथों की रचना से अधिक चित्र-प्रदर्शनियों का योगदान रहता है। इसलिए उन्होंने अनेक चित्र प्रदर्शनियों का निर्माण किया। जैसे 'हिमालय रक्षा प्रदर्शनी, श्री अरविन्द घोष प्रदर्शनी, शिवाजी प्रदर्शनी, वनवासी जीवन-परम्परा प्रदर्शनी, सात्त्विक आहार-विहार प्रदर्शनी आदि अनेक प्रदर्शनियों की रचना की। वे अपनी विदेश यात्राओं में भी ऐसी किसी प्रदर्शनी को साथ ले जाते थे। संस्कृति विहार में भी उन्होंने लगभग 3000 चित्रों, प्रतिमाओं एवं कला-कृतियों का देश-विदेश से लाकर संग्रह किया था। उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी भोले-भाले वनवासियों के छलपूर्वक मतान्तरण को रोकने की। उसके लिए उन्होंने हिमाचल प्रदेश की शांता कुमार सरकार के आमंत्रण पर विदेशी पादरी निष्कासन अभियान चलाया। 19 दिसम्बर 1965 को संस्कृति विहार की ओर से प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को एक ज्ञापन दिया। 2 अक्टूबर 1968 को प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को पुनः एक ज्ञापन दिया। रांची के रोमन कैथोलिक चर्च को ब्रिटिश सरकार ने 1916 में 46 एकड़ भूमि का पट्टा दे दिया था। उसकी अवधि पूरी होते ही बिहार सरकार से मांग की कि भूमि वापस ली जाए। रांची में एक पादरी थोटेंकल ने भगवावस्त्र धारण करके स्वयं को स्वामी नरेन्द्रानन्द घोषित कर दिया और दिव्य ज्योति आश्रम में शिक्षा के बहाने वनवासी बच्चों का मतान्तरण करने लगा। डॉ. हरवंशलाल ने उसका भण्डाफोड़ किया।

रांची ही 'रामकथा की उत्पत्ति और विकास' नामक ग्रंथ के लेखक फादर कामिल बुल्के का केन्द्र था। फादर बुल्के ने प्रस्थापना की कि छोटानागपुर ही राक्षसों का निवास स्थान था और रावण ओरांव जाति का राजा था। डॉ. हरवंशलाल ने इस भ्रामक प्रचार के लिए फादर बुल्के को सार्वजनिक मंच पर चुनौती दी, किन्तु बुल्के में उसे स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ। इसी प्रकार प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक राहुल सांकृत्यायन ने 'वोल्गा से गंगा' नामक पुस्तक प्रकाशित की तो हरवंशलाल ने दिल्ली में राहुलजी की उपस्थिति में ही उनकी स्थापना का खंडन करते हुए कहा कि राहुलजी को 'वोल्गा से गंगा' पुस्तक को समुद्र में फेंक कर 'गंगा से वोल्गा' शीर्षक पुस्तक लिखनी चाहिए।

अपने अगाध पाण्डित्य, अद्‌भुत स्मरण शक्ति, ओजस्वी धाराप्रवाह वक्तृत्व के कारण डॉ. हरवंशलाल रांची क्षेत्र में भारतीय संस्कृति और देशप्रेम के निर्भीक प्रवक्ता के रूप में बहुत लोकप्रिय हो गये। उनके इन्हीं गुणों ने आकर्षित किया 18 वर्ष के एक मारवाड़ी किशोर सन्तोष लाठ को। सन्तोष लाठ को संस्कृति और राष्ट्र के प्रति गौरवभाव अपने परिवार और संघ-परिवार की पृष्ठभूमि से प्राप्त हुआ था, पर रांची का उस समय का बौद्धिक वातावरण इन भावनाओं से शून्य था। संस्कृति और इतिहास की हर समय आलोचना करता रहता था। सन्तोष का आहत मन डॉ. हरवंशलाल की ओर आकृष्ट हुआ और उसने स्वयं को उनके शिष्य रूप में निवेदित कर दिया। उसकी इच्छा थी कि डॉ. हरवंशलाल की विद्वत्ता पुस्तक रूप में देश को प्राप्त हो अतः उसने शर्त लगायी कि डॉ. हरवंशलाल प्रतिदिन दो घंटा अपने भाषणों को लेखबद्ध करेंगे। पर वैसा होना नहीं था, क्योंकि हरवंशलालजी किताबी पाण्डित्य से अधिक बौद्धिक योद्धा थे। पर फिर भी सन्तोष लाठ धैर्यपूर्वक उन प्रकाशित, अप्रकाशित और मौखिक भाषणों के एकत्रीकरण में जुटा रहा। इसी बीच उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने उसे संन्यास पथ पर बढ़ा दिया और स्वामी संवित् सोमगिरिजी से दीक्षा पाकर वह 'संवित् सुबोधगिरि' बन गया। किन्तु डॉ. हरवंशलाल ओबराय के प्रति अपने गुरु ऋण से उऋण होने के लिए उनकी ज्ञान निधि को संकलित करने के कार्य में वह अनवरत लगा रहा। अन्ततः हरवंशलालजी के तीन छोटे भाइयों—डॉ. मदनलाल, श्री बृजभूषण व चन्द्रप्रकाश ओबराय के सहयोग से 36 वर्ष लम्बे परिश्रम के बाद पांच खण्डों में डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को प्रकाशित करने में सफल हुआ। सुबोधगिरिजी का कहना है कि यह संकलन की इतिश्री नहीं है। अभी बहुत कुछ शेष है जिसमें वे लगे हुए हैं। 2010 में इन पांच खण्डों के प्रकाशन के बाद सुबोधगिरिजी ने अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में डॉ. हरवंशलाल के विचारों का संकलन प्रकाशित किया है।

ओबराय समग्र, प्रथम खंड में 'राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास' विषय पर केन्द्रित रचनाएं एकत्र की गयी हैं। इस खंड में ईसाई समस्या के विवेचन के अलावा विदेशों में भारतीय संस्कृति की यात्रा पर कई लेख हैं। डॉ. ओबराय की अमरीका यात्रा का वर्णन भी मिलता है। 'महापुरुषः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' शीर्षक, खण्ड 2 में प्राचीन ऋषियों-मुनियों-आचार्यों से लेकर मध्यकालीन सन्तों एवं आधुनिक भारतीय मनीषियों की जीवन झांकी उपलब्ध है। खण्ड तीन में 'धर्म-दर्शन-संस्कृति–उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान' जैसे गंभीर विषयों का सरल-सहज शैली में विवेचन किया गया है। खण्ड चार में 'वेदान्त दर्शन' तो खण्ड पांच में 'गीता-दर्शन की सार्वभौमिकता' का प्रतिपादन किया गया है। 2688 पृष्ठों में

समाहित यह अमूल्य बौद्धिक सामग्री डॉ. हरवंशलाल ओबराय की ज्ञान-मंजूषा को हमारे सामने खोल देती है। यह यात्रा और आगे बढ़ती यदि 1983 में एक दुर्घटना में उनकी अकाल मृत्यु न हुई होती तो। वे हस्तरेखा शास्त्र विशेषज्ञ भी थे। अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पूर्व ही उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सन्तोष लाठ (अब संवित् सुबोधगिरि) और अपनी हस्तरेखाएं देखकर भविष्यवाणी कर दी थी कि अब उनकी जीवन यात्रा पूरी हो रही है, किन्तु मृत्यु के डेढ़ वर्ष पूर्व 1982 में 'अरेबिया पर भारतीय प्रभाव' शीर्षक से अंग्रेजी शोध निबंध के आधार पर उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से डी.लिट. की डिग्री लेकर अपनी बौद्धिक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव पार कर लिया था।

—देवेन्द्र स्वरूप

(प्रधान सम्पादक) पाञ्चजन्य

27 अगस्त, 2014

7 सितम्बर, 2014, पाञ्चजन्य

विद्वान लेखक का अनुपम संकलन

सम्पूर्ण विश्व में फैले हिन्दू-संस्कृति के पदचिह्नों को खोजने में दीवान चमनलाल की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू अमेरिका' में उत्तर और दक्षिण अमरीका के हिन्दू शासकों का अकाट्य प्रमाणों के साथ विवरण दिया गया है। 'इण्डिया द मदर ऑफ अस आल' में उन्होंने अन्य देशों में हिन्दू संस्कृति की छाप का विश्लेषण किया है। श्रद्धेय आचार्य श्रीराम शर्मा ने 'समस्त विश्व को भारत के अजस्त्र अनुदान' पुस्तक में पूरी दुनिया में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रभाव को दर्शाया है। आचार्य रघुवीर ने भी अपना पूरा जीवन दुनिया भर में घूमने और वहां मौजूद हिन्दू संस्कृति के चिह्नों को एकत्रित करने में लगा दिया। इतिहासकार पुरुषोत्तम नागेश ओक तथा डॉ. शरद हेबालकर ने भी इसी दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इन्हीं के साथ एक और विद्वान हैं जिन्होंने विश्व-भ्रमण करते हुए परिश्रम पूर्वक यत्र-तत्र बिखरे हिन्दू संस्कृति के प्रतीकों का संग्रह किया और प्रमाणित किया कि एक समय सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों का यशोगान होता था। स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय ने अपने जीवन-काल में 106 देशों की यात्रा की तथा सभी देशों में हिन्दू संस्कृति के अमिट-प्रभाव का साक्षात् अनुभव किया। उक्त यात्राओं में मिले साक्ष्यों की उन्होंने देश के प्रमुख नगरों में प्रदर्शनी भी आयोजित की तथा कई आलेख भी प्रकाशित किये। इन अमूल्य प्रस्तुतियों व अन्य विषयों पर प्रकाशित डॉ. ओबराय के लेखों को हाल ही में 'ओबराय समग्र' के रूप में प्रकाशित किया गया है। यह प्रशंसनीय कार्य बीकानेर के **मानव प्रबोधन प्रन्यास** ने किया है, जो नगर के प्रसिद्ध 'शिव मठ' का ही एक प्रकल्प है।

डॉ. ओबराय के सभी लेखों का संकलन व सम्पादन तीन खण्डों में उत्कृष्ट तरीके से किया गया है। पहले खण्ड में इतिहास विषयक तथा राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित लेख हैं। 'मकर संक्रान्ति' के लेख में डॉ. ओबराय ने बताया है कि दो हजार वर्ष पूर्व यह पर्व 25 दिसम्बर को पड़ता था और ईसाइयों ने इसे चुरा कर 'क्रिसमस' बना दिया, जबकि ईसा का जन्म इस दिन हुआ ही नहीं था। 'विक्रम-

संवत्' का महत्त्व बताते हुए उन्होंने प्रतिपादन किया है कि कालगणना पूरी दुनिया को भारत ने ही सिखायी। इसी खण्ड में श्री ओबराय ने यूरोपीय देशों में भारतीय संस्कृति के अभी भी विद्यमान स्मारकों का वर्णन किया है। इनमें पुष्ट साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया गया है कि उज्बेकिस्तान वह प्रदेश है, जहां जल-प्रलय के समय मनु एवं उनके साथियों ने शरण ली थी। इसी खण्ड के दो लेखों में बताया गया है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में भी भारतवंशियों का शासन था और यह प्रदेश भी वृहत्तर हिन्दू राष्ट्र का अंग था।

ओबराय समग्र के द्वितीय खण्ड में भारत के महापुरुषों की जीवनियाँ हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के लगभग साठ श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन पर एक नई दृष्टि से लेखक ने प्रकाश डाला है। महर्षि दधीचि, महाकवि वाल्मीकि, वेदव्यास, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द, श्री गुरुजी, नेताजी सुभाष, लोकमान्य तिलक, एकनाथ रानाडे सरीखे भारत के सपूतों के व्यक्तित्व व कृतित्व को भी इसमें समाहित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनि निवेदिता तथा श्री अरविंद की शिष्या 'श्री माँ' का जीवन परिचय विशेष रूप से पठनीय है।

अमृत मंथन—समग्र का तीसरा खण्ड भारतीय तत्त्व-ज्ञान के मंथन के पश्चात् निकले अमृत के समान है। इसमें हिन्दू दर्शन, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता, धर्म-संस्कृति, विज्ञान एवं मनोविज्ञान पर विविध लेख हैं। अपने देश के प्रमुख पर्वों, यथा वर्षप्रतिपदा, वैशाखी, रामनवमी, गुरु पूर्णिमा, विजयादशमी आदि का भी संक्षिप्त महत्त्व इसी खण्ड में संकलित किया गया है। विज्ञान सम्बन्धी एक टिप्पणी में लेखक ने बताया है कि विज्ञान का जनक भारत है, भारत में ही विज्ञान की सभी शाखाओं का प्रादुर्भाव तथा विस्तार हुआ। रामायण पर प्रस्तुत अन्यान्य लेखों में से एक में विद्वान लेखक ने दावा किया है कि सम्पूर्ण विश्व में राम-कथा किसी-न-किसी रूप में लिखी गई है और इसलिये रामायण विश्व ऐक्य का आधार बन सकती है। इसी प्रकार दुनिया के अनेक देशों में योगेश्वर श्रीकृष्ण की आराधना पर भी एक महत्त्वपूर्ण आलेख इसी खण्ड में है। हिन्दू धर्म और संस्कृति के विविध आयामों को भी कुछ आलेख तथा टिप्पणियों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तीनों खण्ड पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

ओबराय समग्र की छपाई व साज-सज्जा भी उच्च कोटि की है। शिव-मठ के अधिपति पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरि के आशीर्वचन प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में हैं तथा उनके योग्य शिष्य संवित् सुबोधगिरिजी महाराज ने प्रत्येक खण्ड की

प्रस्तावना लिखी है। प्रथम खण्ड की सम्पादकीय में रूप में प्रस्तुत प्रस्तावना पढ़ने से पूज्य सुबोधगिरिजी की विद्वत्ता का परिचय मिल जाता है। वास्तव में उन्हीं का आदेश प्राप्त होने के बाद इस अमूल्य संग्रह को पढ़ने का अवसर मिला। प्रारंभ में तो व्यक्तिगत प्रसिद्धि के लिये प्रकाशित समझ कर इस संकलन को बिना देखे ही रख दिया गया था। सुबोधगिरिजी का संकेत मिलने के बाद इनकी खोज-बीन शुरू हुई।

अतः इन ग्रन्थों से परिचय कराने के लिये समीक्षा-लेखक स्वामी सुबोधगिरिजी का आभारी है। समग्र का द्वितीय खण्ड हिन्दू समाज के श्रद्धा केन्द्र संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी को तथा तृतीय खण्ड 'संवित् साधनायन' (अर्बुद-गिरि) के स्वामी ईश्वरानन्द गिरिजी महाराज को समर्पित है।

पाथेय कण, 16 मई, 2012

वेदान्त दर्शन और भगवद्गीता

हिन्दू संस्कृति के विश्वव्यापी प्रभाव को उजागर करने वाले शोधकर्ताओं में डॉ. हरवंशलाल ओबराय अग्रणी थे। दिल्ली और पंजाब विश्वविद्यालयों में अनेक वर्षों तक भारतीय संस्कृति एवं दर्शन शास्त्र का अध्यापन उन्होंने किया। अपने जीवन काल में 106 देशों की यात्राएं उन्होंने की तथा वहाँ के शैक्षणिक व अन्य संस्थानों में भारत की संस्कृति, हिन्दू धर्म तथा दर्शन को स्पष्ट करने वाले भाषण दिये। इसी के साथ उन देशों में मौजूद पुरातन हिन्दू संस्कृति के अवशेषों को संग्रहीत भी किया। मिशनरियों की ईसाईकरण की चुनौती का उत्तर देने के लिए उन्होंने राँची में 'संस्कृति विहार' की भी स्थापना की।

वर्ष 1983 में दिवंगत हुए श्री ओबराय का लेखन भी विस्तृत एवं बहुआयामी है। उनके लेख तथा वक्तृताओं का संग्रह '**डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र**' के रूप में बीकानेर के '**मानव प्रबोधन प्रन्यास**' ने प्रकाशित किया है। इस संकलन के तीन खण्ड तो एक वर्ष पूर्व ही छप चुके हैं तथा पाथेय कण में उनकी जानकारी भी आ चुकी है। शेष दो खण्ड हाल ही में प्रकाशित किये गये हैं।

समग्र का चौथा खण्ड 'वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता' शीर्षक से है। वेदान्त की वैज्ञानिकता सन्देह से परे है। फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इस विषय में काफी भ्रमित हैं। इस खण्ड में स्व. ओबराय के उन लेखों एवं वक्तृताओं का संकलन है जो भारतीय दर्शन एवं विपुल साहित्य से सम्बन्धित हैं। भारतीय दर्शन की तुलना में पूंजीवाद एवं साम्यवाद की मीमांसा भी की गई है। वेदान्त से जुड़े

अन्यान्य विषयों का परिचय भी इस खण्ड में है। परिशिष्ट में राष्ट्रीय समस्याओं पर समय-समय पर प्रकट किये गये श्री ओबराय के विचारों को सम्मिलित करने से संकलन की उपयोगिता बढ़ गई है।

ओबराय समग्र का पाँचवाँ खण्ड अमृत-तुल्य 'भगवद्गीता' पर है। 'गीतादर्शन की सार्वभौमिकता' नाम से प्रकाशित यह खण्ड पंचम वेद—गीता की महनीयता का विश्लेषण करने वाला है। 'गीता' सचमुच में विश्व का एक अनुपम ग्रन्थ है। भारत के सभी महापुरुषों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की है। विद्वत्ता की कसौटी भी हमारे यहाँ गीताभाष्य को माना गया। अर्थात् भगवद्गीता पर यदि किसी ने भाष्य लिखा है तभी उसे विद्वान समझा गया।

गीता के संकलन के इस पांचवें खण्ड में श्री ओबराय की लिखी गीता के प्रत्येक अध्याय की सरल व्याख्या के साथ इसके विश्वव्यापी प्रभाव तथा भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में इसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। गीता में आये विविध विषयों की सांगोपांग व्याख्या भी इसमें है। सभी व्याख्या तर्क संगत एवं मननीय हैं। परिशिष्ट में रामायण पर श्री ओबराय के लेखों को सम्मिलित किया गया है।

दोनों खण्ड पठनीय और ज्ञान के नये आयामों का दिग्दर्शन कराने वाले हैं। ग्रन्थों की छपाई एवं साज-सज्जा उत्कृष्ट है। स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के सम्पादकीय ग्रन्थों के पठन-मनन की उत्सुकता तो जगाते ही हैं, साथ ही कई महत्त्वपूर्ण विषयों की भी मीमांसा करते हैं।

पाथेय कण, 16 अगस्त, 2012

विश्वव्यापी श्रीराम-कथा

डॉ. हरवंशलाल ओबराय हिन्दू संस्कृति के अध्येता थे। उन्होंने अनेक देशों का भ्रमण किया और विश्व में यत्र-तत्र बिखरे हिन्दू-संस्कृति के प्रमाणों को एकत्रित किया। उनके उद्बोधनों और लेखों का संग्रह पाँच खण्डों में ओबराय-समग्र के रूप में प्रकाशित हो चुका है। पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने यह महती योजना कार्यान्वित की।

उन्हीं समग्र ग्रन्थों से विषयानुसार पुस्तकों का प्रकाशन अब प्रारम्भ किया गया है। उसी का प्रथम पुष्प **रामायण का हार्द** रूप में आया है। इसमें श्रीराम-कथा से सम्बन्धित लेख एवं भाषणों का संग्रह है। इनमें श्रीराम के दिव्य चरित्र और जनमानस पर उसके अमिट प्रभाव की चर्चा की गई है। एक लेख में भारत के विभिन्न भागों में रचित राम-कथाओं की जानकारी दी गई है। तमिलनाडु के

महाकवि कम्ब की कम्बन-रामायण का विशेष उल्लेख किया गया है। 'रामायण-विश्व ऐक्य का आधार' लेख में विश्व के अन्यान्य देशों में गाई जाने वाली श्रीराम-महिमा का वर्णन है।

इस रूप में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी और जानकारी में वृद्धि करने वाली है। प्रकाशन के लिये स्वामीजी का साधुवाद। साज-सज्जा एवं मुद्रण भी उत्तम है।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

संस्कृति का आख्यान

डॉ. ओबराय समग्र में पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी के भी कुछ लेख समाहित किये गये हैं। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित लेखों से पुस्तक बनी है–'भारतीय संस्कृति पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान'। संस्कृति और भारतीय संस्कृति को समझने के लिये यह उत्कृष्ट संग्रह है। पहला और विस्तृत लेख भारतीय संस्कृति पर ही है। लेख का पहला वाक्य है–

'संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र की देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका श्रृंगार है, कलाएं उसका सौंदर्य हैं, विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ इसका भण्डार है, संस्कृति उसकी प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जायेगा।'

लगभग सत्तर पृष्ठों के इस लेख को हृदयंगम करने के बाद संस्कृति सम्बन्धी कोई प्रश्न नहीं बचते। पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान की भूमिका की भी इसमें सुन्दर मीमांसा है। स्वामीजी की विद्वत्ता तो संदेह से परे है। सरल भाषा-शैली में संस्कृति और सभ्यता के वर्णन ने संग्रह को पठनीय बना दिया है।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति

प्रसिद्ध इतिहासकार, चिंतक एवं दार्शनिक स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के भाषणों एवं लेखों का संग्रह पाँच खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। उसी विपुल भण्डार से विषयवार मोती चुनने का कार्य पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी कर रहे हैं। पिछले दिनों अन्यान्य विषयों पर उनकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अब दो और विषयों पर पुस्तकें आई हैं। दोनों विषय आज के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पूरे विश्व में

हिन्दू संस्कृति का प्रभाव होने के अनेकों प्रमाण दुनिया में बिखरे पड़े हैं। इन साक्ष्यों का गहराई से अध्ययन पहले दीवान चमनलाल ने किया था। उनकी दो पुस्तकों **हिन्दू अमरीका** तथा **इण्डिया मदर ऑफ अस आल** में हिन्दू संस्कृति के इन भग्नावशेषों का वर्णन किया गया है। प्रकाण्ड विद्वान प्रो. रघुवीर ने भी अनेक देशों की यात्रा कर बहुत सारे साक्ष्य जुटाये। इतिहासकार पी.एन. ओक ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। चार खण्डों में वैदिक राष्ट्र का इतिहास लिख कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति का ही प्रभाव पूरे विश्व में था।

डॉ. ओबराय ने उसी मान्यता को और मजबूती दी है। उनके इस विषय के लेखों का संकलन 'विश्व भारत का चिर ऋणी है' नाम से प्रकाशित हुआ है। यह संकलन वास्तव में पठनीय है तथा आगे शोध के लिये आधार ग्रन्थ बन सकता है। इसके एक लेख में 'आर्यों के भारत में आने की धारणा' को मिथ्या एवं पूर्वाग्रह-युक्त सिद्ध किया गया है। यह भी बताया गया है कि भारत के श्रेष्ठ पुरुष पूरी दुनिया को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने के लिये अन्य देशों में गये। आगे के लेखों में मिस्र, ईरान, रूस, यूनान, रोम, उज्बेकिस्तान, दक्षिण-पूर्व एशिया, इंग्लैण्ड, सऊदी अरब आदि देशों पर प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। प्रथम पूज्य गणपति, श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध आदि के दुनिया के देशों में उपासना के प्रमाण भी संकलन के लेखों में हैं।

भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय—दूसरा संकलन हिन्दू संस्कृति की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा पर है। इसमें स्वामी सुबोधगिरिजी के लेख भी सम्मिलित किये गये हैं। 'धर्म' के सम्बन्ध में समाज में बड़ी भ्रामक कल्पनाएं हैं। संकलन में धर्म की अवधारणा को भी सुस्पष्ट किया गया है। साथ ही हिन्दू धर्म की विशेषताओं पर भी दृष्टिपात किया गया है।

दोनों ही संकलन संग्रहणीय हैं तथा **ज्ञान गंगा प्रकाशन,** जयपुर और **प्रज्ञा-साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र,** जयपुर में उपलब्ध हैं।

पाथेय कण, 1 अगस्त, 2014

मातृत्व के पंचविध रूप

अच्छा साहित्य एक ऐसी निधि है जिसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। किसी भी व्यक्ति के जीवन में अच्छी पुस्तकें सदैव सही मार्ग पर बनाये रखने वाली होती हैं। सत्साहित्य की रचना करने वालों का समाज सदा ऋणी रहता है। और यदि कोई संन्यासी ऐसे साहित्य के उन्नयन को अपना मिशन बना ले तो समाज की कृतकृत्यता ऐसे मिशन के लिये और बढ़ जाती है। इसलिये पूज्य

स्वामी संवित् सुबोधगिरि का अभिनन्दन किया जाना चाहिये कि वे लगातार उत्तम साहित्य का सृजन व प्रकाशन कर रहे हैं।

हाल ही में भीनासर स्थित उनके आश्रम से छह और पुष्प पल्लवित हुए हैं। इनमें अधिकांश सामग्री डॉ. हरवंशलाल ओबराय के ग्रन्थों की है तथा कुछ लेख पूज्य स्वामीजी के हैं। एक पुस्तक में भारतीय संदर्भ में नारी की महत्ता एवं मातृत्व के पाँच रूपों पर पूर्व प्रकाशित लेखों का संकलन है। हिन्दू संस्कृति में नारी का जितना ऊँचा स्थान रहा है उसकी तो कल्पना भी पश्चिमी जगत या सेमिटिक मजहबों को मानने वाले नहीं कर सकते। नारी या मातृ-शक्ति—माता, भगिनि और पत्नी—तीनों रूपों में वन्दनीय है।

'भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप' में भारतीय संस्कृति में मातृ-शक्ति का पूजनीय स्थान होने के अतिरिक्त माँ के पाँच रूपों पर भी विचार किया गया है। ये पाँच रूप हैं–माँ सरस्वती, माँ दुर्गा तथा माँ लक्ष्मी के रूप में जगन्माता, भारत माता, जननी, गो-माता तथा गंगा माता।

सभी रूपों के विशद् विवेचन के साथ जगन्माता का स्वरूप लेने वाली कुछ प्रमुख नारियों के जीवन पर भी पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। माता जीजा बाई, देवी अहल्या, महारानी लक्ष्मीबाई, भगिनि निवेदिता तथा श्री माँ जैसी तेजस्वी महिलाओं के प्रेरक जीवन की एक झलक उक्त प्रकाशन में है।

सद्यप्रकाशित छह पुस्तकों में से एक अन्य भारत के परम्परागत पर्वों पर है। मकर संक्रांति, वर्ष-प्रतिपदा, वैसाखी, गुरु पूर्णिमा, विजयादशमी, रक्षाबन्धन आदि पर्वों के प्राकृतिक व सामाजिक महत्त्व को बताते हुए भारत की उत्सव परम्परा पर एक विहंगम दृष्टि इस पुस्तक में डाली गई है। कुछ मौलिक सुझाव भी संकलित लेखों में हैं। उदाहरणार्थ फाल्गुनी पूर्णिमा को होली के साथ-साथ चन्द्र-जयंती मनाने की बात कही गई है। चन्द्रमा का जन्म फाल्गुन मास की पूर्णिमा को ही माना गया है। कार्तिक मास में दीपावली आती है। इसके पूर्व घरों में सफाई अभियान चलता है। कार्तिक स्नान को भी भारतीय परम्परा में पुण्यदायी माना गया है। दीपावली पर मिट्टी के दीयों में दीपक जलाना भी पर्यावरण शुद्धि का एक उपाय है। अतः कार्तिक मास को 'पर्यावरण विकास माह' के रूप में मनाने का एक नया विचार भी उक्त पुस्तक में दिया गया है।

दोनों ही प्रकाशन पठनीय एवं भारतीयता उत्पन्न करने की दृष्टि से उपयोगी हैं। शेष चार संकलन भी विशेषताएं लिए हुए हैं। पुस्तकें इस प्रकार हैं :

1. भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप, मूल्य 85/-
2. भारतीय परम्परा में उत्सव, मूल्य 70/-
3. आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज, मूल्य 80/-

4. गीता में भक्ति योग, मूल्य 30/-
5. सृष्टि रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व, मूल्य 50/-
6. जीवन रहस्य और मृत्यु रहस्य, मूल्य 20/-

पाथेय कण, 1 नवम्बर, 2014

'संन्यास आश्रम' के दस और उत्कृष्ट प्रकाशन

पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी महाराज सामान्य जन को सत्साहित्य के माध्यम से संस्कारित करने के अभियान में दत्त-चित्त से जुटे हुए हैं। समाज को सही दिशा देना ही संन्यास-धर्म है। पूज्य स्वामीजी संस्कार-क्षम साहित्य की रचना के मार्ग से भी समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति और इतिहास के अध्येता डॉ. हरवंशलाल ओबराय के विपुल साहित्य में से कुछ और मोती उन्होंने निकाले हैं। गत दिनों दस और पुस्तकें संन्यास आश्रम भीनासर से प्रकाशित हुई हैं। तीन पुस्तकों में देश के श्रेष्ठ पुरुषों की जीवनियों का संकलन है। 'आध्यात्मिक महापुरुष' में भगवान् दत्तात्रेय, विश्वकर्मा, दधीचि, गौतम बुद्ध, आद्य शंकराचार्य, भगवान् महावीर, कबीर एवं संत ज्ञानेश्वर के साथ-साथ चैतन्य महाप्रभु, भक्त रैदास, एकनाथ, महर्षि दयानन्द, श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द जैसे तेजपुंजों की जीवनियाँ हैं।

'हमारे स्वतंत्रता सेनानी' में यशस्वी सम्राट विक्रमादित्य को पहला स्वतन्त्रता सेनानी माना गया है। प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप और महाराज शिवाजी के संक्षिप्त जीवन-वृत्तों के साथ वीर सावरकर, सुभाष बाबू, तिलक, महात्मा गांधी और संघ-संस्थापक डॉ. हेडगेवार की जीवनियाँ भी इसमें शामिल की गई हैं। शहीद शिरोमणि भगतसिंह और उधमसिंह के साथ 21 स्वतन्त्रता सेनानियों की जीवनियाँ इसमें हैं। 'हमारे साहित्यकार' में महर्षि वाल्मीकि और वेद व्यास से लेकर जयशंकर प्रसाद और मुंशी प्रेमचन्द तक के साहित्यकारों का जीवन-परिचय संकलित किया गया है। 'सिख-परम्परा' पुस्तक में गुरु नानक सहित सभी गुरु साहिबान के कर्तृत्व के साथ-साथ पंजाब समस्या पर भी दृष्टिपात किया गया है।

भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन एक अन्य पुस्तक में किया गया है। 'हमारी राष्ट्रीय समस्याएं' पुस्तक भी काफी विचारोत्तेजक है।

डॉ. ओबराय पुस्तक मालिका के सभी दसों पुष्प पठनीय एवं अत्यंत उपयोगी हैं। सभी में मुद्रण एवं साज-सज्जा तो उच्च-कोटि की है ही, प्रशंसनीय

बात यह है कि मुद्रण की अशुद्धियाँ इन पुस्तकों में कतई नहीं हैं। इस दृष्टि से इनका मूल्य बहुत ही कम है।

पाथेय कण, 19 अप्रैल, 2015

डॉ. हरवंशलाल ओबराय की चार पुस्तकें

डॉ. ओबराय भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ अध्येता, तत्त्व चिन्तक एवं प्रतिपादक थे। उनके सांस्कृतिक प्रसार-प्रचार के क्षेत्रों में भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देश थे। दिल्ली एवं पंजाब विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अनेक महाविद्यालयों में समय-समय पर वे प्राध्यापक भी रहे। राँची में उन्होंने संस्कृति विहार की स्थापना की, जिसके उद्घाटन-समारोह को श्रीश्री माता आनन्दमयी, महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज एवं पूज्य स्वामी श्री शरणानन्दजी सदृश विश्ववन्द्य महापुरुषों ने अपनी उपस्थिति और आशीर्वाद से गौरवान्वित किया। डॉ. ओबराय ने अपने व्यस्त जीवन में भी समय निकालकर अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन करते हुए, तथा वाचिक क्रम से भी सांस्कृतिक विधि का उन्मुक्त रूप से संप्रेषण किया। उनके ग्रन्थ पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरि (संन्यास आश्रम), भक्तानन्द शिव मन्दिर, भीनासर, (बीकानेर) के सुसम्पादन एवं अनुग्रह से निरन्तर प्रकाशित हो रहे हैं। कतिपय कृतियों के अल्प कलेवर युक्त होने पर भी उनमें निहित तत्त्वज्ञान की निधि बहुमूल्य है। उनमें से कुछ संप्रति मेरे सम्मुख हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है–**(1) सृष्टि-रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व**–मात्र 72 पृष्ठों की इस पुस्तक में डॉ. ओबराय के 'सृष्टि-रहस्य, कर्म सिद्धान्त, कर्मयोग, जहाँ राम तहँ काम नहिं तथा गीता में यज्ञ तत्त्व' लेख पूज्य स्वामीजी के द्वारा संकलित तथा सम्पादित रूप में संगृहीत हैं। इनमें शास्त्रीय गाम्भीर्य के साथ सम्प्रेषण की रोचकता तत्त्वज्ञान की गहराई में भी पाठक को बाँधे रखती है।

(2) आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज–इस अल्पकाय कृति में विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत 23 आलेख निबद्ध हैं, जिनकी विषयवस्तु आत्मतत्त्व, हिन्दू धर्म की विशेषताओं, पूर्व और पश्चिम के दर्शनों की तुलनात्मक विवेचना, भारतीय संस्कृति की महत्ता और चिन्ता से मुक्ति के उपायों पर केन्द्रित है। एक आलेख है 'स्वतन्त्रता के सांस्कृतिक आधार', इसे पढ़कर लगता है कि सुसंस्कृति के अभाव में हमारी स्वतन्त्रता भी आज कितनी अधूरी है। राष्ट्र-जीवन में, हमें जिन सांस्कृतिक पुरोधाओं के चिन्तन को वरीयता देनी चाहिए थी, उनसे हम अभी कितने दूर हैं। चाहे गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, गुरुगोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती सदृश कवि-मनीषी हों या श्रीराम,

श्रीकृष्ण जैसे अवतारी महापुरुष हों, हमने किसी के भी विचारों को क्या राष्ट्र-निर्माण में समीचीन स्थान दिया है?

(3) भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पञ्चविध रूप–इस कृति की विषयवस्तु नाम से ही स्पष्ट है। डॉ. ओबराय और स्वामीजी ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से प्राच्य और प्रतीच्य सन्दर्भों में नारी विषयक अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए भारतीय संस्कृति में नारी के विशिष्ट गौरव को रेखांकित किया है। साथ ही, गोमाता, माँ गंगा, पार्वती, शकुन्तला, अनसूया, कुन्ती, जीजाबाई, अहल्याबाई, लक्ष्मीबाई, भगिनी निवेदिता, एनी बेसेण्ट, अरविन्द आश्रम की पूज्य श्री माँजी तथा सरोजिनी नायडू इत्यादि के प्रेरक व्यक्तित्व और मननीय कृतित्व को आकर्षक ढंग से उपस्थापित किया है।

4. भारतीय परम्परा में उत्सव–'पर्व' का अर्थ है, जिसके आयोजन से सर्वविध प्रसन्नता प्राप्त हो, भारतीय जीवन में इसीलिए अत्यन्त प्राचीन काल से ही बहुविध पर्वों और उत्सवों का समावेश दिखलायी देता है; लेकिन यह भी सच है कि आज हम अपने बहुसंख्यक पर्वों की प्रतीकात्मकता, प्रयोजननिष्ठता और उत्सवधर्मिता को भूल चुके हैं। इस कृति के प्रणेता ने हमें नववर्ष, रामनवमी, वैशाखी, लोहड़ी, बुद्ध-जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, रक्षाबन्धन, वर्ष प्रतिपदा, कर्म एकादशी तथा विजयादशमी के महत्त्व को बतलाते हुए ऐतिहासिक सन्दर्भों में उनकी उपादेयता से परिचित कराया है। लेखक बहुश्रुत मनीषी रहे हैं, अतः उनकी कृतियों में प्रामाणिक सन्दर्भ स्वतः अनुस्यूत हैं।

संक्षेप में स्व. डॉ. ओबराय और पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरि के अपार वैदुष्य, आध्यात्मिक दृष्टि और सुबोध सम्प्रेषण–सामर्थ्य से समन्वित ये चारों कृतियाँ अति मननीय तथा संग्रहणीय हैं।

—प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

बी-1/4, विक्रान्त खण्ड, गौमती नगर, लखनऊ 226010 (उ.प्र.)

राष्ट्रधर्म, मार्च, 2015

एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक लेख-संग्रह

दिल्ली एवं पंजाब के अनेक विश्वविद्यालयों के कॉलेजों में दर्शनशास्त्र के आचार्य रहे डॉ. हरवंशलाल ओबराय भारतीय संस्कृति के विशिष्ट अध्येता एवं गवेषक थे। उन्होंने विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव का गहन अनुशीलन करते हुए अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये थे। स्वदेश के साथ

ही विदेश के भी बहुसंख्यक संस्थानों में भी उन्होंने प्रवचन दिये थे। राँची में उन्होंने संस्कृति-विहार की स्थापना की थी, जिसके उद्घाटन-समारोह में म.म.पं. गोपीनाथ कविराज जैसे श्रेष्ठतम मनीषी तथा श्री श्री माँ आनन्दमयी सदृश सन्त-शिरोमणि सम्मिलित हुए थे। संस्कृति-विहार के माध्यम से डॉ. ओबराय ने छोटा नागपुर के वनवासी बन्धुओं के मध्य भी संस्कृति की महाज्योति प्रज्वलित की थी। विदेशी पादरियों के द्वारा किये जा रहे हिन्दू-समाज के धर्मान्तरण तथा अमानुषी अत्याचारों का उन्होंने प्रबल प्रतिरोध किया। यद्यपि उनका निधन सितम्बर, 1983 में एक व्याख्यान-कार्यक्रमजन्य यात्रा में दुर्घटनावश हो गया, तथापि उनके प्रवचन तथा शोधपूर्ण ग्रन्थ जिज्ञासुओं के लिए निरन्तर प्रेरणा और प्रकाश के विशिष्ट स्रोत हैं। यह उक्ति बहुचर्चित है कि किसी महान् प्रज्ञापुरुष की कीर्ति उसके प्रबुद्ध शिष्यों और ग्रन्थों पर निर्भर होती है। इस दृष्टि से डॉ. ओबराय के साहित्य और व्याख्यानों के संरक्षण के लिए उनके विशिष्ट शिष्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने काम का बीड़ा उठाया। उनके प्रयत्न से 'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के नाम से यह साहित्य पाँच खण्डों में प्रकाशित हो चुका है, जिसके शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं–1. राष्ट्रीय समस्याएँ और इतिहास, 2. महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, 3. धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान, 4. वेदान्त-दर्शन की वैज्ञानिकता तथा 5. गीता दर्शन की सार्वभौमिकता।

'विश्व भारत का चिर ऋणी है' शीर्षक ग्रन्थ डॉ. ओबराय के प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण 26 लेखों का संग्रह है, जिनका संकलन और सम्पादन स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने स्वयं किया है। इन निबन्धों की मुख्य 'थीम' विश्व भर के विभिन्न छोटे-बड़े यूरोपीय देशों, अमेरिका, रूस, चीन, ईरान, दक्षिण-पूर्वेशिया तथा अरब देशों में भारतीय संस्कृति का कैसे और कितना प्रसार हुआ तथा आज भी उनमें हमारे कौन-से सांस्कृतिक अवशेष मिलते हैं। डॉ. ओबराय के अनुसार सोवियत रूस श्वेत-ऋषि का देश है तथा रूसी भाषा संस्कृति की पुत्री है। अन्य स्थापनाओं के अनुसार (क्या) इंग्लैण्ड कभी भारत का उपनिवेश था? यहूदी और ईसाई धर्मग्रन्थों में संस्कृत का शब्द-भण्डार विद्यमान है। नील नदी का हमारे पुराणों में विवरण है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ अत्यन्त विचारोत्तेजक, प्रेरक तथा हमारे मानसिक क्षितिज का दूर तक विस्तार करने वाला है। संक्षेप में ग्रन्थ पठनीय, मननीय तथा संग्रहणीय है। ग्रन्थकार डॉ. ओबराय के साथ ही सम्पादक श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी भी इस नवीन ज्ञानराशि को जुटाने के लिए निश्चय ही बधाई के पात्र हैं।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

बी-1/4, विक्रान्त खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ 226010 (उ.प्र.)

राष्ट्रधर्म, अगस्त, 2014

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और उनका भक्तियोग

पांच वृहद् खण्डों में प्रकाशित स्व. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के समग्र को अब छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में विषय के अनुसार प्रकाशित किया जा रहा है। यह सत्कार्य भीनासर के पूज्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी महाराज कर रहे हैं। अभी तक 24 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हाल में दो और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और स्वामीजी लिखित भक्यियोग।

विश्व के अब तक के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ और महानतम व्यक्ति कोई हुए हैं तो वे हैं योगेश्वर श्रीकृष्ण। डॉ. ओबराय ने ऐसे विराट व्यक्तित्व को जिन दो प्रवचनों में उतारने का प्रयत्न किया था वे दोनों प्रवचन 'योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण' में हैं। दोनों प्रवचन जन्माष्टमी के अवसर के हैं। इनमें श्रीकृष्ण की महत्ता की ओर इंगित किया गया है। श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निसृत गीता, इसके विश्वव्यापी प्रभाव और इसकी सार्वभौमिकता की चर्चा भी इस पुस्तक में है। विश्व के अन्यान्य देशों में श्रीकृष्ण किन-किन रूपों में पूजे जाते हैं, यह भी बताया गया है।

रास-लीला के बारे में कई लोगों के मन में भ्रम रहता है। रास-लीला का सही मन्तव्य और श्री राधाजी के दिव्य चरित्र के वर्णन के साथ श्रीमद्भागवत पर भी प्रकास डाला गया है। परिशिष्ट में स्व. विष्णुकांत शास्त्री का श्रीराम पर एक लेख भी सम्मिलित किया गया है। पुस्तक निश्चित रूप से पठनीय है। मुद्रण और साज-सज्जा हमेशा की तरह सुन्दर है।

भक्तियोग

इसका सम्बन्ध भी योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से ही हैं। गीता के बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भक्ति के मार्ग से ईश्वर की प्राप्ति का विवेचन किया है। इसी अध्याय की मीमांसा पूज्य स्वामी सुबोधगिरिजी ने की है। उनकी मीमांसा की विशेषता यह है कि उन्होंने 'भक्ति' को एकांगी और केवल व्यक्ति सम्बन्धित नहीं माना है। इसलिए प्रारम्भ में ही स्वामीजी ने स्पष्ट किया है कि देश और समाज से अलग होकर भक्ति नहीं की जा सकती, न ही ऐसी भक्ति का कोई मूल्य है। देश-भक्ति का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा कि देश-भक्ति की सीढ़ी चढ़कर ही ईश-भक्ति की ओर बढ़ा जा सकता है।

इसके पश्चात् उन्होंने गीता के बारहवें अध्याय की सुन्दर व्याख्या की है। इस अध्याय में श्लोक कुल बीस ही हैं किन्तु गीता के प्रत्येक श्लोक की व्याख्या

में एक पुस्तक लिखी जा सकती है। पूज्य स्वामीजी ने सामान्यजन के समझने योग्य शब्दों में इन बीस श्लोकों की व्याख्या की है। यह प्रचलित व्याख्याओं से अलग और वैज्ञानिकता लिए हुए हैं। अन्त में यह बताया गया है कि 'भक्ति' ने किस प्रकार पराधीनता के काल में हमारे धर्म और समाज को बचाया। यह अध्याय सर्वाधिक पठनीय है। पूरी पुस्तक ही ध्यान से पढ़ी जानी चाहिए।

पाथेय कण, 1 फरवरी 2017

आवेदन पत्र

माननीय....

सादर प्रभुवंदना।

गाजियाबाद में विश्व हिन्दू परिषद् की प्रबंध समिति की बैठक दिनांक 28-29 जून, 2012 को संपन्न हुई। इसके पूर्व 27 जून को प्रांत संगठन मंत्री, प्रांत सहसंगठन मंत्री, उपप्रांत संगठन मंत्री तथा क्षेत्रीय संगठन मंत्रियों की बैठक हुई। इस बैठक में माननीय महामंत्री श्री चम्पतरायजी ने श्रद्धेय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का परिचय देते हुए उनके साहित्य के पांच खण्डों में प्रकाशन के विषय में बताया। इसकी जानकारी मा. श्री बालकृष्ण उ. नाइक (उपाध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद्) ने मुझे दी।

श्रद्धेय डॉ. ओबराय का व्यापक अध्ययन एवं शोधकार्य था। भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषि परम्परा तथा विश्व की प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का उनका सम्यक् अध्ययन था। उनका समस्त लेखन चाहे संघ परिवार के कार्य हो, चाहे रामकृष्णमिशन के कार्य हो, चाहे अरविन्द आश्रम के कार्य हो, चाहे दिव्य जीवन संघ या भारत सेवाश्रम संघ हो या स्वामी रामदेवजी हों, या आर्य समाज या चिन्मय मिशन सभी के कार्यों को पुष्ट करने वाला तथा वैचारिक, सांस्कृतिक-दार्शनिक आधार प्रदान करने वाला है। उनका सम्पूर्ण लेखन आज के संदर्भ में है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम आने वाला है तथा आज के युग की चुनौतियों का सम्यक् समाधान प्रस्तुत करने वाला भी है। हिन्दुओं को जितने विषय जानने चाहिए वे सब इसमें समाहित हैं। प्रत्येक भारतीय नागरिक जो भारतवर्ष से प्रेम करता है, उसके लिये यह ग्रंथ एक धरोहर है। इसे पढ़ने से एक हजार वर्षों के विदेशी आक्रमण, अत्याचार एवं उत्पीड़न के कारण जो हीन ग्रंथि सामान्य भारतीय के मन को दूषित कर रही है, उसका निवारण होकर पाठक आत्मगौरव के भाव से आप्लावित हो जाता है।

अतः यह एक राष्ट्रीय कार्य है, ईश्वरीय कार्य है जिसे अवश्य ही जन-प्रकाश में आना चाहिए। इसी दृष्टि से मैंने अपने पूरे जीवन को इस कार्य में लगाया है और मेरे जीवन की यही सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

इस कार्य की महत्ता को समझते हुए इसके प्रचार-प्रसार में आपका सहयोग अपेक्षित है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आप स्वयं व्यक्तिगत रूप से डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को और खण्डशः विषयवार 29 पुस्तकों (जिसमें पांच पुस्तकें स्वामी संवित् सुबोधगिरि की है, उसमें भी डॉ. ओबरायजी की दृष्टि का खुलासा और विस्तार है) को खरीदें। अधिक से अधिक कार्यकर्ता बंधुओं को खरीदने के लिए प्रेरित करें तथा वाचनालयों, पुस्तकालयों में रखवाने की व्यवस्था करें। आप सब की कुशल-मंगल कामना ईश्वर से चाहता हूँ। शेष प्रभु कृपा के साथ।

आप सबका

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

09413769139

विशेष द्रष्टव्य–

पांचों खण्ड 2,688 (दो हजार छह सौ अट्ठासी) पृष्ठों में हैं। पांचों खण्डों का मूल्य 2600 (छब्बीस सौ) रुपये मात्र है जो कि छूट के बाद 2100 (इक्कीस सौ) रुपये मात्र में उपलब्ध है। डाक खर्च अलग से 100 (एक सौ) रुपये है। अब इस पुस्तक की खण्डशः विषयवार 24 पुस्तकें प्रकाशित कर दी है। इसके अलावा पांच पुस्तकें स्वामी संवित् सुबोधगिरि की हैं। कुल 29 पुस्तकें 4192 (चार हजार एक सौ बानबे) पृष्ठों में है। मूल्य 3000 (तीन हजार) रुपये मात्र में उपलब्ध है। डाक खर्च अलग से 100 (एक सौ) रुपये हैं। मेरे बैंक खाते में 3100 (इकतीस सौ) रुपये जमा करके रजिस्टर्ड डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती है और समग्र को बाइस सौ में। मेरा अकाउंट नं. इस प्रकार है—स्वामी संवित् सुबोधगिरि (Swami Samvit Subodh Giri) A/C No. 61217191109 (I.F.S.C. Code No. SBBJ0010167)

अनुक्रम

1.	प्रथम संस्करण की भूमिका	45
2.	द्वितीय संस्करण की भूमिका	49
3.	डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र : प्रथम तीन खण्ड की सम्पादकीय	52
4.	डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र : चतुर्थ खण्ड की सम्पादकीय	81
5.	डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र : पंचम खण्ड की सम्पादकीय	134
6.	संस्मरण	161
7.	डॉ. हरवंशलाल ओबराय के संस्मरण	164
8.	जेल जीवन व अन्य संस्मरण	167
9.	एक कर्मठ योगी	169
10.	ओबरायजी की पावन स्मृतियां : बहन के संस्मरण	170
11.	अपने मित्रों के प्रति	172
12.	लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े का पत्र डॉ. ओबराय के नाम	174
13.	राम साठे का पत्र	175
14.	अभिनन्दन	176
15.	राष्ट्रीय मुस्लिमों के संदर्भ में कुछ विचार	178
16.	प्रो. ओबराय और अब्दुल लतीफ	183
17.	रामायण : साम्प्रदायिक या धार्मिक	186
18.	हमारे आदर्श राम या बाबर, आदर्श पुस्तक रामायण या बाबरनामा एवं आदर्श स्थान रामजन्मभूमि मन्दिर या बाबरी मस्जिद	191
19.	गीता राष्ट्रीय ग्रंथ है	207
20.	गो माता	217
21.	उशा उल्ला खां	229
22.	हमारे पड़ोसी शिष्य देश	230

23. भारत की विदेश नीति 232
24. पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि 235
25. पर्यावरण के प्रति पश्चिम की दृष्टि 245
26. हमारे पतन का कारण अध्यात्म नहीं 252
27. भारत राष्ट्र की विशेषता और उसका भवितव्य 254
28. उपसंहार 258

परिशिष्ट

29. शंकराचार्य जयन्ती 272
30. रामकृष्ण परमहंस देव 280
31. डॉ. एनी बीसेंट 290
32. भारतीय शिक्षा पद्धति का अध:पतन क्यों और कैसे हुआ 292
33. अशोक-चक्र पर नव प्रकाश 298
34. धर्मान्तरण द्वारा धर्म पर डाका एवं राजनीति पर लगाम 302
35. जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे 303
36. डॉ. राधाकृष्णन उवाच 305
37. इसलाम-ईसाइयत पर प्रबुद्धों के विचार 307
38. सुमित्रानन्दन पंत उवाच 308
39. डॉ. अब्दुल कलाम उवाच 308
40. आओ! शिष्य बनें 309
41. सेवा का पुनीत संकल्प 310

प्रथम संस्करण की भूमिका

हम सेमेटिक परम्परा में विशेषकर इसलाम और ईसाइयत के अमानवीय, अराष्ट्रीय, अप्रजातांत्रिक, अधार्मिक, अआध्यात्मिक, अदार्शनिक, अवैज्ञानिक, अबौद्धिक, अतार्किक, असामाजिक, पर्यावरण विरोधी, नारी विरोधी, मानव स्वभाव के विरोधी स्वरूप को समझना नहीं चाहते। इन सब बातों की अनदेखी कर इनको हर स्थिति में अल्पसंख्यक का दर्जा देकर सब प्रकार की विशेष सुविधाएं, संरक्षण देकर देश को अलगाव, आतंक, आगजनी के हवाले कर दिया गया। और यह क्रम निरन्तर वृद्धि को पा रहा है। ये न धर्म हैं, न पंथ हैं। ये तो अपने-अपने उपनिवेश एवं बाजार स्थापित करने के अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक षड्यंत्र हैं। तभी तो जिन्ना स्पष्ट रूप से कह पाते हैं पाकिस्तान की नींव तो उसी दिन रखी गयी जब हिन्दू से पहला मुसलमान बना। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं जब कोई हिन्दू से मुसलमान या ईसाई बनता है तब हमारे देश का एक बन्धु कम नहीं होता, हमारे राष्ट्र का एक शत्रु बढ़ जाता है। जब तक हिन्दू है हम-आप की तरह शांत, शिष्ट, अहिंसक भारत भक्त है, राम व कृष्ण का पुजारी है, गो पूजक है, जैसे ही हिन्दू से ईसाई या मुसलमान बनता है वह अलगाववादी आतंकवादी राम-कृष्ण का हत्यारा गोभक्षक बन जाता है, भारत माता डायन लगने लगती है। स्पष्ट है यह एक विशुद्ध राजनैतिक षड्यंत्र है जिसमें धर्म और अध्यात्म की कोई गंध नहीं है। पर पता नहीं हम कब जिन्ना और स्वामी विवेकानन्दजी के कथन को स्वीकार कर पायेंगे।

हम अपने देश के मूल हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, भाषा, परम्परा, महापुरुषों, मान बिन्दुओं, श्रद्धा बिन्दुओं की जिसके कारण भारत भारत है, हिन्दुस्तान है की चर्चा नहीं करना चाहते कि इससे मुसलमान नाराज हो जायेंगे। ग से गणेश हटाकर गधा-गमला पढ़ाया जा रहा है। टीवी से सत्यमं शिवं सुन्दरम् हटा दिया गया है। राम राम का परस्पर सम्बोधन हटा दिया गया। स्कूल में विद्यारम्भ सरस्वती वंदना से हो, इससे धर्मनिरपेक्षता खतरे में पड़ने लगती है। भगवे की बू आने लगती है। पता नहीं इस देश का भगवाकरण नहीं तो क्या होगा। भारत का भारतीयकरण और हिन्दुस्तान का हिन्दूकरण नहीं हो तो क्या हो? हिन्दू में भारत में उत्पन्न सभी मत-

पंथ आते हैं। इसको अस्वीकारने की प्रवृत्ति गांधीजी के समय प्रारम्भ हुई जो आज तक जारी है। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ को सुरक्षित रखने के लिए नेहरूजी को चुना, पर पता नहीं गांधीजी की क्या कमजोरी थी कि उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नेहरू को चुना, इस पर इतिहास मौन है। क्योंकि दोनों की विचारधाराओं में कोई मेल नहीं है, मिलन बिन्दु नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिम को यह चेतावनी दी थी—जिसे तुम सभ्यता समझते हो वह सच्ची सभ्यता नहीं है। पश्चिमी-सभ्यता में जो भी खेल-तमाशे हैं वह सब ऊपर ही ऊपर सतह पर हैं, अन्दर तो केवल पीड़ा ही पीड़ा, व्यथा ही व्यथा, हाय-हाय भरी हुई है। पर भारत में ऊपर तो दैन्य, पीड़ा, कराह है अंग्रेजों की मार के कारण, पर अन्दर में निश्चिंतता, आमोद-प्रमोद है। क्योंकि उसे आत्मा की अमरता और कर्म के सिद्धान्त में विश्वास है। कुछ राष्ट्रीय भूलों के कारण अंग्रेजों की मार से यह दुर्दशा हुई है, उन भूलों का परिमार्जन कर पुनः उठ खड़े होंगे और विश्वगुरु के पद को पुनः हासिल कर लेंगे। पर पश्चिम के निरी भौतिकता पर आधारित होने के कारण स्वामीजी कहते हैं—पश्चिमी सभ्यता ज्वालामुखी पर्वत स्थित, होंठों पर लिपिस्टिक लगाये कृत्रिम मुसकान बिखेर रही है। अगर पचास वर्ष के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो वह कभी भी चिथड़े-चिथड़े हो बिखर जायेगी। जिस विषय में स्वामी विवेकानन्दजी ने सावधान किया वहीं पं. नेहरू ने भारत में ही भारत के आध्यात्मिक आधार को तिलांजलि देकर पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण प्रारम्भ करने का दौर प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने अपने हिन्द स्वराज्य में जिसे राक्षसी सभ्यता, पैशाचिक सभ्यता कहा। स्वामी रामतीर्थ ने पश्चिमी सभ्यता को गोबर में लिपटी हुई मिठाई कहा, उसे प्रश्रय मिलने लगा। पश्चिमी सभ्यता अर्थ और काम की अनन्त भूख को जगा देती है। इसी कारण आज देश में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, महँगाई-मिलावट आदि हैं। क्योंकि इसमें श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता। यही कारण है कि धर्म के प्रति, सत्य के प्रति, कर्म के प्रति, सिद्धान्त के प्रति, पुनर्जन्म के सिद्धान्त के प्रति, पूर्वजों के आदर्श के प्रति वह आस्था शेष नहीं है। मैक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी है—भारत से हम क्या सीख सकते हैं। India : what can it teach us उसमें हिन्दुओं के चरित्र पर एक अध्याय है, जिसमें वह कहता हैं—प्रायः हिन्दू सत्यपरायण, धर्मवीर, ईमानदार है। वह गंगा की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता, मन्दिर की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता चाहे उसके प्राणों की, सारी धन सम्पदा की बलि चढ़ जाए। मैक्समूलर कहता है यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है कि चाहे यूनानी हो या चीनी, ईरानी हो या अरब का, किसी भी विदेशी यात्री ने भारत के बारे में कुछ भी लिखा हो हमें उसमें भारत के राष्ट्रीय चरित्र के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व

के रूप में भारतवासियों की सत्यनिष्ठा एवं न्यायप्रियता की चर्चा सर्वप्रथम सर्वत्र समान रूप से मिलती है। यही विदेशी यात्री अन्य देशों के विषय में ऐसा मन्तव्य व्यक्त नहीं करते। वह कहता है—फ्रांस की यात्रा पर गये किसी अंग्रेज लेखक के यात्रा विवरण को पढ़ें तो हमें उसमें फ्रांसीसियों की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा आदि की चर्चा शायद ही कहीं मिल पायेगी। इसी प्रकार इंग्लैंड का भ्रमण करने वाले किसी फ्रांसीसी के यात्रा विवरण में अंग्रेजों में इन गुणों की विद्यमानता का नाममात्र के लिए भी उल्लेख कठिन है। पर भारत की सच्चरित्रता के विषय में सब एकमत हैं। पर आज देश में क्या स्थिति हो गयी है? सत्य बोलने वाले, ईमानदारी बरतने वाले आज मूर्ख समझे जाते हैं। उन्हें ही सिर झुकाकर चलना पड़ता है। आज भले ही लोग मन्दिर जाते हों, तीर्थ यात्रा करते हों, तीर्थों में भीड़ भी बढ़ती जा रही है पूजा-पाठ भी करते हों पर आज वह आस्था शेष नहीं है। अतः भ्रष्टाचार भी कर रहे हैं, बेईमानी भी कर रहे हैं। घूसखोरी, मिलावट भी साथ-साथ कर रहे हैं। स्पष्ट है हिन्दू अध्यात्म को बाद देकर इसलाम एवं ईसाइयत के विकृत अध्यात्म को मान्यता देकर उन्हें सरकारी एवं संवैधानिक सुविधा, संरक्षण देने के दुष्परिणाम आज के अलगाववाद, आतंकवाद, आगजनी आदि हैं। स्वामी विवेकानन्दजी ने सावधान किया था अपने आध्यात्मिक आधार को छोड़ने का दुष्परिणाम तीन पीढ़ी जाते न जाते विनाश को प्राप्त होओगे। आज स्वामीजी का कथन सत्य सिद्ध हो रहा है। स्वाधीनता के 66वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहे हैं। आज देश स्वाभिमान के साथ खड़े होने के स्थान पर सब प्रकार से बिखर रहा है, जर्जर हो रहा है क्योंकि इस देश में उत्पन्न सभी मत-पंथ को जोड़ने वाला सूत्र हिन्दुत्व, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति थी जिसकी उपेक्षा का यह दुष्परिणाम है। इसलिए आज हर छोटे से छोटा देश भारत को आंख दिखा रहा है, चुनौती दे रहा है। आज देश पर मैकाले पुत्रों का शासन है जिनमें अच्छाइयां किसी की, नहीं बुराइयां सब की हैं। भारतीयता से, राष्ट्रीयता से एवं गौरवबोध से, स्वाभिमान से शून्य तीनों अन्तरराष्ट्रीय षड्यंत्रों (इसलाम-ईसाइयत एवं कम्यूनिज्म) के समर्थक, राष्ट्रीय शक्तियों के विरोधी चाहे वह अन्ना हजारे हो, रामदेव या श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य हों, या संघ परिवार हो या अन्य कोई हो, सबके विरोधी बनकर भारत में, ऐसे कानून व व्यवस्थाएं थोप रहे हैं जिनसे भारत की 80-90 प्रतिशत जनता का कोई लेना-देना नहीं है, उसे नहीं स्वीकारती तो भी वे भारत को इंग्लैंड, अमेरीका बनाने में लगे हुए हैं। पर भारत की 80-90 प्रतिशत जनता भारत को भारत बनाये रखना चाहती है। आज पश्चिम स्वयं लड़खड़ा रहा है, कम्यूनिज्म अपने ही घर में ढह गया है, ईसाइयत को पश्चिम छोड़ रहा है, इसलाम में अभी भी इतना उन्माद और कट्टरता है आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पूर्व मौत के फतवे जारी हो जाते हैं, अमेरीका स्वयं लड़खड़ा

रहा है। आज पश्चिम अपने जीवनमूल्यों पर पुनः विचार कर रहा है, और मार्गदर्शन के लिए भारत की ओर देख रहा है। और बड़ी विचित्र विडम्बना की स्थिति है कि हमारा शासन तंत्र हम पर पश्चिमी विचारों को थोपता जा रहा है। ये सब नेहरूजी की नीति के दुष्परिणाम हैं। अगर रूस मृत्यूपरांत भी स्टॉलिन को दंडित कर सकता है तो भारत कम से कम नेहरू के समय हुई गलतियों का, कार्यों का पुनर्मूल्यांकन भी नहीं कर सकता क्या? आज संविधान में जो उलटी गंगा बहाकर अल्पसंख्यक के नाम पर ईसाई और मुसलमान को विशेष सुविधा व संरक्षण दिया गया, तब से उनका अन्तहीन मांगों का सिलसिला चल पड़ा है। और वे अपराध पर अपराध किये जा रहे हैं। इसके बावजूद हमारे देश के प्रधानमंत्री कह रहे हैं कि भारत के संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है। सरकार की इस लचर नीति तथा संविधान की सुविधाओं का लाभ उठाकर देश में आगजनी, अलगाववाद, आतंक को प्रश्रय मिल रहा है। जिन सुविधाओं से देश का मूल राष्ट्रीय हिन्दू समाज वंचित है वह उन्हें मिल रही है और उससे और अधिक आग आतंक व अलगाव फैला रहे हैं। तो प्रश्न है देश का संविधान देश की रक्षा और देश के सुसंचालन के लिए होता है या देश की हत्या, देश में अराजकता फैलाने के लिए? इसके लिए देश के प्रबुद्ध वर्ग को आगे आना चाहिए। नेहरूजी के कार्यों एवं संविधान की पुनः समीक्षा होनी चाहिए। हम पुनः भारतीयता को अपनाकर ही देश की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं और स्वाभिमान के साथ देश को खड़ा करके विश्व में अपनी योग्य भूमिका निभा सकते हैं।

इसमें डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र की तीनों सम्पादकीय अर्थात् प्रथम खण्ड की, चतुर्थ खण्ड और पंचम खण्ड की सम्पादकीय इसमें संकलित है। दो और छोटे-छोटे लेख 'हमारे पतन का कारण अध्यात्म नहीं' श्रीमानजी के शामिल हैं। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

मो. 09413769139

द्वितीय संस्करण की भूमिका

जिस भारत की सारी दुनिया में वर्चस्व था प्रभुत्व था अपनी एक सात्त्विक धाक थी ज्ञान, धर्म, अध्यात्म की दृष्टि से जगद्‌गुरु कहलाता था। विश्व के सारे ज्ञानपिपासु और साधक भाई इसकी प्यास बुझाने भारत आकर, भारत के, गुरु के चरणों में ज्ञान साधना, धर्म साधना, ध्यान साधना कर अपने को कृत-कृत, धन्य-धन्य अनुभव करते थे। धन और वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया कहलाता था, सामरिक दृष्टि से अजेय, संगठन की दृष्टि से अभेद्य था। सारी दुनिया में बिना सामरिक संघर्ष के, बिना किसी देश के अर्थ पर डाका डाले, बिना किसी देश के शील पर आघात किए, बिना किसी देश के सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों को तहस-नहस किए याने बिना कुछ छीने हमने धर्म और दर्शन का, ज्ञान और विज्ञान का, सभ्यता और संस्कृति का, कला और कौशल का दान दिया, अपनी श्रेष्ठताओं का दान दिया (आग, आतंक, तस्करी और नशीली ड्रग्स का नहीं) अपने निर्मल ज्ञान और निष्कलंक चरित्र के द्वारा बिना अपने देश का अहित किए। सारी दुनिया में हिन्दू संस्कृति और उसके संस्कार व्याप्त थे। डॉ. हरबंशलाल ओबरायजी तो चुनौती के साथ कहते थे विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दीजिए ईसा से पूर्व यूरोप, मुहम्मद से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका और फिलिप से पूर्व फिलियाइन तो देखेंगे सारे विश्व में भारतीय संस्कृति फैली हुई थी। इन चार पर्दों के पूर्व सारे विश्व के देश भारत को गुरु मानकर उसके चरणों में शीश नवाते थे। और आज भारत की स्वाधीनता के सत्तर वर्ष होने जा रहे हैं पर आज भारत की क्या स्थिति है? आज भारत के मूल राष्ट्रीय हिन्दू समाज की क्या स्थिति है? आज उसे स्वतंत्र भारत में उसे ही विस्थापित होकर, शरणार्थी होकर रह रहना पड़ रहा है। पूरे देश में वह दो नम्बर का नागरिक बना हुआ है। जहां भी उसकी संख्या घटती है वह स्थान उसे छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। उनकी बहू-बेटी लभजिहाद, मुस्लिम अत्याचार की शिकार हो रही है। न उनके श्रद्धाबिन्दु, मानबिन्दु, मन्दिर सुरक्षित हैं, कभी भी कहीं भी हमला हो सकता है, बम विस्फोट हो सकता है मुसलमानों द्वारा अपमानित हुए राम जन्म भूमि, काशी विश्वनाथ, कृष्ण जन्म भूमि को

ससम्मान पुनः स्थापित नहीं कर सकता। देश की सीमायें असुरक्षित, घुसपैठ जारी है। छोटे से छोटे देश जो भारत को गुरु मानकर शीश नवाते थे आज वे भारत को आंख दिखा रहे हैं, भारत पर पद प्रहार कर रहा है। आज इस देश मूल राष्ट्रीय हिन्दू समाज ही राष्ट्रीयता से शून्य, स्वाभिमान से शून्य दिशाहारा होकर अन्यों की जूठन के लिए ललचा रहा है। अमानुषिक, अराष्ट्रीय मुस्लिम, ईसाई समाज निरन्तर बढ़ता जा रहा है, इनकी राष्ट्र विरोधी गतिविधियां निरन्तर जारी हैं और विस्तृत होती जा रही है। पर्यावरण की समस्या क्यों खड़ी हुई है? वह किसकी देन है और उसका निवारण क्या है? भारतीय शिक्षा का अवमूल्यन कैसे हुआ? ये सारी विपरीत स्थिति क्यों उत्पन्न हुई, अभी वर्तमान में भी क्यों है, इसका निवारण क्या है और आज भारतीय संस्कृति पुनः देश के स्तर पर ही नहीं विश्व के स्तर पर कैसे उठ रही है? आज के विश्व की सभी समस्याओं का समाधान किसी के पास है तो वह भारतीय संस्कृति में है। जो धर्म वर्तमान जीवन को स्पन्दित नहीं करता, वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं दे सकती वह चिरंजीवी नहीं हो सकता। यही कारण है सेमिटिक परम्परा (ईसाई-इसलाम) आज कालबाह्य हो गए हैं। केवल भारतीय धर्म दर्शन संस्कृति ही कालजयी होकर खड़ी है, वह चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है, शाश्वत है, आधुनिक है। अतः विश्व की सभी समस्याओं का समाधान भारतीय दृष्टि को अपनाने में ही है। क्योंकि भारत के पास ही परिपूर्ण दर्शन है, दृष्टि है। भारत सहित सारा विश्व किस प्रकार इस ओर अग्रसर है, अब भारत के उत्थान को कोई रोक नहीं सकता। इस पर विचार किया गया है।

हमारे राष्ट्रीय चिह्न अशोक-चक्र के बारे में जिसका प्रयोग करेंसी के नोटों, डाक टिकटों, राजकीय-प्रमाणों और सरकारी-पत्रों पर होता है—जनता में काफी भ्रम है। हमारे इस राष्ट्रीय चिह्न में सबसे ऊपर सिंह को दिखाकर अशोक-चक्र का नाम देना ऐतिहासिक दृष्टि से गलत है। यह सारनाथ के अशोक-स्तम्भ से लिया गया है। यह भगवान् बुद्ध का मौलिक विचार है जब भगवान् बुद्ध ने धर्म चक्र प्रवर्तन के लिए सारनाथ में उपदेश देना प्रारम्भ किया तब धर्मचक्र का प्रयोग किया था, जिसे भगवान बुद्ध के परम भक्त सम्राट् अशोक ने अपनाया। जिसमें पशु शक्ति के ऊपर धर्मचक्र बना हुआ था जो कालान्तर में दुर्भाग्य से खण्डित होकर गिर गया। पशु शक्ति के ऊपर धर्मचक्र पशु शक्ति के ऊपर धर्म की विजय का प्रतीक है। तभी इस चिह्न की सार्थकता है। मां दुर्गा शेर पर सवार है। इसमें मां दुर्गा की शोभा है, मां दुर्गा पर शेर सवार यह शोभा की बात नहीं, और केवल सिंह को दिखाने का अर्थ भारत पर शेर सवार है इससे विश्व को भारत का कौन-सा संदेश देना चाहते हैं, पशु बल को दिखाना, इसमें शोभा की बात नहीं है। पशु शक्ति पर

धर्म की विजय, आसुरी शक्ति पर देवताओं की विजय में तो सार्थकता है। यही भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति का संदेश है।

डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी ने प्रधानमंत्री नेहरूजी से इसमें संशोधन का प्रस्ताव रखा था पर नेहरूजी ने अस्वीकार कर दिया। इस विषय में उनसे लम्बी बहस है, पर नेहरूजी की भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था न होने से यह स्वीकार्य नहीं हो सका। नेहरूजी की भारतीय हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति में आस्था न होने से न भारतीय शिक्षा तंत्र को, न भारतीय अर्थ तंत्र, न कृषि तंत्र, न भारतीय न्याय तंत्र, न भारतीय संवत्, न भारतीय भाषा, न भारतीय इतिहास, न भारतीय चिकित्सा आदि किसी को भी स्वाधीन भारत में स्थान नहीं मिल सका। स्वाधीन भारत में पहली बार भारत-भारतीयता-भारतीय संस्कृति में आस्था वाली मोदी सरकार आयी है। शायद इस भूल पर उनकी दृष्टि जाए और परिमार्जित हो इस आशा से डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी के लेख अशोक-चक्र पर नव प्रकाश इस पुस्तक के परिशिष्ट में शामिल किया है। इस द्वितीय संस्करण में कई लेख और शामिल किए गए हैं, पहले वाले कई लेखों को और विस्तृत किया गया है, अतः पहले की अपेक्षा साढ़े तिगुणी से अधिक सामग्री हो गई है जो पाठकों के लिए और ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
मो. 09413769139

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

प्रथम तीन खण्ड की सम्पादकीय

भारत एक सनातन राष्ट्र है, इसकी सीमायें भी प्राकृतिक है, इसकी संस्कृति सनातन है। इसके मूल में वेद हैं, ऋषि है, ईश्वर है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सनातन और अपौरुषेय हैं। इसलिये वेद के काल मीमांसा के जितने प्रयास हुए हैं वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। रामसेतु के प्रकटन ने भी वेद की सनातनता पर अपनी मुहर लगा दी है। ऋषि-परम्परा भी सनातन है। क्योंकि ब्रह्माजी ने पहले मानसिक सृष्टि की और ऋषियों को प्रकट किया। फिर मैथुनिक सृष्टि प्रारम्भ हुई।

मद्‌भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ गीता 10/6

ईश्वर तो सनातन सत्य है ही। संस्कृत भाषा विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, शुद्ध एवं समृद्धतम भाषा है, भारतीय विश्व की महानतम जाति है जिसने अपना आलोक सारी दुनिया को निःस्वार्थ भाव से विश्व-मंगल की भावना से अपने निष्कलंक चरित्र एवं निर्मल ज्ञान के द्वारा बिना किसी देश की राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक स्वाधीनता को छीने, बिना किसी देश की माँ-बहिनों के शील पर आघात किये और बिना अपना अहित किये बांटा। इस प्रकार भारत का इतिहास बड़ा ही उज्ज्वल, महान् व उदार है—भारत की परम्परा बड़ी महान् है, जिसकी पुष्टि स्वयं पश्चिम के मूर्धन्य मनीषी करते हैं। विश्वप्रसिद्ध अमरीकन इतिहासकार विल डूरेन्ट कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी, भारतमाता हमारे दर्शन की जननी थी, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी थी, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी। ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

जर्मन दार्शनिक मैक्समूलर कहता है—'यदि मुझ से पूछा जाए किस गगन के नीचे मानव मन ने ऊँची से ऊँची प्रतिभाओं का विकास किया है? जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार करके ऐसे ऊँचे हल ढूंढ़े हैं जो और काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं तो वह

महान् देश भारत है। हम यूरोपवासी—जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचार परम्परा में पलते रहे हैं, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोध करे, उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, सही अर्थों में मानवीय बनाये, जिससे हमारे पार्थिव जीवन को ही नहीं हमारी सनातन आत्मा को भी शान्ति मिले? तो फिर मेरी उंगली भारत की ओर उठेगी।'

मैंने भारतदेश, यहाँ का धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, इतिहास-परम्परा का गौरवबोध लेकर ही कालेज जीवन में प्रवेश किया। इसके पूर्व जब नवमी-दसवीं-ग्यारहवीं कक्षा में था तब स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रमण महर्षि, महर्षि दयानन्द, लाल-बाल-पाल, मदनमोहन मालवीय, वासुदेव बलवन्त फड़के, रासबिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस, वीर सावरकर, भाई परमानन्द, खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, विनय बादल, दिनेश, जतीन बाघा, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, दुर्गा भाभी, रानी लक्ष्मीबाई, रानी अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती, माता जीजाबाई, माँ मदालसा, भगिनी निवेदिता, माँ शारदा, श्री माँ, गुरुनानक देव, गुरु गोविन्दसिंह, बंदा वैरागी, संत रविदास, डॉ. अम्बेडकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डॉ. हेडगेवार, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, तुलसीदास, मीराबाई, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, शचींद्रनाथ बख्शी आदि के जीवन एवं साहित्य से कुछ-कुछ परिचय हो गया था। इन्हीं सब आधारों पर यह गौरवबोध था। परन्तु रांची के मारवाड़ी महाविद्यालय में इससे भिन्न स्थिति पायी। वहाँ के छात्र-बंधु एवं अध्यापक वर्ग में भारतदेश, जाति, भाषा, धर्म-दर्शन, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों के प्रति गौरवबोध का अभाव ही नहीं, हेय भाव पाया। कभी-कभी तो मैं उनसे वाद-विवाद में भी उलझ जाता था और रांची विश्वविद्यालय में तो यह स्थिति और भी दयनीय पायी।

तब से भारतीय धर्म-दर्शन, इतिहास व संस्कृति के विषय में सम्यक् रूप से अध्ययन की इच्छा उत्पन्न हुई और यह भी जानने की इच्छा हुई कि हमारी विचार-परम्परा आज के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रसंग में सटीक एवं प्रासंगिक है या सेमेटिक परम्परा की तरह कालबाह्य हो गई। जिसका एक समय उपयोग रहा होगा पर आज के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के समय में अब ये उपादेय नहीं रहे या आज भी प्रासंगिक हैं वरन् आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विचारों में जो न्यूनता है उनको भी मार्गदर्शन देने की क्षमता रखती है। अतः भारतीय विचार-परम्परा चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है, आधुनिक है, शाश्वत है। केवल ऊपर-ऊपर धूल जम गई है, कुछ सामाजिक बुराइयाँ काल-प्रवाह में प्रवेश कर गयी, कुछ रूढ़ियाँ व अंधविश्वास छा गये हैं उनको दूर करके आज के संदर्भ में हमारी ज्ञान परम्परा की व्याख्या की जानी चाहिये। इस दृष्टि से मैं अध्ययन में प्रवृत्त हुआ और साहित्य जुटाने लगा।

इसी बीच सौभाग्य से 'संस्कृति विहार' रांची के संस्थापक और निदेशक डॉ. हरवंशलाल ओबराय से मेरा सम्पर्क हुआ। पहले ही मिलन में मुझे लगा उन्हें एक सेनानी की आवश्यकता है, रामकृष्ण परमहंस देव को एक विवेकानन्द की आवश्यकता है जिसकी पात्रता तो मेरे में नहीं है पर एक सैनिक की सेवा तो दे ही सकता हूँ और तब से दोनों एक-दूसरे से अधिक—अधिकतर जुड़ते चले गये क्योंकि मेरे को उनके जैसा कोई गुरु नहीं मिला और उनको मेरे जैसा कोई शिष्य नहीं मिला। मुझे लगता था उनके पास एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है जो जन-प्रकाश में आनी ही चाहिये। इसके लिये मैंने उनके चरणों में अपने जीवन को समर्पित भी किया। केवल एक शर्त रखी—आप मुझे, प्रतिदिन दो घण्टा लिखवायेंगे जिसको मैं फेयर करके दूंगा और फिर उसके प्रकाशन की व्यवस्था करेंगे। मैं कालेज एवं छात्रावास की अध्ययन की अवधि में अनुपस्थित रहकर, कभी-कभी रात्रि में पढ़ने व लिखने के लिए बैठा रहता पर वे अपनी कार्यव्यस्तता के कारण और कुछ लिखाने की वृत्ति का अभाव होने से चाहकर भी नहीं करवा पाते और मैं बार-बार निवेदन करता ही रह जाता। इस ढंग से तो यह सारा अध्ययन व शोधकार्य आपके साथ ही चला जाएगा। तब कहते, भगवान पर भरोसा रखो। तब मेरा मन खिन्न और दुःखी हो जाता था और कभी-कभी मैं उनसे रूठ जाता था। तब वे मुझे समझाते हुए कहते थे—'पुष्ट सदैव रहो, रुष्ट कभी-कभी और दुष्ट कभी नहीं।'

एक बार प्रातःस्मरण के पश्चात् मेरा हाथ लेकर आयु, विद्या और भाग्य-रेखा देखकर कहने लगे—आपकी आयु रेखा कटी हुई है। फिर अपनी आयु रेखा देखकर मुझे बताया कि मेरी भी आयु रेखा कटी हुई है। करीब साठ वर्ष की आयु में दुर्घटना (Accident) से मेरा शरीर शान्त हो सकता है और उससे बच गया तो सौ साल पूरे हो जाएँगे। फिर मुझे महामृत्युंजय मंत्र बताने लगे जिससे मेरी मृत्यु टल सकती है। तब मैंने कहा, आपका शरीर राष्ट्रीय महत्त्व का है। यह उपाय आप अपने लिये क्यों नहीं करते? तब उन्होंने कहा, 'मृत शरीर के लिये भगवान से क्या आवेदन करना!' तब फिर मेरे को क्यों कह रहे हैं।

स्नान के पश्चात् वे गीता-पाठ करते थे। मुझसे भी करवाते थे। 10.9.83 को मैंने उनके साथ अन्तिम बार गीता-पाठ किया। गीता के प्रसंगों को स्पष्ट करते हुए वे हठात् मृत्यु विषय पर चर्चा करने लगे। प्रसंग मृत्यु का नहीं था। वे कहने लगे, 'मृत्यु दो प्रकार की होती है—एक होता है गिरकर मरना और एक होता है पड़कर मरना। गिर कर मरने का अर्थ है जो आजीवन कर्मसाधना में लगे रहते हैं, हठात् अपना शरीर त्यागकर परलोक चले जाते हैं या ब्रह्मलीन हो जाते हैं। पड़कर मरने का तात्पर्य बीमार पड़कर, शरीर के जवाब दे देने पर भी अपना शरीर त्यागना नहीं चाहते, उससे ही चिपके रहते हैं।' उन्होंने उदाहरण दिया था

विनोबाजी एवं रूस के राष्ट्रपति ब्रेझनेव का, जिनकी मृत्यु प्रायः समान समय में हुई थी। विनोबाजी ने शरीर त्यागने के सात दिन पूर्व से ही अन्न-जल, दवा सभी का परित्याग कर दिया था। यह हुआ गिर कर मरना। ब्रेजनेव की मृत्यु के पश्चात् भी डाक्टर लोग कृत्रिम रूप से हृदय की गति को चालू करने का प्रयास करते रहे। इस प्रसंग द्वारा मुझे क्या पता था कि वे अपने ही प्रस्थान का पूर्वाभास दे रहे हैं। सचमुच सप्ताह भर पश्चात् काल द्वारा एक दुर्घटना में हमसे छीन लिये गये और उनके द्वारा लिखवाने का कार्य शेष ही रह गया।

डॉ. हरवंशलाल ओबराय का जन्म 21 अक्टूबर 1925 को रावलपिंडी (पाकिस्तान) के एक पंजाबी पवित्र खत्री दम्पती श्री धर्मचन्द्र एवं श्रीमती रामकौर ओबराय के घर में हुआ था। आप 10 भाई-बहिनों में तीसरी संतान थे। बाल्यावस्था से ही इनमें विलक्षण प्रतिभा की ज्योति दृष्टिगोचर होने लगी थी। स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार किसी पुस्तक या विषयवस्तु पर दृष्टिपात करते ही उसका सम्पूर्ण पाठ तत्काल कंठस्थ हो जाता था। साथ ही सम्पूर्ण ग्रंथ के गहन से गहन भाव भी तत्काल ही सुस्पष्ट हो जाते थे। एक मेधावी तथा विचारक बालक के रूप में श्री सनातन धर्म हाईस्कूल रावलपिंडी में प्रथम श्रेणी से मैट्रिक में उत्तीर्ण होने के बाद गार्डन कालेज रावलपिंडी से उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। भारत विभाजन के उपरान्त भारत की राजधानी दिल्ली आ गये और यहाँ पर उन्होंने दर्शन शास्त्र तथा हिन्दी में प्रथम श्रेणी में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् पंजाब तथा हरियाणा के कई कालेजों में प्राध्यापक पद पर कार्य किया।

बाल्यकाल से ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये और संघ के (द्वितीय वर्ष) प्रशिक्षित स्वयंसेवक थे। संघ के सम्पर्क में आने से उन्हें समाजसेवा का माध्यम मिला और उनके हृदय में राष्ट्रीय-कलिका खिल उठी। इसके पूर्व ये विद्या-अध्ययन में ही लगे रहते थे। उन्होंने एक कार्ड बना रखा था जिसमें लिखा था—भोजन की नागा हो सकती है पढ़ाई की नागा नहीं हो सकती। यह कार्ड उन्होंने मुझे भी दिखाया था। संघ के सम्पर्क में आने से उनका सर्वांगीण विकास हुआ। राष्ट्रभक्ति की भावना निरन्तर बढ़ती गयी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण, भारत विभाजन के समय रावलपिंडी में सभी स्वयंसेवकों को गुरुजी की आज्ञा थी कि सभी हिन्दुओं को सुरक्षित निकालने के बाद स्वयं भारत आयें। हिन्दुओं को अन्न-जल आदि पहुँचाना, मुसलमानी टोपी लगाकर कपड़े बेचना व सैनिकों द्वारा छुड़ाकर लाई गई लड़कियों के बयान लिखकर पुस्तक बनाना आदि कार्य किये। परन्तु पुस्तक भारत सरकार द्वारा जब्त कर ली गई। रावलपिंडी से मेरठ आये, वहाँ 3-4 दिन रहने के बाद दिल्ली आ गये। दिल्ली कैंट वर्कशाप में सालभर नौकरी की, उसी समय पेंटिग का कार्य प्रारम्भ किया। उसके बाद Parliament

में अनुवादक के कार्य में अपने छोटे भाई मदनलालजी के साथ आ गये जो हिन्दी विभाग में अनुवादक के रूप में कार्यरत थे। आप रावलपिंडी में सरकारी विभाग में अनुवादक के रूप में कार्यरत थे देश विभाजन के पूर्व। वापस उसी कार्य की बहाली अब यहां एक साल बाद हो गयी। सन् 1948 में जब संघ पर प्रतिबंध लगा तब प्रतिबंध के विरोध में सत्याग्रह कर कारावास-वरण किया और वहाँ की अनेकानेक यातनायें सहर्ष सहन कीं। सन् 1960-1961 में लगातार दो बार अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष मनोनीत हुए। आप बाबा साहिब आपटे स्मारक समिति में पूर्वाञ्चल प्रमुख थे। सक्रिय राजनीति से दूर रहते हुए भी आपने श्री जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन का समर्थन किया था। पुनः आपातकाल (सन् 1975-77) में आपने 19 महीने 'मीसा' बन्दी के रूप में कारावास भोगा। कारावास में गीता एवं अन्य कक्षाएं चलाते थे जिसमें जेल सुपरिन्टेंडेंट आदि भी भाग लेते थे।

आप दिव्य जीवन संघ के संस्थापक परम पूज्य स्वामी शिवानन्दजी महाराज से दीक्षित थे। परमश्रद्धेय चिदानन्दजी महाराज, चिन्मय मिशन के संस्थापक चिन्मयानन्दजी महाराज, बिहार योग आश्रम (मुंगेर) के संस्थापक सत्यानन्दजी महाराज आपस में गुरु भाई थे। आप परमपूज्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। आपकी भाभी और छोटे भ्राता डॉ. मदनलालजी, उनसे दीक्षित थे। गीता आश्रम के संस्थापक परमपूज्य स्वामी हरिहर महाराजजी अपना कार्यभार प्रो. ओबरायजी को सौंपना चाहते थे। आपके छोटे भ्राता श्री वृजभूषण ओबराय को तो गीता आश्रम, जोधपुर प्रदर्शनी लगाने हेतु अभी भी बुलाते रहते हैं। आप देवराहा बाबा, रांची के कमड़े बाबा से बहुत जुड़े हुए थे और उन दोनों का आशीर्वाद प्राप्त था।

सन् 1963 में जब वे डी.ए.वी. कालेज, जालंधर में दर्शनशास्त्र विभाग में अध्यक्ष पद पर थे तब उनकी प्रतिभा, मौलिक अन्वेषण कार्य तथा पाण्डित्य पूर्ण ओजस्वी धारा प्रवाह वक्तृत्व की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी जिससे प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने उन्हें यूरोप, अमेरीका, कनाडा और एशियाई देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दू संस्कृति एवं दर्शन विषय पर व्याख्यानमाला प्रस्तुत करने के लिये आमन्त्रित किया। विदेश जाने से पूर्व जब प्रो. ओबराय पूज्य बिड़लाजी से मिलने गये तो उन धर्मप्राण महापुरुष ने प्रो. ओबराय को पुलकित हृदय से आशीष दिया तथा भारतीय धर्म-संस्कृति पर अंग्रेजी भाषा में लिखी बहुत सी पुस्तकें विदेशी विद्वानों को उपहारस्वरूप देने हेतु दीं। प्रभु की कृपा से एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से व्याख्यानमाला के कार्यक्रमों में यशस्वी होकर स्वदेश लौटे।

उन्होंने अपने जीवन काल में 106 देशों की यात्रा की। प्रत्येक बार वे व्याख्यानमाला के लिये आमंत्रित किये गये। उनकी विलक्षण प्रतिभा व विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें वहीं रहकर भारत से सौ गुणा अधिक वेतन लेकर शोध व अध्यापन कार्य के लिये प्रलोभित किया गया। पर वे देश की सेवा छोड़कर वहाँ सदा के लिये बसने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा—सेवा तो देश की करूंगा पर व्याख्यान के लिए अवश्य आऊंगा। श्रीलंका की यात्रा में मैं भी उनके साथ सहयोगी के रूप में था। बैंकाक यात्रा उनकी अंतिम विदेश यात्रा सिद्ध हुई उसमें मैं तो नहीं जा पाया पर मेरे पूर्वाश्रम के पूज्य चाचाजी श्री तोलाराम लाठ साथ में गये थे। इन सब यात्राओं में भारतीय संस्कृति किस प्रकार सारे संसार में फैली और आज भी किस रूप में कितने अंश में सुरक्षित है—उसका विशेष अध्ययन किया। और उससे सम्बन्धित चित्रों, मूर्तियों, अभिलेखों की अनुकृतियों का संग्रह किया। Influence of Indian culture on Arabia शोध प्रबन्ध पर सन् 1982 में मद्रास विश्वविद्यालय से उन्हें डी.लिट. (वाचस्पति) की उपाधि भी मिली। वे कई भाषाओं के जानकार थे। वे देवभाषा संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी, उर्दू, फ्रेंच व रूसी भाषा के तो प्रकाण्ड विद्वान थे। इन सब भाषाओं में भाषण देते थे। डॉ. ओबराय के व्याख्यान बड़े ही ओजस्वी, विद्वत्तापूर्ण पर साथ ही साथ बड़े सरल, सहज और हृदयस्पर्शी होते थे।

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण (1893 ई.) की 70वीं वर्षगांठ पर संयुक्त राज्य अमेरीका में महा-सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें डॉ. ओबराय का भाषण सुनने के लिये बाबू जुगलकिशोर बिड़ला के भतीजे श्री चन्द्रकांत बिड़ला स्वयं उपस्थित थे। वे डॉ. ओबराय का भाषण सुनकर बहुत प्रभावित हुए और समाचार-पत्रों में छपी उनकी प्रशस्ति अपने चाचाजी के पास भेज दी थी। अब जब डॉ. ओबरायजी अपना कार्यक्रम समाप्त कर स्वदेश लौटे तब पुनः बिड़लाजी को धन्यवादपूर्वक नमन समर्पित करने गये। उन दिनों छोटानागपुर में विदेशी पादरियों द्वारा हिन्दुओं का सामूहिक धर्मान्तरण एवं पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं पर होने वाले अमानवीय पैशाचिक अत्याचारों के समाचार वृत्त-पत्रों में छप रहे थे। बिड़लाजी ने अश्रु-पुलकित नेत्रों एवं करुण कातर हृदय से कहा—मेरे समाज के अंग कट रहे हैं। क्या संस्कृति की सुधा द्वारा समाज को विदेशियों एवं विधर्मियों के अत्याचार से बचाया नहीं जा सकता? प्रो. ओबराय की दृष्टि समाज-धर्म के उस जीवन्त अवतार के चरणों में झुक गई। विद्या-व्यसनी प्राध्यापक ने अनुभव किया कि यदि भारतीय संस्कृति की सुरसरिता समाज के उद्धार के काम न आई तो वह केवल वाग्विलास अथवा बुद्धिविलास मात्र की वस्तु रह जायेगी। इसी संदर्भ में गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकरजी) से भी परामर्श किया। गुरुजी ने कहा—'यह कार्य अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व का है, इसे अवश्य करें', कहकर अपना आशीर्वाद दिया।

प्रो. ओबराय को भारतीय प्राच्यविद्या के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के मूर्धन्यविद्वान् आचार्य डॉ. रघुवीर से महती प्रेरणा प्राप्त हुई थी। किन्तु 1963 ई. में प्रो. ओबराय के विदेश प्रवास के समय अचानक पीछे भारत में डॉ. रघुवीरजी का एक कार दुर्घटना में स्वर्गवास हो गया था। उससे प्रो. ओबराय के हृदय को बड़ा आघात लगा था। एक दिन पूज्य बिड़लाजी ने डा. रघुवीर का एक महान् ग्रंथ प्रो. ओबराय को भेंट करते हुए कहा—जैसे इस महापुरुष ने अपना समूचा जीवन भारतीय संस्कृति के लिये उत्सर्ग किया, उसके प्रति श्रद्धांजलि के रूप में आप छोटानागपुर में एक सांस्कृतिक संस्थान चलावें, जिसमें भारतीय संस्कृति पर अध्ययन, शोध, प्रचार, हिन्दू जीवन व्रती (मिशनरी) तैयार हो और सेवा कार्य तीनों साथ-साथ हों। इसी बीच माननीय श्री ब्रजमोहन बिड़लाजी से परामर्श हुआ तथा उन्होंने प्रो. ओबराय को देश भर के बिड़ला शिक्षा संस्थानों में भाषणमाला हेतु आमंत्रित किया। अन्त में कई मास के विचार मंथन के उपरांत अप्रैल 1964 में निश्चय हुआ कि रांची में डॉ. रघुवीर के सरस्वती विहार के नाम के अनुरूप **संस्कृति विहार** स्थापित किया जाए जहाँ से शोधकर्ता, विद्वत्वर्ग, बुद्धिजीवी, नगरवासी एवं अपठित ग्रामवासी-वनवासी को समान रूप से संस्कृति का प्रकाश प्राप्त हो सके।

संस्कृति विहार की स्थापना के पूर्व बाबू जुगलकिशोर बिड़ला ने बी.आई.टी. मेसरा के अन्तर्गत दर्शन-मानविकी शास्त्र के स्वतंत्र संकाय की स्थापना कर डॉ. ओबराय को अध्यक्ष नियुक्त किया।

20 मई सन् 1965 को रांची के अपर बाजार में महामहोपाध्याय, गोपीनाथ कविराज के करकमलों से 'संस्कृति विहार' एकेडमी आफ इण्डियन कल्चर का शुभारम्भ हुआ। उद्घाटन महोत्सव की अध्यक्षा श्री श्री माँ आनन्दमयी थीं। उक्त अवसर पर पूज्य स्वामी शरणानन्दजी (संस्थापक मानव सेवा संघ, वृंदावन) ने कहा—हमारी संस्कृति ही हमारे देश का प्राण है। सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को अपनाने पर भारत जगत्गुरु के पद तक उठा। संस्कृति को भूलने पर भारत पददलित-पराधीन हो गया। हमारी संस्कृति के पावन संदेश को पुनः आत्मविस्मृत देशवासियों तक पहुँचाने हेतु संस्कृति विहार जैसी संस्था की नितान्त आवश्यकता थी। छोटानागपुर क्षेत्र के लिये तो यह बिड़ला परिवार का विशेष वरदान ही सिद्ध होगा। तब से लगभग 18 वर्ष तक संस्कृति विहार के निदेशक पद पर रहते हुए डॉ. ओबराय ने कार्यभार संभाला। संस्कृति विहार के अध्यक्ष माननीय गंगाप्रसादजी बुधिया थे। इस संस्था ने अनेक कार्यक्रम चलाये जिसमें रात्रि-पाठशालाएं, चिकित्सा शिविर, गरीब व पिछड़े वर्गों एवं वनवासी बन्धुओं को आर्थिक सहायता, धार्मिक पर्वों गीता-गोष्ठियों, बाल एवं युवा शिविरों का आयोजन शामिल रहा है।

छोटानागपुर ईसाई गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र है। भारतीय समाज ग्रामवासी, नगरवासी व वनवासी—तीन स्तरों पर विकसित हुआ। हम 1200 वर्षों से विदेशी आक्रान्ताओं से संघर्षरत रहने से वनवासी समाज दुर्भाग्य से हमारी उपेक्षा का शिकार था। उसका अनुचित लाभ उठाते हुए ईसाई पादरियों ने वहाँ की भोली-भाली, अशिक्षित व निर्धन जनता को धन एवं शिक्षा का लालच देकर उन्हें अपने धर्म में सम्मिलित करने का अभियान चला रखा था। उन सबको समझा-बुझाकर अपने 18 साल के कार्यकाल में 6 हजार व्यक्तियों को शुद्धीकरण के माध्यम से वापस अपने स्वधर्म में लाये। इस पुनीत कार्य में परम पूज्य करपात्रीजी महाराज ने भी अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए शुद्धीकरण की क्रांतिकारी व्यवस्था दी। 'हमारे समाज के जिन बंधुओं की निर्धनता या अज्ञानता का अनुचित लाभ उठाकर विदेशी प्रचारक उन्हें फुसलाकर धर्मच्युत करते हैं वे बन्धु अपने मन से धर्म नहीं बदलते, उन्हें केवल विवशतावश विदेशी पादरियों के सम्मुख झुकना पड़ता है। धर्म तो मन की आस्था पर आधारित है। अतः जो मन से धर्म न बदलकर लोभ-लालच या विवशतावश धर्मान्तरित किये जाते हैं, शास्त्र की दृष्टि से वे हिन्दू ही हैं क्योंकि मन के बदले बिना धर्म बदला ही नहीं जा सकता। अतएव ऐसे सभी तथाकथित धर्मच्युत बंधुओं को हमें सरल शुद्धि-संस्कार द्वारा पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर प्रीतिपूर्वक अपना लेना चाहिये।'

वनवासियों के बीच कार्य करने से उन्हें वनवासी जीवन की वास्तविकता को समझने का विशेष अवसर मिला। वनवासी समस्या पर उनके विशेष चिंतन, अध्ययन-अनुभव एवं उनके रचनात्मक सुझावों का लाभ उठाने के लिये हिमाचल प्रदेश की तत्कालीन शान्ताकुमार की सरकार ने उन्हें आमंत्रित किया था। मुझे भी साथ चलने को प्रो. ओबरायजी ने कहा, पर मैं कुछ कार्यवश न जा सका।

आपने विदेशी पादरी निष्कासन का अभियान चलाया था। प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के आगमन पर (दि. 19-12-1965) उन्हें संस्कृति विहार की ओर से ज्ञापन दिया कि वे गांधीजी के अरमान को पूरा करते हुए धर्मान्तरण पर प्रतिबंध लगावें। गांधीजी ने कहा था, 'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़कर उसके स्थान पर दूसरा मत थोपना...यदि मेरे पास विधान की शक्ति होती तो मैं निश्चित ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबंध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति ईसाई पादरियों के इस प्रकार के धर्मान्तरण के नीच प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।' प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी ने आश्वासन दिया था कि वे ताशकंद से लौटने पर इस पर विचार करेंगे। किन्तु दुर्भाग्य...!

प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को ज्ञापन—2 अक्टूबर 1968 को (गांधी शताब्दी वर्ष के आरम्भ पर) प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को उक्त विषय में मुद्रित

ज्ञापन दिया गया, जिसमें मांग की गई कि वे गांधी शताब्दी वर्ष में गांधीजी के अरमानों को पूरा करने हेतु विदेशी धर्मान्तरण पर तुरंत रोक लगा देवें। ऐसा ही ज्ञापन मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्रित्व-काल में उन्हें दिया गया।

विदेश प्रवास के दौरान पोप के पास जाकर अपना परिचय ओबरियो देकर भारत के विषय में आगामी योजना की पूरी जानकारी और कागजात प्राप्त कर भारत आकर उसका भण्डाफोड़ किया—'नागालैंड से केरल तक ईसाइस्तान बनाने के भीषण कुचक्र का।'

रांची के रोमन कैथोलिक मिशन को ब्रिटिश शासनकाल में सन् 1916 में पुरुलिया रोड पर लगभग 46 एकड़ भूमि 25 वर्ष के पट्टे (लीज) पर धार्मिक-शैक्षणिक एवं जनसेवी कार्यों के माध्यम से ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये दी गयी थी, मात्र 15 रुपये प्रति एकड़ प्रतिवर्ष की सस्ती दर पर। सन् 1941 में ब्रिटिश सरकार द्वारा पुनः वही जमीन अगले 25 वर्ष के लिये पट्टे पर दी गयी। उस पट्टे की अवधि 31 मार्च 1966 को समाप्त हो जाने पर भी अवैध कब्जा बनाये हुए थे। प्रो. ओबराय द्वारा संस्कृति विहार की ओर से मई 1968 में बिहार सरकार को आवेदन दिया गया कि सारी भूमि भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के निमित्त इस संस्था (संस्कृति विहार) को 25 वर्ष के लिये पट्टे पर दी जाए। संस्कृति विहार की ओर से दुगुना किराया तथा बिहार सरकार को 25 लाख रुपये सलामी देने का प्रस्ताव भी किया गया। पर दुर्भाग्य से वह सारी भूमि अभी भी अनिर्णीत अवस्था में उन्हीं के कब्जे में पड़ी हुई है।

प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के शासनकाल में ओमप्रकाश त्यागी ने धर्म स्वातंत्र्य विधेयक और गो-रक्षा विधेयक प्रस्तुत किया। इसका आपने स्वागत किया। इसके पक्ष में लिखा। विपक्ष को इसके सटीक, सतथ्य उत्तर दिये। यह अलग बात है कि मोरारजी देसाई की सरकार टिक नहीं पायी और विधेयक पास न हो सका। मदर टेरेसा का जब रांची में स्वागत किया जा रहा था तब आपने रांची की जनता से अपील की थी 'मदर टेरेसा' के स्वागत में विवेक से काम लें।

रोमन कैथोलिक मिशन का पादरी थोटंकल रांची में ईसाई धर्मप्रचारक के रूप में काम करता था। बाद में उसने पादरी के चोगे को भगवे रंग में रंगकर हिन्दू-बस्तियों एवं संस्थाओं में अपने-आपको स्वामी नरेन्द्रानन्द बताकर गरीब ब्राह्मण बच्चों को दिव्य ज्योति आश्रम में शिक्षा के नाम पर लाता था और बाद में उन्हें धीरे-धीरे ईसाई बनाने का उपक्रम प्रारम्भ करता था। इसका भी आपने सफल भण्डाफोड़ किया।

पादरी बुल्के जो रामकथा के मर्मज्ञ माने जाते हैं अपने शोधपत्र 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' में शरारतपूर्ण तरीके से लिखा कि छोटानागपुर राक्षसों का

निवास स्थल था, आदिवासी रामायण में वर्णित राक्षस हैं और रावण आदिवासी नृप था। ओराओ आदिवासी रावण के वंशज हैं। बुल्के महोदय कहते हैं रामकथा की उत्पत्ति और विकास खोजते-खोजते मैं तुलसीभक्त बन गया। वे बार-बार दोहराते हैं, मैं रामभक्त नहीं तुलसी का भक्त हूँ। इन सब विसंगतिपूर्ण स्थापनाओं का जोरदार खंडन मंचों पर और अपने लेखन द्वारा किया। इसके परिणामस्वरूप जिस मंच पर ओबरायजी आमंत्रित होते थे उस मंच पर बुल्के आने से मना कर देते थे। बुल्के सम्बन्धी लेख का संकलन ओबराय समग्र के तीसरे खण्ड के उपशीर्षक 'रामायण' के अन्तर्गत किया है।

इमाम अब्दुला बुखारी ने 'वीक एण्ड रिव्यू' पत्रिका नई दिल्ली के 7 जून 1980 के अंक में अपनी भेंटवार्त्ता में कहा था कि 'हिन्दुओं का कोई धर्म ही नहीं है।' इस पर प्रो. ओबरायजी ने इमाम बुखारी पर धर्म प्रतिष्ठाहनन का फौजदारी मामला दायर किया और न्यायालय से प्रार्थना की कि प्रतिष्ठाहनन के इस अपराध के लिये इमाम बुखारी को कठोरतम एवं शिक्षाप्रद दण्ड दिया जाए।

प्रो. ओबराय का कहना था—इस देश का मूल पुत्र समाज हिन्दू है जिसके कारण यह देश भारत है, हिन्दुस्तान है। Discovery of India में नेहरूजी स्वीकारते हैं—वेद, उपनिषद्, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों से निर्मित दृष्टि ही भारतीय दृष्टि है। इन्दिरा गांधी ने सन् 1983 के नई दिल्ली में आयोजित रामकृष्ण, विवेकानन्द, युवा सम्मेलन में स्वीकार किया था, 'बहुत समय तक यूरोप में सभी धर्मों को हिन्दू में शामिल किया जाता था।' राजीव गाँधी (दिवंगत) जब प्रधानमंत्री बने तो शेष विश्व को भारत से परिचित कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन—मास्को में किया गया। उसका प्रारम्भ वैदिक गीत, भारतीय नृत्य से हुआ। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ हिन्दू धर्म-संस्कृति से सम्बन्धित थी। राजीव गाँधी ने कहा—ये सब भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि हैं। सन् 1957 में केरल में प्रथम बार वामपंथी सरकार बनी जिसमें मुख्यमंत्री ई. एम. एस. नम्बूद्रिपाद बने। शपथ ग्रहण समारोह में माओ (चीन से) आए तो उन्हें नटराज की मूर्ति भेंट करते हुए नम्बूद्रिपाद ने कहा—'यह भारत का प्रतीक है।' स्पष्ट है सबको भारत से परिचय कराने के लिए हिन्दुत्व का सहारा लेना पड़ता है। अतः इस देश का राष्ट्रीय समाज हिन्दू है, इस देश का राष्ट्रीय धर्म, संस्कृति हिन्दू है। हिन्दू समाज समझता है मैं अपने घर में हूँ अतः सुरक्षित हूँ। उसके मन में अन्य मतावलम्बियों के प्रति कोई दुर्भाव है नहीं। इसलिये हिन्दुओं के घर में एक लाठी भी नहीं मिलेगी। अधिकांश हिन्दुओं को ज्ञात ही नहीं है उनके विरुद्ध क्या-क्या षड्यंत्र चल रहे हैं और जिनको थोड़ा-बहुत ज्ञान है वह अपने आपको असहाय-अकेला समझकर उदासीन है। और जो हिन्दू संगठन इनके षड्यंत्रों के प्रति सचेत और समाज को सावधान,

जागरूक और संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं उनको साम्प्रदायिक, तुच्छ मनोवृत्ति के, समाज में घृणा-विद्वेष, विघटन फैलाने वाले आदि कई विशेषण देकर उनके प्रति समाज में बुद्धिभेद निर्माण कर उनको समाज से अलग-थलग कर उनको गैर जिम्मेवार और महत्त्वहीन बना कर एक किनारे करने का प्रयास सतत चल रहा है। इसलिये बिना प्रतिरोध के ये सारे षड्यंत्र चल रहे हैं। अंग्रेजों के काल से इनको पोषण एवं राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हो रहा है। दुर्भाग्य से स्वाधीन भारत के संविधान में उलटी गंगा बहायी गयी। जिस सम्प्रदाय के कारण भारत 1000 वर्ष तक पददलित एवं संघर्षरत रहा, जिस सम्प्रदाय के कारण देश पराधीन हुआ, जिन सम्प्रदायों की मिलीभगत से देश विभाजित हुआ और स्वाधीन भारत में भी जिनकी मिलीभगत से देश-विभाजन की प्रक्रिया निरंतर जारी है और जहाँ भी हिन्दू अल्पसंख्यक हुआ वह देश विदेश बन जाता है। इस प्रकार देश के अन्दर कितने ही विदेश बन गये, पाकिस्तान और ईसाई स्थान बन गये, पराये शत्रुस्थान बन गये, हिन्दुओं के लिये वर्जित हो गये हैं। वो दोनों सम्प्रदाय इस देश को न मातृभूमि, न पितृभूमि, न पुण्य भूमि, न धर्म भूमि वरन् इसे भोग भूमि, शत्रु भूमि (दारुलहर्ब) मानते हैं। और केवल अपने ही पंथ को एकमात्र सच्चा पंथ मानते हैं अन्य सबको मिथ्या-ढोंगी मानते हैं, काफिर मानते हैं। नष्ट होने योग्य मानते हैं। उनके पंथ के आधार में न तो दर्शन है, जो न विज्ञान सम्मत है, न वहाँ तर्क की गुंजाइश है, जो प्रकृति व पर्यावरण विरोधी है, नारी विरोधी है, उनका इतिहास कलंकित, मानवता को रक्त से स्नान कराने वाला है क्योंकि ये दोनों जहाँ-जहाँ भी गये उन देशों की पूर्व सभ्यता एवं संस्कृति को समूल नष्ट कर अपनी विदेशी बर्बर-पाशविक-पैशाचिक सभ्यता संस्कृति को थोप दिया, ईसाइयों ने कहीं-कहीं वहाँ के मूलवासियों को समूल नष्ट कर स्वयं बस गये। जैसे अमेरीका आज गौरे लोगों की भोग भूमि बनी हुई है। वहाँ के मूलवासी रेड इंडियनों की समूल रूप से नष्ट कर दिया। ऐसा ही व्यवहार कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अफ्रीका, दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित महाकलिंग द्वीप समूह के साथ किया। स्पष्ट है उनका चरित्र अनुदार है, वो मानवता विरोधी हैं जो केवल मात्र विश्वास पर आधारित है, उनके सारे सिद्धांत आधे-अधूरे, विकृति को पैशाचिकता को लिये हुए हैं। उन्हें ही अल्पसंख्यक मान कर उन्हें विशेष सुविधा और संरक्षण दिया गया। जबकि इन्होंने कभी अपने-आपको अल्पसंख्यक के रूप में, असुरक्षित रूप में परिचय न देकर स्वयं को उत्पाती, आक्रान्ता रूप में, उद्दंडी के रूप में ही परिचय दिया है और जहाँ ये अल्पसंख्यक होते हैं वहाँ विशेष सुविधा एवं संरक्षण चाहते हैं और जहाँ बहुसंख्यक होते हैं वहाँ असहिष्णु। यही कारण है कश्मीर से कश्मीरी पंडितों को निकाल बाहर किया। यही स्थिति ईसाई प्रधान राज्यों नागालैण्ड, मेघालय व मिजोरम की है जहाँ से हिन्दू या तो निकाल दिये गये या उनकी हत्या कर दी गयी

या धर्मान्तरित कर लिये गये। दोनों सम्प्रदाय के राष्ट्रविरोधी कार्य निरन्तर जारी है और जितना-जितना अराष्ट्रीय कार्य उनके द्वारा हो रहा है उतनी-उतनी इन्हें सुविधायें और संरक्षण मिलना जारी है। इनके केवल अधिकार ही अधिकार हैं कर्तव्य कुछ नहीं। इस प्रकार आ बैल मुझे मार वाली स्थिति हमने स्वयं खड़ी कर रखी है। और जो इस देश का मूल पुत्रवत् राष्ट्रीय समाज है जिसके कारण भारत भारत है, हिन्दुस्तान है जिनके हृदय में मानव मात्र ही नहीं, जीव-मात्र ही नहीं, चराचर सृष्टि के लिये स्थान है, जिनका धर्म दर्शन पर आधारित है, विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान से सुसंगत है, जो पर्यावरण का मित्र है, उसके प्रति मातृ भाव है, आदर एवं कृतज्ञता का भाव है नारी पूजक है जिन्होंने तर्क को भी उचित प्रतिष्ठा दी है, जिनका इतिहास उज्ज्वल है, मानवता की निःस्वार्थ भाव एवं विश्व मंगल की भावना से सदा सेवा की है जिनका चरित्र उदार है जो भावी विश्व की आशा है और जो निरन्तर देश के निर्माण में लगे हैं उन हिन्दुओं को ही संकीर्ण, साम्प्रदायिक मानकर उन्हें ही इन सुविधाओं से धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वंचित रखा गया। मुस्लिम एवं ईसाई समाज के लिये संविधान धर्मसापेक्ष है वहीं हिन्दुओं के लिए धर्मनिरपेक्ष। इस प्रकार हिन्दू अपने एकमात्र देश में ही पराया, दो नम्बर का नागरिक बन गया है। दोहरे मापदण्ड का शिकार हो गया है। जहाँ हिन्दू बहुसंख्यक है वहाँ वह सामान्य नागरिक, दो नम्बर का नागरिक बना हुआ है और जहाँ अल्पसंख्यक है वहाँ उसे रहने की ही अनुमति नहीं यथा कश्मीर, नागालैण्ड, मिजोरम आदि। स्वाधीन भारत में भी गोवध रोकने, धर्मान्तरण रोकने, घुसपैठ रोकने, राम-जन्मभूमि पर भव्य मन्दिर बनाने, वमजिहाद, लभजिहाद (Love जिहाद) आतंकवाद से निबटने व रामसेतु के लिये निरन्तर आन्दोलन करना पड़ रहा है यह सारे विश्व के सामने बड़ी हास्यास्पद स्थिति है। सारा राष्ट्र व हिन्दू समाज पता नहीं कब इस लज्जाजनक स्थिति से मुक्त होगा। दुर्भाग्य से स्वाधीन भारत के संविधान ने अपनी जड़ें अपने मूल में, संस्कृति में डाली नहीं। हमारा बुद्धिजीवी-वर्ग, मीडिया, विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका हमारे मूल से, संस्कृति से, कटे हुए हैं। अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा व्यवस्था से लेकर हमारी सारी परम्परागत व्यवस्थाओं को दूषित एवं नष्ट कर अपने स्वार्थ अनुकूल ढाला। गाँधीजी का स्पष्ट विचार था—भारत में अंग्रेज भले रहें, यहाँ से अंग्रेजियत जानी चाहिए। गाँधीजी स्पष्ट रूप से भारतीयता के, हिन्दुत्व के पक्षधर थे। पर इसके विपरीत नेहरूजी चाहते थे भारत से अंग्रेज भले चले जाएं पर यहाँ अंग्रेजियत रहनी चाहिए। नेहरूजी का स्वयं का कथन है मैं शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान, केवल जन्मसूत्र के आधार पर यानी वे दुर्भाग्य से अपने को हिन्दू मानते थे। उन्हें पंडित कहलाने से भी वितृष्णा थी। उन्होंने जीवन भर हिन्दू धर्म-संस्कृति, हिन्दी भाषा, हिन्दुओं के श्रद्धाकेन्द्र तथा कृषि तंत्र-ऋषि तंत्र का

आधार गाय का, हिन्दू विधि-विधानों का विरोध किया। इस प्रकार दुर्भाग्य से स्वयं नेहरूजी अंग्रेजों के मानसपुत्र एवं इसलाम, ईसाइयत एवं मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण वही स्थिति स्वाधीन भारत में कायम ही नहीं रही, और विकृत हुई क्योंकि अंग्रेजों ने जो व्यवस्था बनायी वह इसलाम, ईसाई एवं मार्क्सवादियों के स्वार्थ के अनुकूल थी। और शिक्षामंत्री मौलाना अब्बुल कलाम आजाद फिर हुमांयु कबीर बने जिन्हें भारतीयता, भारतीय संस्कृति आदि से कोई लगाव या लेना-देना नहीं था। और देश की सारी बौद्धिक संस्थाओं पर कम्यूनिस्टों का प्रभाव स्थापित हो गया। फलतः आज हमारा बुद्धिजीवी-वर्ग, हमारा मीडिया, अपनी परम्परा, अपनी मूल संस्कृति से कटा हुआ, Money minded बन गया है, हमारी न्यायपालिका संविधान की धाराओं से बंधी होने के कारण असहाय एवं पश्चिमी मान्यताओं से ग्रस्त है। हमारी विधायिका बहरी और कार्यपालिका लूली बनी हुई है। ये सब के सब अपने ही देश-धर्म-संस्कृति के मानबिन्दु, इतिहास, महापुरुष, भाषा अपने ही अस्तित्व एवं आदर्श के विरुद्ध खड़े हैं। विश्व में एकमात्र देश भारत ही ऐसा है जो स्वाधीनता के पश्चात् भी अभी तक न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना धर्म, न ही अपनी संस्कृति-अपनी जाति, न अपनी भाषा, महापुरुषों, श्रद्धाबिन्दु, तीर्थ, राष्ट्रीय ग्रंथ, राष्ट्रीय या जातीय लक्ष्य, कौन अपने, मित्र हैं, राष्ट्रीय है, कौन पराये हैं, शत्रु हैं, कौन दण्ड के पात्र हैं, कौन पुरस्कार के पात्र हैं आदि के मानदंड तय नहीं हो पाए हैं। इस देश की पहचान राम से है या बाबर से, गाँधी से है या जिन्ना से? इन सबके अभाव में कोई राष्ट्र कैसे विकास कर सकता है और कैसे सुरक्षित रह सकता है। जो इन मानदंडों के विरुद्ध चलता है उनको कैसे दण्डित कर सकता है? फलतः ये सब इन दोनों अराष्ट्रीय पंथों को दण्डित करने के स्थान पर उनके समर्थन में खड़े हैं, जो भारत के अस्तित्व को ही विश्व के मानचित्र से मिटाकर कोई ईसाइयत की, कोई इसलाम की, तो कोई मार्क्स की झोली में डाल देना चाहते हैं। और जो संगठन (भारत के मूल राष्ट्रीय पुत्र समाज) देश के निर्माण में लगे हैं उनको पुरस्कृत करने के स्थान पर उनको बाधा देने में, उनके प्रति हिन्दू समाज में भ्रम निर्माण करने में, दण्डित करने में, आतंकवादी सिद्ध करने में, कठघरे में खड़े करने में लगे हुए हैं। यानी चोरी ऊपर से सीनाजोरी की स्थिति, चोर उल्टा कोतवाल को डाँटे की स्थिति गाँधीजी के समय बन गयी थी, नेहरूजी के समय बलवतर होते-होते सोनियाजी के समय चरम पर थी। फलतः देश इन तीनों अराष्ट्रीय संगठनों के साथ-साथ ही अनेकानेक अन्तरराष्ट्रीय षड्यंत्रों का शिकार हो रहा है। इससे हिन्दू समाज के मन में निरन्तर एक निराशा की स्थिति, एक असहाय स्थिति घर करती जा रही है कि क्या हिन्दुत्व बचेगा, क्या भारतीय संस्कृति बचेगी? आगे आने वाली पीढ़ी का क्या होगा? क्या भारत, भारत के रूप में जीवित रहेगा

या रोम, यूनान-मिस्र की तरह इतिहास की, भूगोल की, अजायबघर की वस्तु बनकर, एक अतीत की कहानी बनकर रह जायेगा?

अंग्रेजों के समय से ही असम को मुस्लिम बहुल बनाने का प्रयास चल रहा था और वह कार्य स्वाधीन भारत में भी चल रहा था उसके परिणाम से असम समस्या निर्माण हुई। जिसकी प्रामाणिक सामग्री आपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पदाधिकारियों को दी।

'फूट डालो और शासन करो' के तहत अंग्रेज हिन्दू समाज को खण्ड-खण्ड करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने कुटिलतापूर्वक यह प्रतिपादन किया कि सिक्ख समाज हिन्दू समाज का अंग नहीं है और यह विषवृक्ष स्वाधीन भारत में भी कांग्रेस सरकार के प्रश्रय में फलता-फूलता रहा। फलतः पंजाब समस्या का निर्माण हुआ। इस पर भी आपने छोटी पुस्तिका तैयार की। इस संदर्भ में स्वर्गीय सरसंघचालक पूजनीय कुप.सी. सुदर्शनजी अपनी पुस्तक—'यों भटका पंजाब' के प्राक्कथन में कहते हैं कि पंजाब की समस्या जब सुलगनी शुरू हुई थी तभी प्राच्य शोध संस्थान रांची के निदेशक डॉ. हरवंशलाल ओबराय ने अपने एक लेख की पाण्डुलिपि मुझे दी थी। दुर्भाग्यवशात् उस लेख के प्रकाशित होने के पूर्व ही वे एक दुर्घटना में हम से बिछुड़ गये। किन्तु उनके इस लेख ने ही सर्वप्रथम इस समस्या के मूल में जाने की प्रेरणा दी।

भारत का नेतृत्ववर्ग आत्मगौरवशून्य हो जाने के कारण विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियाँ—विश्वव्यापी ईसाई शक्ति, विश्वव्यापी इसलामी शक्ति एवं कम्यूनिज्म की शक्ति आज धर्मप्राण भारत को ही शिकार का लक्ष्य बनाकर बड़े भीषण रूप से क्रियाशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की आवश्यकता है। विदेशी षड्यन्त्रों से त्राण पाने के लिये वे सभी हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा करते थे—'हे हिन्दू! तू बिन्दु-बिन्दु बनकर मत बिखर। तू बिन्दु-बिन्दु मिलकर सिंधु बन, वेग से बह, तब तुम्हारी धारा को कोई मोड़ नहीं सकेगा। हर हिन्दू जो आया है, उसको एक दिन मरना है, किन्तु हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हे हिन्दू! तू बिन्दु का जीवन छोड़कर सिंधु का जीवन जी। हे हिन्दू! तू सिंधु बन जा। धारा को अमर बना जा। हिन्दुओं के संगठित रहने से ही देश सुरक्षित रह सकता है'—ऐसा प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था। डॉ. ओबराय का कहना था हिन्दुओं को बचना है तो डॉ. एनी बीसेंट की बात हर हिन्दू को गांठ बांध लेनी चाहिए—कि 'हिन्दुत्व के बिना, भारत का कोई भविष्य नहीं, कोई अस्तित्व नहीं....। हिन्दुत्व ही भारत का मूल है.... और इसकी रक्षा हिन्दुओं को ही करनी पड़ेगी।' और हिन्दुओं में जो जयचन्द की परम्परा निभा रहे हैं, तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर वे भविष्य में, इतिहास के

कूड़ेदानी में फेंक दिये जायेंगे जैसा कि अतीत के जयचन्द, मानसिंह को नहीं पूजता, पृथ्वीराज और राणाप्रताप सर्वत्र पूजित हैं।

स्वाधीन भारत के अपने मूल और संस्कृति से निरन्तर कटते चले जाने से जो देश के वासियों का चारित्रिक पतन हुआ और सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला हुआ इससे मिलावट की समस्या उभरी। डालडा (वनस्पति तेल) में गाय की चर्बी मिलायी जा रही थी। उसका आपने सफल भण्डाफोड़ किया। इस संदर्भ में आपने जनता के नाम अपील और लेख तैयार किया।

ईसाई समस्या, मुस्लिम समस्या एवं अन्य समस्या सम्बन्धी लेख 'राष्ट्रीय समस्या' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किया गया है।

अंग्रेजों ने भारत का तेजोभंग करने, राष्ट्रीयता के आधार पर चुनौती न मिल सके तथा अपने शासन को स्थायित्व एवं वैधता प्रदान करने के लिये इतिहास के नाम पर भारतीयों को यह कुसंस्कार का विष पिलाना प्रारंभ किया कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं, वे मध्य एशिया के मैदानों से आक्रान्ता बनकर भारत में आए। जबकि स्थिति यह है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये। इसी देश के मूलवासी हैं और यहीं से सारे विश्व में फैले। डॉ. ओबरायजी का कहना है सारे विश्व में हिन्दू संस्कृति फैली थी और आज भी वह बहुत कुछ सुरक्षित है। 'मुझे विश्व का कोई भी ऐसा देश बताओ जो किसी न किसी ढंग से भारत का ऋणी नहीं है। मैं आपको उन्हीं के इतिहासों द्वारा सिद्ध कर दिखलाऊंगा कि कौन-कौन से दान उन्होंने हमसे प्राप्त किये हैं।' प्रो. ओबरायजी की यह चुनौती थी कि विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दिये जायें तो विश्व में सर्वत्र हिन्दू संस्कृति फैली हुई थी। ईसा से पूर्व यूरोप, इसलाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमरीका व फिलीप से पूर्व फिलिपाइन। अगर ये चार पर्दे हटा दिये जायें तो विश्व में सर्वत्र हिन्दू संस्कृति दिखेगी। ये सारे लेख 'इतिहास' शीर्षक के नाम से संग्रहित किये गये हैं। इसी में चित्रावली भी संकलित है, जो भारत के जगद्गुरु के पद को सिद्ध करती है।

डॉ. ओबराय का विचार था आज लोगों को मोटे-मोटे ग्रंथ पढ़ने का न समय है और न रुचि। अतः छोटी-छोटी पुस्तिका और चित्र प्रदर्शनियों के द्वारा देश-धर्म-संस्कृति, हमारी परम्पराएं, हमारा दिग्विजयी सांस्कृतिक इतिहास एवं हमारे महापुरुषों के प्रति गौरवबोध जगाने के लिये अनेक चित्र प्रदर्शनियाँ बनायी जिसमें हिमालय रक्षा प्रदर्शनी, जगद्गुरु भारत प्रदर्शनी, गीता प्रदर्शनी, रामायण प्रदर्शनी, स्वामी विवेकानन्द प्रदर्शनी, ऋषि अरविन्द घोष प्रदर्शनी, शिवाजी प्रदर्शनी, वनवासी जीवन परम्परा प्रदर्शनी, सात्त्विक आहार-विहार प्रदर्शनी आदि अनेक प्रदर्शनियाँ बनायी जिसे वे देश-विदेश में व्याख्यान के प्रसंगों में साथ ले जाते थे। कभी-कभी केवल प्रदर्शनी आयोजित करने के निमित्त भी देश-विदेश में आमंत्रित किए जाते थे।

डॉ. ओबराय ने देश-विदेश की यात्राओं में रामकथा के प्रसार से सम्बन्धित तथा हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं दर्शन के प्रसार से सम्बन्धित अनेक साक्ष्य एकत्र किये थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के विश्वव्यापी प्रसार के अनेक साक्ष्य संग्रहित किये। लगभग तीन हजार चित्रों, मूर्तियों और कलाकृतियों के रूप में 'संस्कृति विहार' रांची के सभागार में संचित थे और विषयवार रखे हुए थे जिसे कोई भी देखकर भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय, हिन्दू धर्म-संस्कृति व बौद्ध धर्म के विश्वव्यापी रूप को समझ सकता था, अनुभव कर सकता था। संस्कृति विहार की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में देश के प्रख्यात शिक्षाशास्त्री, पिलानी विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति पूज्य श्री शुकदेवजी पाण्डे को कुछ कार्यक्रम विशेष में आमंत्रित किया गया था। वे लिखते हैं, 'संस्कृति विहार, रांची में भारतीय संस्कृति संग्रहालय देखने का मुझे अवसर मिला। इस संग्रहालय के अवलोकन से कोई भी भारतीय दर्शक अपनी संस्कृति का बाहर चीन, जापान, बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, दक्षिण अमेरिका, अफगानिस्तान, पाकिस्तान व अन्य देशों में प्रचार-प्रसार देखकर हर्ष व उल्लास से वंचित नहीं रह सकता। उसको गर्व होता है कि वह उस देश का नागरिक है जिसने अनेक देशों को सुसंस्कृत किया। संग्रह-कर्ताओं ने जो स्तुत्य प्रयत्न किया वह सर्वथा सार्थक हुआ।' चित्रावली सेट इसी की छोटी सी अनुकृति है, नमूना है।

हमारी संस्कृति के चिरंजीवी होने का रहस्य—

यूनानो मिस्त्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

—इकबाल

(जब वह राष्ट्रीयधारा में था तब का महत्त्वपूर्ण कथन है)

युग पर युग बीत गये, युग पर युग बीतते जा रहे हैं और युग पर युग बीत जायेंगे तब भी हमारी संस्कृति अजर-अमर बनकर खड़ी है, दुर्भाग्य की सबसे अधिक ठोकरें खाकर भी चिरंजीवी बनी हुई है। जबकि अन्य संस्कृतियाँ छोटे-मोटे आघातों से सदा के लिये विलुप्त हो गयी हैं। आज उनको जानना है तो इतिहास के पृष्ठों में और अजायबघरों में जाना होगा।

तो भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण आज भी चिरंजीवी बनी हुई है। सारे विश्व के विद्वान् इस पर आश्चर्यचकित हैं।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, संयुक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेशवास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहन राय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किये। महापुरुष सारे भारत में पैदा हुए।

भारतीय संत परम्परा और सेमेटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'मुदमंगलमय संत समाजू' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमेटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। इनके यहाँ तो वे मानव समाज को दो भाग में बांटते हैं—विश्वासी और

अविश्वासी। अविश्वासी काफिर और हिडेन हैं। काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य, आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। जैसे फ्रैंसिस जेवियर ने गोवा में कैसा अमानुषिक अत्याचार किया। उसे पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएं, दिल दहल जाएगा। उसने घोषणा करवा दी कि सब जगह मन्दिर नष्ट कर दिये जाएं। सब मूर्तियाँ तोड़ दी जाएं। मैं नहीं जानता कि मन्दिरों के गिराये जाने और मूर्तियों के तोड़े जाने को प्रत्यक्ष देखकर जो मुझे प्रसन्नता होती है उसको शब्दों में कैसे वर्णन किया जा सकता है। एक जैसुइट की शपथ पढ़ें तो करुणा, मानवता से विश्वास उठ जायेगा। कोलम्बस ने अमेरीका में क्या अत्याचार नहीं किये? उस देश के मूलवासियों को समूल रूप से नष्ट कर दिया और वह फ्रैंसिस जेवियर, वह कोलम्बस उनके लिये महान् संत है, महान् पुरुष है, आदर्श पुरुष है, ईसाई संस्कृति के प्रतीक हैं।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान बुद्ध जो त्याग और आत्मविजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ क्योंकि उसने राज्य सत्ता त्याग दी, भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसलिये महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है, तपस्या में है, निःस्वार्थ सेवा में, ज्ञानदान में है, परदुःखकातरता में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में है, अपने पंथ विस्तार में है चाहे उसके लिये सारी मानव-जाति का संहार हो जाए।

यही स्थिति इसलाम की है। उनके आदर्श पुरुष हैं महमूद गजनवी जिसने कई बार सोमनाथ मन्दिर को लूटा, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, मानवता को अपमानित किया, स्त्री-पुरुषों को दास-दासी, रखेल बनाकर विदेशों में बेचा। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद बिन कासिम जिसने सत्रह वर्ष की आयु में सिंध पर विजय प्राप्त की। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद गोरी जिसने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया। उनके लिये औरंगजेब महान् मुगल सम्राट है उसे वे जिन्दा पीर मानते हैं। जिन्ना उनके यहाँ महान् पुरुष है जिसने देश को विभाजित किया।

इस प्रकार भारतीय संत-परम्परा और सेमेटिक संत-परम्परा जिसमें ईसाई, मुसलमान व पश्चिमी देश आते हैं, भारतीय आदर्श पुरुष और सेमेटिक आदर्श पुरुष में मूलभूत अंतर है। हमारे यहाँ जिनको असुर, दैत्य, राक्षस-पिशाच माना गया उनके यहाँ वे महान् पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। अतः सभी परम्पराओं

के संत एक समान है इस भ्रम में न रहें। हमारे यहाँ भी रावण, कंस, हिरण्यकशिपु हुए हैं पर वे हमारे आदर्श पुरुष नहीं हैं, उन्हें विकृति माना गया और दण्ड के पात्र बने। पश्चिम में भी सुकरात, मुसलमानों में रहीम, दाराशिकोह, सूफी संत सरमद, रसखान, जायसी, उशाउल्लाखान, मुहम्मद करीम छागला, भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम आदि के संतत्व, महानता का कारण भी उनका भारतीय विचार परम्परा के प्रभाव में आना और उसके अनुसार ढल जाना रहा। इसलिये वे मानवता के पुजारी और भारतभक्त बने।

आज भी मदरसे में जो शिक्षा दी जाती है, कोर्स चलते हैं, उनमें एक पाठ भी भारतीय महापुरुष पर नहीं है। गांधीजी मुसलमानों को मूल राष्ट्रीयधारा में लाने के लिए उनकी सारी अनुचित मांगें स्वीकारते रहे, अन्त में विभाजन को स्वीकार कर लिया और अपने प्राणों की आहुति देकर भी उनको अपना नहीं बना सके। पंडित नेहरूजी भी नहीं जो स्वयं को धर्म की दृष्टि से मुसलमान मानते थे। जो आजीवन उनके संरक्षक रहे वे भी उनके पाठ में नहीं हैं। सब मतांध मुसलमान ही उनके आदर्श पुरुष हैं। यही स्थिति परम्परागत ईसाइयों एवं पादरियों की है। अतः सभी परम्परा के महापुरुष एक से हैं इस भ्रम में न रहें। महापुरुषों संबंधी लेख दूसरे खण्ड में से संग्रहित किये गये हैं।

जहाँ विश्व के अन्य देशों के धर्म-दर्शन-संस्कृति विज्ञान के सामने नतमस्तक हैं, हतप्रभ हैं, भयभीत हैं; वहाँ एकमात्र भारतीय धर्म-दर्शन एवं संस्कृति ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिये चुनौती बनकर ऊँचा मस्तिष्क कर खड़ी है।

18वीं शताब्दी तक धर्म-दर्शन-संस्कृति के क्षेत्र में भारत जगद्‌गुरु रहा है। कुछ काल से दिशा भ्रमित होने से अपने आदर्शों से च्युत प्रतीत होता है। इस काल में भी स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऋषि अरविन्द घोष, साधु वास्वानी, महर्षि रमण, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, माधवराव सदाशिव गोलवलकरजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, भारती कृष्णतीर्थजी के कारण भारत का जगद्‌गुरुत्व बार-बार प्रमाणित हुआ है और आज भी भावी विश्व की आशा का केन्द्र भारत है।

प्रो. ओबराय को प्राचीन व अर्वाचीन भारतीय धर्म-दर्शन परम्परा का तथा पाश्चात्य परम्परा का प्रारम्भ से लेकर आज तक का विधिवत अध्ययन और आज की आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का सम्यक् ज्ञान था। फलतः आज के संदर्भ में हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति को प्रस्तुत किया है, व्याख्या की है।

प्रो. ओबराय का स्पष्ट अभिमत था कि दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य

विचार रत्नों की उपलब्धि की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है। जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा है कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदान्त दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध दर्शन सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिये न कि यूनान से।

शिव-गणेश-राम-कृष्ण हमारे देव-विग्रह ही नहीं अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द के आधार भी हैं। इसलिये राममनोहर लोहिया जो स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं, उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेला की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ कराया। गीता की विश्वव्यापी महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्रीशम्भूनाथ श्रीवास्तव ने अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय '**श्यामल रंजन मुखर्जी बनाम निर्मल रंजन मुखर्जी, ए.आई.आर. 2007' में केन्द्र सरकार से कहा है कि वह संविधान के अनुच्छेद 51 (क) मूल कर्तव्य के अन्तर्गत भगवद्गीता को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र घोषित करे।**

रामायण केवल हिन्दुओं का धर्मग्रंथ ही नहीं भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य है, साथ ही विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊँचे नैतिक आदर्श और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जाएगा।

सम्राट औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु सरमद के पास बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूआन को वेद सम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंडोनेशिया आदि देशों के मुसलमान आज तक बड़े चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि 'रामायण, महाभारत' हिन्दुस्तान

के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इसको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता। और न ही भारत राष्ट्र के साथ एकात्म हो सकता है। स्वयं जिन्ना अन्त तक इस तथ्य पर दृढ़ रहते और अगर मुस्लिम बंधु इस नसीहत को मानते तो देश विभाजन की कल्पना भी नहीं उठ सकती थी।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रांतिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी, वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे। उसे अपने घर साथ ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बहुत प्यारी थी। वे घर में साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति का तराना गाते और अन्त में दोनों साथ-साथ फांसी चढ़ गये। एक बार अश्फाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ। वे बेहोश हो गये, राम-राम चिल्लाने लगे। घरवालों ने कहा, अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम चिल्लाते रहे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारी नस-नस में है। इसने सबके दिल को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिल को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से देश पुनः एक हो सकता है।

आज प्रश्न उठता है कि भारत में मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या दाराशिकोह, रहीम, रसखान, अश्फाक उल्ला ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान मुसलमान रहते हुए भी रहीम, रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खण्डित हो पाती! जो स्वयं को भारतीय तो कहे पर भारतीयता को अस्वीकारे तो वह कैसे भारतीय हो सकता है? जो स्वयं को राष्ट्रीय माने पर राष्ट्रीयता को अस्वीकारे वह कैसे राष्ट्रीय नागरिक हो सकता है? प्रो. ओबराय कहते थे—भारत के मुसलमानो! भारतीयता को स्वीकार करो। भारतीयता को स्वीकारते ही खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के क्षितिज पर मुसकराने लगेगी।

संसार के सभी निष्पक्ष विचारकों एवं द्रष्टाओं का यही मत है कि धर्म तो केवल हिन्दू धर्म ही है, शेष सब पंथ, सम्प्रदाय और मजहब मात्र हैं जो नश्वर मानवों द्वारा धरती के भिन्न-भिन्न भूखण्डों में काल-सरिता की नश्वर तिथियों पर किसी सीमित लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्थापित किये गये, न वे अनादि हैं और न शाश्वत। हिन्दू धर्म ही मानव धर्म है, भावी विश्व का धर्म है। शाश्वत और सनातन है। ऐसा प्रो. ओबराय का भी स्पष्ट अभिमत था।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र का देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका शृंगार है, कलायें उसका सौंदर्य है,

विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ उसका भंडार है, संस्कृति उसका प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जाएगा।

इकबाल का (जब वह राष्ट्रीयधारा में था तब का) कथन है—

यूनानो मिस्र रोमां मिट गये जहाँ से

इसमें उन देशों के भूखण्ड अभी तक विद्यमान है किंतु उनकी संस्कृतियाँ मिट गयी।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है जबकि पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। पूरे यूरोप का भू-खण्ड भारत जितना ही है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान किन्तु बीसियों राष्ट्र। भारत में सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व देश में हजारों छोटे-छोटे राज्य रहे होंगे। मारवाड़-मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य अनेक थे। किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है, किन्तु हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमण के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा भारत रखने वाली यही सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति थी।

भाषायें बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। जातियाँ बांटती है, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण, आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है।

भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी—तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय-सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम सूत्र ने भारत को जगत्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। यदि समस्त दक्षिण-पूर्व-उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत की कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं, यदि फिजी, गियाना, मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड के लोग गंगा स्नान के लिये हजारों मील दूर से भारत यात्रा पर आते हैं तो केवल सांस्कृतिक-सम्बन्धों के कारण।

इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मानते हैं। अपने देश में सबसे पहले अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन आयोजित करते हैं। भारत से साढ़े सात हजार मील दूर फिजी में, भारत से साढ़े चार हजार मील दूर मारीशस, भारत से 12 हजार मील दूर गिआना और सूरीनाम में आज हिन्दी राष्ट्र भाषा का सम्मान पा रही है तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण।

भारतीय समाज उत्सवप्रिय समाज है। उत्सव की प्रियता और अधिकता भारत की समृद्धि को उसके ऊँचे सांस्कृतिक स्तर को सिद्ध करती है। भारत सचमुच रत्नगर्भा शस्य श्यामला देश है जो थोड़े से प्रयास से ही हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। जिस देश के वासियों का सारा समय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाता है उनके पास उत्सव पालन के लिए समय कहाँ? धन कहाँ? हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होने के कारण हमारे उत्सव मन को संस्कारित करने वाले, मन को ऊर्ध्वदिशा देने वाले, सत्य के प्रति निष्ठा जगाने वाले, देव विग्रह में, परब्रह्म परमात्मा में, आत्मा में निमज्जित करने वाले होते हैं। पर जिन देशों का सांस्कृतिक स्तर निम्न होता है उनके उत्सव मन को कुपथ-गामी, अधोगामी, विषयी बनाने वाले होते हैं। जैसे रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। जहाँ गुलामों को नग्न-अर्धनग्न रखा जाता था, उन्हें घर के दरवाजे या गली-कूचो में सोना पड़ता था। उनके जीवन में यदि कोई अपराध बन जाता था तो उनको जीवित समुद्र में मगरमच्छ के आगे डाल दिया जाता था, और निरपराध होने पर अपने मालिकों के मनोरंजनार्थ हिंस्र पशुओं से लड़ना पड़ता था। उनके हार जाने पर उनको मार कर उनके शव को रथ में बांध कर घसीटा जाता था। यही स्थिति इसलाम-ईसाइयत आदि की है। रमजान के माह का पालन करने के पश्चात् काफिरों के घात का आदेश देते हैं उनके शास्त्र। पर हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होने के कारण हमारे मन में सत्य के प्रति अविचल निष्ठा को जगाती है, हमारे मन को आध्यात्मिक बनाने का प्रभुमय बनाने का प्रयास करती है, हमारे मन को सात्त्विक आनन्द से आह्लाद से भर देती है। अतः भारतीय उत्सव हमारे राष्ट्रजीवन का प्राण है जो जन-जीवन में पुनः-पुनः प्राण संचार करता है और हमारे पूर्वजों की पुण्य परम्परा से, उसके कर्तृत्व-व्यक्तित्व से जोड़े रखता है।

विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं भारत है। तीसरी सदी ईसा-पूर्व के यूनानी वैज्ञानिक आर्कमिडीज से 17वीं सदी के ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन तक पश्चिम में लगभग 2000 वर्षों तक जब विज्ञान मर चुका था तब भी भारत में वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, श्रीधर, लीलावती आदि अनेक वैज्ञानिक हुए। जहाँ पश्चिम में 17वीं शती में धरती को गोल कहने पर गैलिलियो को कारागार में सता-सता कर मारा गया वहीं भारत की वैदिक परम्परा

में ही 'भूगोल' (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्डमण्डलाकारम् शब्द ही भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहा है।

मनुष्य अपने जीवन काल में पूर्णता लाभ प्राप्त कर सके, परमलक्ष्य तक पहुँच सके इसके लिए मन का स्वस्थ, सबल और चिंतामुक्त होना अति आवश्यक है। अतः चिंता के क्या कारण हैं, चिंता के क्या दुष्प्रभाव हैं और चिंता से कैसे मुक्त होकर मन को स्वस्थ-सबल बना सकते हैं। चिंता सबके जीवन में आती है। पर यदि मन सबल होता है तो वह उसे विचलित नहीं कर पाती और वह छोटी मालूम पड़ती है और उससे वह उबर जाता है। पर यदि मन दुर्बल है तो चिन्तायें बड़ी प्रबल लगती हैं और वह उसे लक्ष्यच्युत कर विपथगामी बना सकती है। इसलिये कहा गया है मन के जीते जीत है, मन के हारे हार। मन के भी कई स्तर हैं जिसका प्रतिपादन योग दर्शन में हुआ है एवं अनेक शोध कार्य व विशेष अध्ययन हो रहे हैं मनोविज्ञान-परामनोविज्ञान के अन्तर्गत।

दर्शन, शिव, गणेश, रामायण, गीता, धर्म, संस्कृति, उत्सव, विज्ञान, मनोविज्ञान सम्बन्धी लेख तीसरे खण्ड में संकलित किये गये हैं।

डॉ. ओबराय बड़े निर्भीक वक्ता थे। जगजीवनराम उस समय खाद्यमंत्री बने नहीं थे बनने वाले थे। दिल्ली की एक सभा में जिसमें शंकराचार्य व साधु-संतों की उपस्थिति में कहने लगे, मैं तो सबकुछ खाता हूँ। फल महंगे हैं और गाय का दूध भी एक प्रकार से रक्त है ऐसा रूसी वैज्ञानिक का मत है। ऐसी अनर्गल बातें आपको सह्य नहीं हुईं। आपने पर्ची मंच पर भेजकर समय लेकर इसका घोर प्रतिवाद करते हुए कहा—आपने माँ का दूध नहीं माँ का रक्त पीया है। दूध प्रकृति का दान है। दूध पीने से माँ प्रफुलित होती है, उससे वात्सल्य झरता है, और जब किसी का रक्त निकालते हैं उसे वेदना होती है, तड़पता है और शेष में दम तोड़ देता है। आपने पूछा, किस रूसी वैज्ञानिक ने कहा कि दूध एक प्रकार से रक्त है?

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने एक ग्रंथ लिखा, 'वोल्गा से गंगा'। इसका प्रतिवाद आपने दिल्ली के एक मंच से उनकी उपस्थिति में किया। आपने मंच से स्पष्ट कहा—मार्क्स की भक्ति में बहकर आपने ऐसा प्रतिपादन किया है। जबकि रूसी भाषा में साहित्य का प्रारम्भ 13वीं सदी से हुआ है और रूसी भाषा के नमूने 11वीं सदी के मध्य के आस-पास के हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रंथ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है तथा कम से कम ईसा से 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप में सप्तसिंधु (उत्तर भारत) का वर्णन है। अतः स्पष्ट है—वोल्गा से गंगा नहीं, 'गंगा से वोल्गा' होना चाहिये।

ऐसे अनेकों प्रसंग मैंने प्रो. ओबरायजी के श्रीमुख से सुने हैं। एक प्रसंग को और उद्धृत करना चाहता हूँ। आप विदेश प्रवास में थे उस समय का प्रसंग है—

बाइबिल के अनुसार God ने 6 दिनों में सृष्टि की रचना की और सातवें दिन विश्राम किया। और वे दिन की गणना रविवार से प्रारम्भ करते हैं। तो इसके अनुसार 6 दिन शुक्रवार को पूरे हो जाते हैं। तब बाइबिल के अनुसार शनिवार को चर्च लगना चाहिये, इस विषय पर वाद-विवाद 8 दिनों से चल रहा था। इसमें भाग लेने की अनुमति प्रो. ओबरायजी ने चाही। सहर्ष अनुमति मिली और बड़े सम्मान के साथ उन्हें मंच पर बुलाया गया।

आपने कहा, भगवान् की पूजा तो प्रतिदिन-प्रतिपल होनी चाहिये। इस दृष्टि से चर्च रविवार को लगे या शनिवार को लगे यह विवाद ही व्यर्थ है। भगवान् कहते हैं, 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।' सब समय मेरा स्मरण करता हुआ अपने कर्तव्य का पालन कर।

फिर आपके God ने 6 दिन में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया। इसका अर्थ है सृष्टि के पहले भी Days थे जिसका उपयोग God ने किया। तब प्रश्न है दिन किसने बनाये? यह हमारे God ने बनाये जिसका उपयोग आपके God ने किया।

फिर आपने स्पष्ट किया कि शनिवार या रविवार में से किसी एक दिन ही क्यों सभी दिनों में सब समय ईश्वर से अपना सम्बन्ध जोड़कर रखना चाहिये। आप लोग चर्च के दिन मानवता की रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और उसके बाद ही से मानवता के संहार के लिये हर तरह के साधन जुटाने लग जाते हैं।

शनिवार को चर्च लगाना बाइबिल के अनुसार ठीक है और रविवार को चर्च लगाना इतिहास की दृष्टि से सही है। चूंकि सूर्योपासना रविवार को होती थी। वहाँ पर ईसाई पादरियों ने छल-प्रपंच से प्रवेशकर सूर्योपासना के स्थान पर ईसाई पूजा प्रारम्भ की। अतः रविवार को चर्च लगाना इतिहाससिद्ध तथ्य है।

फिर आपने बाइबिल के सम्बन्ध में कुछ शंकाएं रखीं—God ने 6 दिनों में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया। वहीं हमारे ईश्वर के मन में संकल्प उठा और तत्क्षण कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि हो गयी। तो तुम्हारा God बहुत आलसी है जिसे सृष्टि रचना में 6 दिन लग गये। इसका अर्थ तुम्हारा ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है।

फिर ईश्वर को विश्राम की आवश्यकता क्यों? ईश्वर थकेगा किससे? थकने का अर्थ है अधमरा होना। जीवों का शरीर कार्य के पश्चात् थक जाता है। इन्द्रियाँ अधमरी हो जाती हैं, तब शरीर को विश्राम देकर पुनर्जीवित किया जाता

है। वस्तुतः जो वस्तु थकती है उसका धीरे-धीरे क्षय होता जाता है और एक दिन विलीन भी, नष्ट भी हो जाती है। इस तरह ईसाइयों के God थकने के कारण धीरे-धीरे क्षय को प्राप्त हो नष्ट हो जायेंगे।

आपसे अनेक देशी-विदेशी अध्येता अपने शोधकार्य के लिये फोन व पत्राचार द्वारा मार्गदर्शन पाते रहे हैं। जिसमें शिकागो के डेनियन बेन हारिन को भारतीय दर्शन के नव्य-वेदांत पर शोधकार्य के लिये पत्राचार द्वारा मार्गदर्शन दिया गया। टोकियो विश्वविद्यालय के श्री मिश्ताशी को 'जेनबुद्धिज्म' (Zen-Buddhism) अर्थात् बौद्धमत के ध्यान योग सिद्धांत में मार्गदर्शन दिया गया। यहाँ तक कि डॉ. ओबराय के पास अमेरीका के प्रथम बैप्टिस्ट चर्च के मिनिस्टर (बड़े पादरी) भी आध्यात्मिक मार्गदर्शन हेतु आया करते थे। डब्ल्यू.ई. डेइलचर ने ब्रौकपोर्ट (न्यूयॉर्क) से लिखा था कि उसने डॉ. ओबराय के सुन्दर पत्र का अंश अपने कार्य में उद्धृत किया था। डेइलचर के अनुसार डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी की यह भावनायें कि 'भौतिक जीवन की सर्वांगीणता में आध्यात्मिक मार्गदर्शन अति आवश्यक है'—अत्यन्त ही यथा समय कही गई।

प्रो. ओबरायजी की दिनचर्या ब्रह्म मुहूर्त से प्रारम्भ होती थी—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।

अपने माता-पिता, गुरुजनों को नित्य नमस्कार करने एवं सेवा करने वाले व्यक्ति के चार गुण सदा बढ़ते रहते हैं—आयु, विद्या, यश और बल। ब्रह्ममुहूर्त का बड़ा महत्त्व है, प्रकृति में इस समय सतोगुण प्रबल होता है। यही समय ध्यान, पूजा-पाठ एवं माता-पिता से आशीर्वाद प्राप्त करने का उत्तम समय है। इस समय हम ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों, महापुरुषों, गुरुजनों, पूज्यजनों के प्रभामण्डल से, उनकी चेतना से जुड़ जाते हैं। स्नान के पश्चात् गीता स्वाध्याय और रात्रि शयन—

शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्-ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैक-नाथम्।।

मंत्रपाठ से होता था। आपका जीवन बहुत सरल-सीधा एक खुली पुस्तक थी। देव भक्ति और राष्ट्र भक्ति से ओत-प्रोत था। एक बालक से लेकर वृद्ध तक सीधे आपके पास आ सकता था। आपके इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण, इष्ट ग्रंथ भगवद्-गीता एवं रामचरितमानस थे। आपके इष्ट महापुरुष आद्यशंकराचार्य, छत्रपति शिवाजी, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द एवं गुरुजी थे।

इन तीनों खण्डों में संग्रहित लेखों में बहुत से लेख प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित हैं, कुछ उनके भाषण से संग्रहित हैं, और कुछ जो मैंने उनसे व्यक्तिगत रूप से पढ़ा है, शामिल हैं।

प्रो. ओबरायजी की दृष्टि से देखें तो यह बहुत अल्प सामग्री है। अधिकांश सामग्री तो उनके साथ ही चली गयी, बिना लेखन के। मेरा बार-बार उनसे निवेदन रहता था कि आप विधिवत लिखवायें अन्यथा ये सारा शोध व अध्ययन आपके साथ ही चला जाएगा। स्वयं प्रो. ओबरायजी की भी योजना 50 साल तक अध्ययन, उसके पश्चात् उसका विधिवत लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन की थी। इस दृष्टि से जब मैंने अपने आपको इस कार्य के लिये समर्पित किया तो उन्होंने सहर्ष स्वीकारा पर व्यवहार में परिणत नहीं हो सका। उनकी व्यस्तता के कारण, सरलता, अतिथि-परायणता के कारण। किसी को B.I.T. मेसरा में दाखिला चाहिये, किसी को अपने व्यवसाय में सहयोग चाहिये, किसी को सरकारी नौकरी में सहयोग चाहिये, किसी हिन्दू की बहू-बेटी मुसलमान भगाकर ले गया है, तो कोई ग्राम ईसाई पादरियों से पीड़ित है, धर्मान्तरण का शिकार है, तो किसी को अपने अध्ययन के लिये आर्थिक सहयोग चाहिये। इन कारणों से भी वे व्यस्त हो जाते और लेखन कार्य वहीं का वहीं धरा रह जाता।

इस प्रकार प्रो. ओबरायजी की हार्दिक इच्छा और मेरे सतत प्रयास के बाद भी लेखन व सम्पादन कार्य नहीं हो सका। 1983 ई. में इन्दौर विश्वविद्यालय में वेद और विज्ञान पर आयोजित सम्मेलन में उन्हें अपना शोध विचार रखना था। मुझे भी साथ चलने को कहा पर मैं साथ जा नहीं सका और आप 18 सितम्बर को रायपुर स्टेशन पर दुर्घटना-ग्रस्त होकर हम सबसे सदा के लिये छीन लिये गये।

यद्यपि उनके जीवनकाल में ही प्रायः सारी सामग्री संकलित कर ली थी। पर फिर भी कुछ सामग्री अवशिष्ट रह ही जाती है। अतः मैं जब-जब उनके छोटे भ्राता श्री ब्रजभूषण ओबरायजी के पास गया उन्होंने अवशिष्ट सामग्री संकलन के लिये पूरी आत्मीयता के साथ सहयोग दिया। प्रो. ओबरायजी मुझे अपना पुत्र ही मानते थे। मैं उनका पुत्रवत् शिष्य था। इस दृष्टि से मुझे अपने माता-पिता के तुल्य उनसे स्नेह, वात्सल्य, लाड़-प्यार मिला। पूज्य माताश्री और निर्मला बहनजी का भी पूरा स्नेह मिला और जब-जब दिल्ली में डा. मदनलाल ओबरायजी से मिला उनका पूरा स्नेह मुझे मिला।

प्रो. ओबरायजी के बहुत से लेख अंग्रेजी भाषा में थे। उनके हिन्दी अनुवाद की समस्या थी। उस समय प्रो. ओबरायजी के छोटे भाई श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय आगे आये। आपने छोटे-बड़े कुल मिलाकर 40 लेखों से अधिक का हिन्दी अनुवाद किया। जिसमें से 18 लेख इस संकलन में शामिल हैं। इसके पूर्व

चार लेख प्रो. अमरपालसिंहजी ने हिन्दी अनुवाद करके दिये थे। पांच लेख श्री श्रवणकुमारजी सोलंकी ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद अनुवाद करके दिये। प्रूफ रीडिंग में प्रो. मनोहर लाल ओहरी, श्री तोलाराम लाठ, श्री महावीरसिंह शेखावत, श्री अशोक परिहार और श्रीमती कौशल्या भाटी एवं श्री विनोदकुमारजी शर्मा से मदद मिली। मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ।

इसके प्रकाशन में भी लम्बी संघर्ष की गाथा है। प्रो. ओबरायजी के जाने के पश्चात् से ही जो भी सामग्री उपलब्ध है वह प्रकाशित हो, इसके लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिया था, पर इसमें सफलता अब मिल रही है। प्रभु की कृपा से एवं परम पूज्य गुरुदेवजी श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से तथा प्रो. हरवंशलाल ओबराय के छोटे भ्राता माननीय डा. मदनलालजी ओबराय, सुश्री (स्व.) निर्मला बहिनजी, माननीय श्री वृजभूषणजी ओबराय, माननीय श्री चन्द्रप्रकाशजी ओबराय एवं उनके समस्त परिवार के सहयोग से। पुस्तक अवश्य छपे और शीघ्र छपे इसके लिए निरंतर माननीय श्री जुगलकिशोरजी जैथलिया, माननीय श्री महावीरप्रसादजी बजाज, माननीय श्री रामेश्वरजी मिश्र 'पकंज', सुश्री कुसुमलता केडिया, माननीय श्री बालकृष्णजी नायक, माननीय श्री बालमुकुन्दजी, श्रद्धेय श्री पंडित शिवजी (गणेश धोरा) एवं माननीय श्री विपिनचन्द्रजी गोयल तथा माननीय श्री नन्दकिशोरजी आचार्य से निरन्तर प्रेरणा एवं नैतिक बल प्राप्त हुआ। मेरे पूर्वाश्रम के पूज्य माता-पिताजी पूज्य श्री सांवरमल लाठ, पूज्या श्रीमती गायत्री देवी लाठ, पूज्य बड़े चाचाजी श्री तोलाराम लाठ एवं सभी भाई-बहिनों से सदैव सब प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ, कभी भी किसी ने भी कोई बाधा खड़ी नहीं की, जिसके कारण ही मैं प्रो. ओबरायजी से निरंतर सम्पर्क बनाये रख सका, सामग्री संकलित कर पाया और अभी तक सुरक्षित रख पाया। ये लेख विविध अवसरों पर लिखे गए हैं फिर एक ही विषय पर कई बार कई लेख लिखे गए हैं अतः पुनरावृत्ति स्वाभाविक रूप से है। बहुत हद तक पुनरावृत्ति हटाने का प्रयास किया है फिर भी कुछ पुनरावृत्ति रह गयी है। और विशेषकर राष्ट्रीय समस्या और इतिहास (पहला खंड) में कई स्थानों पर पुनरावृत्ति हटायी नहीं जा सकी क्योंकि इससे विषय खंडित और अस्पष्ट रह जाता है। फिर जैसी प्रबुद्ध पाठक समाज की राय बनेगी उसके अनुसार अगले संस्करण में हटाने का प्रयास करूंगा।

Indias contribution to the Greaco-Roman world का हिन्दी अनुवाद 'यूनानी और रोमन जगत् को भारत की देन' यह लेख प्रो. ओबरायजी का है या नहीं निश्चय नहीं हो पा रहा है। पर इसे उनके समग्र से बाद भी नहीं कर पाने के कारण जब तक स्पष्ट नहीं होता इस टिप्पणी के साथ संकलन में शामिल कर रहा हूँ।

पुस्तक प्रकाशन के निमित्त आर्थिक सहयोग श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय (प्रो. ओबराय के छोटे भ्राता, पूर्व निदेशक, डायरेक्टर जनरल ऑफ फोरस्ट्स भारत सरकार 114, बसन्त विहार, फेज II, देहरादून, उत्तरांचल दूरभाष-01352766111, 09897076611) से 21 हजार रु., श्री बड़ा बाजार कुमारसभा पुस्तकालय कोलकाता से अग्रिम रूप में 10 हजार रु., राजस्थान परिषद कोलकाता से अग्रिम रूप में 11 हजार रु., श्री गिरधारीलाल दरगन से अग्रिम रूप में 11 हजार रु., श्री पन्नालाल लोहिया से 5 हजार रु., श्री श्याम सुन्दर शर्मा से 5 हजार रु., श्री जेठमलजी अरोड़ा से 51 सौ रु. एवं श्री मोहनलाल चौबे, पुरुलिया से अग्रिम रूप में 10000 रु. प्राप्त हुए। इन सबका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस संकलन को तैयार करने में मैंने अपना पूरा तन-मन, धन एवं अपनी पूरी प्रज्ञाशक्ति लगायी है। 18 वर्ष की अवस्था में यह कार्य प्रारम्भ किया था जब मैंने I.A. में प्रवेश लिया था और आज 54वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा हूँ यानी 36, वर्षों का परिश्रम व तप इसमें सन्निहित है। अब पाठक वर्ग को इसका मूल्यांकन करना है कि कहाँ तक मैं सफल हो पाया हूँ। इसमें कई लेख अधूरे थे जिन्हें मैंने प्रो. ओबरायजी से प्राप्त गुरु दृष्टि व स्वभाव के आधार पर पूर्ण किया है। और उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों को भी भारत एवं विश्वमनीषा के मंतव्यों के द्वारा और भी अधिक पुष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें कोई त्रुटि या कमी है तो मनीषीवृन्दों के सुझावों का स्वागत है जिससे अगले संस्करण में उनका यथा योग्य समावेश किया जा सके।

हमेशा की तरह सांखला प्रिंटर्स ने पूर्ण सहयोग करते हुए, श्रेष्ठ सुझाव देते हुए तत्परता से मुद्रण कार्य को सुन्दरता से सम्पन्न किया। उनके प्रति विशेष आभार है।

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

चतुर्थ खण्ड की सम्पादकीय

न तो पश्चिम को 'और' न अरब राष्ट्रों को भारत की राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, भाषा, महापुरुष, मान बिन्दुओं, श्रद्धा के केन्द्रों एवं इतिहास आदि के विषय में कोई भ्रान्ति है। विश्वप्रसिद्ध अमरीकी इतिहासज्ञ विल डूरेन्ट स्पष्ट रूप से कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्म स्थली था और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

इसी बात की पुष्टि में क्रूजर (Creuzer) भी कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी जब मक्का गये तो वहां के एक निवासी ने पूछा—'आप हिन्दू हैं?' शाही इमाम ने चौंककर कहा—'नहीं-नहीं, मैं मुसलमान हूँ।' बाद में उन्होंने प्रश्नकर्ता से पूछा—'आपने मुझे हिन्दू क्यों कहा?' तो उसका सहज उत्तर था—'इसलिये कि आप हिन्दुस्तान से आये हैं।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दि. 1.5.1977)

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टॉयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्राकथा का सर्वेक्षण करने के बाद लिखा है—यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्मविनाश में अन्त न होना हो तो यहां (भारत में) हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए

एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है। और इस आणविक युग में सर्वनाश से बचने का यह एकमात्र विकल्प है।

यहाँ टॉयनबी इन शब्दों में भारतीय प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' अर्थात् समस्त विश्व एक परिवार है, के आदर्श का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

विल डूरेन्ट कहता है—'हे भारत! तू इससे पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक और भोगवादी सभ्यता से निराश हो, शान्ति के लिए तरसता हुआ, अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।'

स्पष्ट है कि न पश्चिम को और न अरब राष्ट्र को भारत की राष्ट्रीयता के विषय में कोई भ्रान्ति है। और पूर्व (पहले) की भांति भारत ही उनका आशा का केन्द्र है और भारत से ही भविष्य में मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते हैं। क्योंकि आज के आधुनिक युग में पश्चिम ने चाहे जितनी प्रगति कर ली हो, जैसे—वह आकाश में पक्षियों की भांति उड़ सकता है, समुद्र में मछलियों की भांति तैर सकता है। पर मानव की भांति पृथ्वी पर रहना उसे भारत से ही सीखना होगा। आज पश्चिमी जगत् विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए जाना जाता है। पर उसके पास वह दृष्टि, वह भावना, वह कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व नहीं जो मानव मात्र को सुख-शांति व स्थायी आनन्द दे सके। पूर्णता तक ले जा सके। मोक्ष दे सके। जीवन की सब समस्याओं का समाधान दे सके।

जब भारत के प्रति पश्चिम की दृष्टि स्पष्ट है। तब स्वयं भारत, वह भी स्वाधीनता के पश्चात् के काल में कैसे भ्रान्त और पथच्युत होकर भटक गया?

अंग्रेजों से पूर्व भारत की सम्पन्नता से आकृष्ट होकर जितने भी विदेशी आक्रान्ता आये, अपने रहन-सहन, भाषा, आचार-विचार, मजहब आदि सभी आधारों पर हम उन्हें मलेच्छ ही समझते रहे। वे कभी भी, किसी भी आधार पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर सके, हमारे आदर के पात्र नहीं बन सके। चाहे वह ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हो। मुगल, तुर्क, पठान हों चाहे फ्रेंच, डच, पूर्त हों। इसलिये ये कभी भी न हमारे हृदय में प्रवेश कर सके और न हमारे घरों में। यही कारण है कि ब्रिटिश माल से भरा हुआ जहाज को वापस लौटना पड़ा किसी ने भी एक भी वस्तु नहीं स्वीकारी। न ईसाई पादरियों को धर्मान्तरण में कोई सफलता मिली। पर अन्तिम आक्रान्ता अंग्रेज बड़ा ही धूर्त और चालाक था। उसने देखा यहां सब प्रकार की विविधता, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पूजा पद्धति, भाषा, अनेकों दार्शनिक धाराओं के बाद भी यह राष्ट्र एक कैसे है? इनको जोड़ करके रखने वाला सूत्र कौनसा है? तब उसने पाया यहां का धर्म, दर्शन, संस्कृति सारे देश को

एकसूत्र में पिरोये हुए है। इसका धारक, वाहक, प्रचारक यहां का ब्राह्मण वर्ग है। संन्यासी वर्ग है। हम से तो हिन्दू हेंडसेक (हस्तमिलाप) करता है पर हमारे ही अधीन ब्राह्मण कर्मचारी है उसके चरणों को स्पर्श कर उसकी वंदना करता है। जब तक इनके प्रति श्रद्धा विचलित नहीं करते तब तक हमें राष्ट्रीयता के आधार पर चुनौती मिलती रहेगी। फिर प्रत्येक हिन्दू को अपने देश, धर्म, जाति, इतिहास, भाषा, अपने आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा पर गर्व है। इस देश से बढ़कर कोई देश नहीं जो सृष्टि के आरम्भ से है और अन्त तक रहने वाला है। हमारी जाति से बढ़कर कोई जाति नहीं और हमारे धर्म, भाषा, संस्कृति से बढ़कर कोई धर्म, भाषा, संस्कृति व इतिहास नहीं। इन सबके रहते हुए इन पर दीर्घकाल तक शासन नहीं किया जा सकता है और न ही इन पर केवल तोप-तलवार के बल पर दीर्घकाल तक शासन किया जा सकता है। नहीं तो इसलाम सफल हो जाता। क्योंकि जहां भी गया वहां की मूल सभ्यता संस्कृति को नष्ट कर अपने बर्बर विदेशी मजहब को थोप दिया। पर भारत में ऐसा सम्भव नहीं हुआ। अतः इन सभी बातों का विचार कर अंग्रेजों ने अपने भारत के साम्राज्य को सुदृढ़ व स्थाई बनाने के लिए और देश के इतिहास को विकृत करने के लिए त्रिसूत्री योजना बनाई। इस योजना की विस्तृत जानकारी वैश्विक मस्तिष्क वाले हिन्दू क्रान्तिकारी लाला हरदयाल की अंग्रेजी पुस्तिका My Divine Madness में मिलती है। इसके तीन सूत्र इस प्रकार हैं—

पहला सूत्र था—De-Hindulisation of The Hindus अर्थात् हिन्दुओं का अहिन्दूकरण करना। उनको साम्प्रदायिक बनाना। दूसरा सूत्र था—De Nationlisation of The Hindu अर्थात् हिन्दुओं का अराष्ट्रीयकरण करना। तीसरा और अन्तिम सूत्र था—De-Socialisation of The Hindu अर्थात् हिन्दू समाज को विघटित करना।

भारत का नैसर्गिक राष्ट्रीयता का अराष्ट्रीयकरण

इतिहास को विकृत कर अंग्रेजी सरकार ने यह प्रतिपादित किया कि भारत हिन्दुओं का मूल देश नहीं है। इनके पूर्वज आर्य मध्य एशिया से 3500 वर्ष पूर्व आक्रान्ता के रूप में भारत में आए, उसके बाद मुसलमान फिर ईसाई ये दोनों भी विदेशी हैं। काल क्रम में तीनों सम्प्रदाय इस देश में बस गये। हम जब इस देश में आये तब यहां न कोई सभ्यता थी, न ही संस्कृति और न ही राष्ट्रीयता। हमने (अंग्रेजों ने) इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। अब इस देश के मालिक हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई यह तीन सम्प्रदाय हैं। ये आपस में मिलकर मिला-जुला एक राष्ट्र और मिश्रित संस्कृति का निर्माण करें और जब तक मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण कर लेंगे तब हम भारत छोड़कर चले जायेंगे। इस प्रकार हिन्दू एक धर्म और राष्ट्र न होकर एक सम्प्रदाय मात्र है मुसलमान और ईसाई की तरह।

हिन्दू समाज का असमाजीकरण

हिन्दू समाज की एकात्मता को नष्ट करने लिए अंग्रेजों ने इसमें ब्राह्मण-अब्राह्मण, छूत-अछूत, उत्तरवासी, दक्षिणवासी, आर्य, द्रविड़, ट्राइबल-नॉन ट्राइबल, राजपूत-जाट, सवर्ण-असवर्ण आदि अनेक भेद उत्पन्न किए जिसका हमारे इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने हमारे समाज में भेद निर्माण कर इसकी वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था को भंग करने के लिए वर्णों के आधार पर संस्थाएं निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन दिया—यथा राजपूत महासभा वैश्य महासभा आदि-आदि।

हिन्दुओं का अहिन्दूकरण

हिन्दुओं की जितनी भी श्रेष्ठ बातें हैं, हिन्दुओं के जितने भी मान बिन्दु हैं, श्रद्धा बिन्दु हैं उनके प्रति अश्रद्धा निर्माण करना, हीन भावना उत्पन्न कर उसको त्याग के लिए प्रेरित करना। इसी आधार पर वेद गड़ेरियों के गीत हैं, जो old Testament से चुराई गई है, गीता New Testament से चुराई गई है। रामायण-महाभारत Myth है। Mythology है, गो के प्रति अवज्ञा का भाव, हमारा ऋषियों के प्रति अनास्था का भाव, संस्कृत मृत भाषा है। भाषा वेशभूषा आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, रूढ़ि-परम्परा, धर्म-श्रद्धा, मूर्तिपूजा आदि सबके प्रति सारहीन असम्मान, घृणा और पिछड़ापन का भाव भरने और हिन्दू कहने में ग्लानि का भाव भर जाए इसके लिए अंग्रेजों ने यहां की शिक्षा व्यवस्था एवं अन्य व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन कर हमारे मानस को ही बदल दिया। हमारी रुचि में, बुद्धि में परिवर्तन कर दिया। जिस चोटी, तिलक, यज्ञोपवीत के लिए सिर दे देते थे पर इसलाम के आगे घुटना नहीं टेका, धर्म परिवर्तन स्वीकार नहीं किया, वे ही हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में आकर स्वयं जनेऊ, चोटी, तिलक को त्याग कर, गोमांस खाकर यहां तक कि कुछ हिन्दू उसकी हड्डियों को मन्दिरों में फेंकने लगे। जबकि इसके पूर्व चाहे हिन्दू नास्तिक हो या आस्तिक, गो के प्रति एक भी अवज्ञा का दृष्टान्त नहीं मिलता। अंग्रेजी शिक्षा का कैसा प्रभाव पड़ा, इसके दो ऐतिहासिक उदाहरण पर्याप्त सिद्ध होंगे। बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दादाजी पर अंग्रेजी शिक्षा का, सभ्यता-संस्कृति का ऐसा नशा चढ़ा कि वे कहते थे भारत को अपना विकास करना है तो अंग्रेजों की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यद्यपि एक घटना ने उनके जीवन को पुनः भारतीयता से जोड़ दिया। तभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुष हमें मिले। ऋषि अरविन्द घोष के पिता कृष्णन् घोष भी अंग्रेजी सभ्यता में ऐसे ही रंग गये थे। उन्हें भी लगता था भारत को अपने विकास के लिए यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को वे कीड़ा मानते थे। इसलिए 5

वर्ष के अरविन्द को दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में, तत्पश्चात् इंग्लैण्ड भेज दिया और एक ईसाई परिवार को सौंप दिया। वारीन्द्र को तो जन्मते ही इंग्लैण्ड भेज दिया ताकि भारत की हवा भी न लगे।

इस प्रकार अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति में शिक्षित व्यक्ति अंग्रेजी को वरदान मानकर स्वयं के प्रति हीनभावना से भर गया। इस तरह अंग्रेज स्वयं के प्रति श्रेष्ठता की और हिन्दुत्व के प्रति हीनता की भावना भरने में समर्थ हो गया। यही मैकाले का भाव था। 2 जनवरी, 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य देते हुए उसने कहा था—मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सभी जगह घूमा। लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखाई नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था, के स्थान पर यह स्थापित न कर दें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारत की शिक्षा व्यवस्था से अधिक महान् है। इसके लिए आवश्यक है इस देश का गौरव-सम्मान, सदियों पुरानी प्राचीन शिक्षा प्रणाली और सांस्कृतिक प्रथाओं को मूल से ही बदलें। परिणामतः हिन्दुस्तानी यह मानने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, पाश्चात्य का है, वह श्रेष्ठ और महान् है। और इस कारण से वे स्वयं की निजी सांस्कृतिक धरोहर गवाएंगे और ऐसे नागरिक बन जायेंगे जैसा हम उनको बनाना चाहते हैं। मतलब कि काले अंग्रेज पैदा होंगे जो स्वैच्छिक गुलाम बन जायेंगे। तब ही हिन्दुस्तान सही अर्थों में हमारे आधिपत्य वाला गुलाम राष्ट्र बन पायेगा। ऐसा ही विचार फ्रांस का पादरी एबी दुबोय (Abbe Dubois) ने सन् 1815 में लिखा। वह इस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी में रहा। वहां हिन्दू समाज में समरसता से रहकर उसने जो अनुभव पाया था उसका लाभ कम्पनी को हो, इस दृष्टि से एक पुस्तक लिखी। जिसमें कम्पनी को कई सूचनाएं दी गई थी। उसमें यह महत्त्वपूर्ण सूचना थी कि हिन्दुओं की संस्कृति अति श्रेष्ठ कोटि की होने से उन पर ख्रिस्ती धर्ममत का प्रभाव नहीं जमेगा। अतः भारत में अंग्रेजी आधिपत्य स्थिर करने के लिए भारतीयों की अपने वेद शास्त्र, दर्शन आदि से श्रद्धा विचलित करनी चाहिए। ऐसी ही अमरीका के एक पादरी ने एक पुस्तक लिखी—'The inevitable choice'। इसमें लिखा है कि हिन्दुओं का जो वेदान्त का तत्त्वज्ञान है वह बड़ा खतरनाक है। अगर इसका सामना नहीं किया गया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि यह सारा का सारा ईसाई सम्प्रदाय हिन्दू समाज का एक सम्प्रदाय बनकर रह जाएगा। क्योंकि हिन्दू विविधता को रखते हुए भी अपनी आन्तरिक एकात्मता के द्वारा सबको अपने अन्दर समाविष्ट कर लेता है। उसने लिखा है कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है। आक्टोपस एक प्राणी होता है जिसके आठ पैर होते हैं और जो कोई इसके फंदे में

फंस जाता है वह छूट नहीं सकता। उसने कहा कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है, इसके फंदे में फंस गये तो हिन्दू समाज में आत्मसात् हुए बिना नहीं रह सकते। तुम इसके सम्प्रदाय बनकर रह जाओगे। स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष थे, एक बार रेलगाड़ी से जा रहे थे। उनके डब्बे में एक पादरी भी बैठा था। उससे बातचीत होने लगी। वह पादरी कहने लगा हिन्दू धर्म में कोई दम नहीं रहा। सब लोग हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई बन रहे हैं और फिर गिनती गिनाने लगा। स्वामीजी बोले—आनन्द की बात है। पादरी बोला, क्या कहा—आनन्द की बात है! आपको दुःख नहीं होता। स्वामीजी बोले, नहीं होता। आपको जितनी मेहनत करनी है करो, एक दिन सुबह हम घोषणा कर देंगे कि क्रॉइस्ट कृष्ण के अवतार थे और तुम्हारे सारे ईसाई समाज को हिन्दू समाज में ले लेंगे। बात ठीक है यह हमारी पद्धति है किसी का कुछ न मिटाते हुए सबको अपने अन्दर स्वीकार लेते हैं, अपने भाईचारे में बांध लेते हैं। इसलिए इन्हें डर हिन्दू से नहीं है—हिन्दू धर्म, दर्शन, संस्कृति से है। इन्हीं सब सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए इस्ट इंडिया कं. द्वारा भारतीय भाषा, विद्या शास्त्र, कला आदि का अध्ययन यूरोपीय पंडितों में प्रोत्साहित किया गया ताकि इन पर आघात किया जा सके और इसी दृष्टि से अनेकों यूरोपीय पंडित हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। और भारत एवं भारतीय इतिहास पर प्रहार प्रारम्भ हुए। इन सब आधारों पर लार्ड मैकाले अपने पिता को पत्र लिखता है।

लार्ड मैकाले का अपने पिता को लिखा पत्र दि. 12 अक्टूबर, 1836—हमारी शालाएं बहुत अच्छी तरह से उन्नति कर रही हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षण का प्रभाव अद्‌भुत हुआ है। अंग्रेजी शिक्षण जिसने प्राप्त किया है, ऐसे हिन्दुओं में से एक भी हिन्दू ऐसा नहीं है जो सच्चे हृदय से अपने धर्म का पालन करता हो। थोड़े ऐसे हैं जो नीति के विचार से स्वयं को हिन्दू कहते हैं। कुछ लोग ईसाई बन रहे हैं। यह मेरा विश्वास है कि यदि अपनी ऐसी शिक्षण नीति चलती रही तो यहां की सम्मानित जातियों में आगामी 30 सालों में एक भी ऐसा बंगाली बचा नहीं होगा जो कि मूर्तिपूजक हो। यह उनको ईसाई बनाये बगैर ही हो जाएगा। उनके धर्म में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अपना (अंग्रेजी का) ज्ञान एवं विचारशीलता बढ़ाने से यह काम स्वयं ही हो जायेगा। ऐसी सम्भावना पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इतना होने पर भी अंग्रेज व मैकाले अपने शासनकाल में उतना सफल नहीं हो पाए जितनी की सफलता स्वाधीन भारत में मिली और मिल रही है। अंग्रेजों के काल में अनेक महापुरुष उठ खड़े हुए, जिससे सांस्कृतिक नवजागरण व तत्पश्चात् राजनैतिक आन्दोलन का क्रम चल पड़ा। जिसमें महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. हेडगेवार, स्वामी प्रणवानन्द, लाल-

बाल-पाल, वीर सावरकर, गांधी-सुभाष आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। इसलिए मैकाले की अंग्रेजियत को वह सफलता नहीं मिली क्योंकि हिन्दुओं ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकारा। पर स्वाधीनता के बाद सबको लगा अब तो अपना राज्य है, वैसी चुनौती रही नहीं। वे ऐसे दुर्बल, अकुशल और कल्पना की दुनिया में विचरने वाले अपने मानस पुत्र को राज्य-शासन देकर गये जिससे अंग्रेजों के स्वार्थ सुरक्षित रहे और हिन्दू समाज (जो इस देश का राष्ट्रीय समाज है) कभी उठ न सके। और गांधीजी ने भी उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुनकर मानो स्वयं अपने एवं पूर्ववर्ती महापुरुषों के कार्यों पर पानी फेर दिया।

अंग्रेजों के काल में भारत में दो विचारधाराओं का दर्शन होता है। एक तो भारत की परम्परागत धारा—प्राचीन काल से भारत एक सनातन राष्ट्र है, सनातन इसकी संस्कृति है। दूसरी धारा अंग्रेजों द्वारा प्रचारित-प्रसारित, कि भारत एक नये राष्ट्र के रूप में हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई मिलकर, जो परस्पर तीन बहनें हैं अंग्रेजों के नेतृत्व में एक नये राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है। पहली धारा की समर्थक है प्राचीन से लेकर अर्वाचीन ऋषि परम्परा—जिसमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि अगस्त्य, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, महर्षि वेद व्यास, राजर्षि मनु, आचार्य चाणक्य, आद्य शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लाल-बाल-पाल, वीर सावरकर, सरदार पटेल, पुरुषोत्तम टण्डन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, कन्हैयालाल मुंशी, मदन मोहन मालवीय, गांधी आदि थे। दूसरी धारा के समर्थक नेहरूजी थे।

अंग्रेजों और गांधी की कृपा से शासन सूत्र नेहरूजी के हाथ में आ जाने से और स्वयं गांधीजी और पटेल के नहीं रहने से सारे देश को अपने अनुसार चलाने का निरंकुश अवसर उन्हें मिल गया। पंडित नेहरू स्वयं अंग्रेजों के मानस पुत्र होने से अपने को शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान और मार्क्सवाद के अनुयायी, केवल हिन्दू माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हिन्दू मानते थे अन्यथा हिन्दुत्व पर उनकी कोई श्रद्धा नहीं थी। वरन् चिढ़ थी। अपने ग्रंथ Discovery of India और आजाद व्याख्यानमाला में जो उनका व्याख्यान 'आज कल आज में' एवं अन्यत्र भी हिन्दू विरासत पर गर्व की बात कही अवश्य है पर व्यवहार उनका सदा इसके विपरीत ही रहा है। अंग्रेजों के काल में शिक्षा व्यवस्था में जो बची-खुची भारतीयता या हिन्दुत्व था वह भी उनके काल में और उनकी लीक पर चलने वाली सरकारों द्वारा समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजी काल में हमारी शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ अन्य सभी व्यवस्थाओं को जो ग्रहण लगा था वह यथावत ही नहीं और भी विकृत हुआ। इस प्रकार आजादी के पहले दिन से ही देश अपने मार्ग से विचलित हो गया और भारत की जो भूमिका होनी चाहिए थी वह आज तक नहीं बन सकी—भारत और विश्व के संदर्भ में।

इसी का परिणाम है आज का पढ़ा-लिखा युवक राष्ट्रीयता से रहित, स्वाभिमान से शून्य, आत्मगौरव से रहित, भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ, देश-धर्म, संस्कृति एवं पूर्वजों की गौरवगाथा से वंचित है। क्योंकि वह भारत की मूल विचार परम्परा से कटा हुआ है। उसे न अपनी दार्शनिक धाराओं की जानकारी है और न आज के आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष किस तरह भारतीय विचार परम्परा को, वेदान्त की धारा को सत्य प्रमाणित करते जा रहे हैं, इसकी जानकारी है। और न उसे सेमिटिक परम्परा कितनी अमानुषिक, अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक, अप्रजातांत्रिक, अराष्ट्रीय है और वह न केवल मानव को वरन् सारे चराचर को त्रास देने वाली सिद्ध हुई है और हो रही है, इसका ज्ञान है। यही कारण है कि वह अपने ही देश, धर्म, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों, श्रद्धा-केन्द्रों, भाषा, वेश-भूषा, खान-पान के विरुद्ध खड़ा है। वही सेमिटिक परम्परा (ईसाई-मुसलमान) के समर्थन में खड़ा होकर उसको संरक्षण प्रदान कर रहा है। वही देश के नेतृत्व के स्थान पर स्थापित है। वही शिक्षक, प्रोफेसर, प्राचार्य, अफसर बना हुआ है। वही विधायिका में बैठकर कानून बना रहा है। कार्यपालिका में बैठकर उसे क्रियान्वित करवा रहा है। न्यायपालिका में बैठकर निर्णय दे रहा है। इस प्रकार अपने मूल राष्ट्रीय समाज से कटा हुआ, अपनी विचार परम्पराओं से, अपनी आकांक्षाओं से अनभिज्ञ होकर देश को नेतृत्व दे रहा है। समाज की मूल आकांक्षा और परम्परा के विरुद्ध वह कानून व व्यवस्थाओं को थोप रहा है। इस प्रकार नेतृत्व देने वाले वर्ग और मूल समाज में कोई मेल नहीं है। विनोबा भावे के शब्दों में परस्पर राहु-केतु के समान कटे हुए हैं। विनोबा भावे कहते हैं कि 'अंग्रेजी पढ़ाई के कारण हमारे देश की जनता राहु और केतु के रूप में विभक्त हो गई है। आज जो हमारे शासक और विचारनिर्माता हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती है, वे अंग्रेजी में ही सोचते हैं और विदेशी विचार ही उनके लिए आदर्श है। वे राहु की तरह केवल सिर ही सिर हैं, भारत के शरीर से, भारत की सामान्य जनता से उनका सम्बन्ध कट गया है। भारतीय जनता की भावना, मान्यता और मूल्यचेतना उनके लिए न सामान्य है न महत्त्वपूर्ण।' इस प्रकार आज का पढ़ा-लिखा वर्ग मूल समाज के विरुद्ध खड़ा है। यह देश की सबसे बड़ी समस्या है। फिर देश में तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां—विश्व व्यापी इस्लामिक शक्ति, ईसाई शक्ति और कम्यूनिज्म की शक्ति—इस देश को नष्ट करने में लगी हैं। उसके पोषक और समर्थक बने हुए उन्हें सब प्रकार की सुविधा और संरक्षण दे रहे हैं और यह सब नेहरूजी की नीतियों का परिणाम है। अतः जो हानि ग्रीक, शक, हूण, कुषाण, मुगल, तुर्क, पठान, फ्रेंच, डच, पूर्त और अंग्रेज नहीं कर सके उससे अधिक हानि स्वाधीन भारत की नेहरू सरकार और उस लीक पर चलने वाली सरकारों ने कर दी है, अपने देश की मूल चेतना की उपेक्षा करके।

इस्लामिक, ईसाइयत एवं कम्यूनिज्म की धारा और ईसाइयत की प्रतिक्रिया में उपजी पश्चिमी सभ्यता आज अपने घर में ही खण्डित और तिरस्कृत होती जा रही है। क्योंकि ये प्रकृति के विरुद्ध धारायें हैं। प्रकृति के विरुद्ध, मानव स्वभाव के विरुद्ध धारायें अधिक काल तक टिकी नहीं रह सकती। चिरंजीवी नहीं हो सकती।

सेमिटिक परम्परा और भारतीय दृष्टि में मूलभूत अन्तर है। भारतीय दृष्टि दर्शन में, अध्यात्म में प्रवेश पाने के लिए पात्रता की, अधिकारी भेद की चर्चा करती है कि कौन शिष्य बनने के योग्य है और कौन गुरु की पात्रता रखता है। वेदान्त दर्शन ब्रह्म जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है और ब्रह्म जिज्ञासु को साधन चतुष्टय से युक्त होना चाहिए। तब उसमें शिष्य बनने की पात्रता आती है।

साधन चतुष्टय

(क) नित्यानित्य वस्तुविवेक।

(ख) इहामुत्रार्थ फलभोग विराम (इसमें लौकिक एवं पारलौकिक सभी कामनाओं का परित्याग)।

(ग) शम-दमादि षड्सम्पत्ति युक्त (शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा)।

(घ) मुमुक्षत्व।

ऐसे ही योग दर्शन में यम-नियम में प्रतिष्ठित होकर ही आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान-समाधि की कक्षा में प्रवेश की स्थिति आती है। समाधि की स्थिति में आत्म-साक्षात्कार की स्थिति आती है। उस अवस्था में ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनने की स्थिति आती है। तो हमारे यहां ब्रह्मविद्या के प्रवेश में कितनी कठोर मर्यादाएं स्थापित की गईं और ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता के लिए तो पात्रता है कि वह श्रोत्रिय और साथ में ब्रह्मनिष्ठ भी होना चाहिए।

पर सेमिटिक परम्परा में इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं होने से जो ब्रह्मविद्या में प्रवेश के भी अधिकारी हैं या नहीं, वे ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता तक बन गये। अर्जुन जिज्ञासु तो बन सकता है पर वही गुरु बनकर उत्तर देने लगे तो कितने अनर्थ की सम्भावना है? वैसे ही सेमिटिक परम्परा के आचार्य जैसे ईसा मसीह आदि अधिक से अधिक ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी तो बन सकते हैं, जिज्ञासु तो बन सकते हैं, लेकिन ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता नहीं। बिना पात्रता के, बिना नैतिक आधार के ईश्वर साक्षात्कार वैसा ही है जैसा दुर्योधन का। कृष्ण के समझाने पर वह स्पष्ट कहता है कि मैं धर्म को भी जानता हूं, अधर्म को भी जानता हूं। धर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म से निवृत्ति नहीं। मेरे अन्दर एक देव बैठा हुआ है। वह जैसा प्रेरित करता है वैसा ही मैं करता हूं—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

तो दुर्योधन के अन्दर कौन देवता बैठा है? वह राम नहीं काम है, स्वार्थ है। उसका स्वार्थ जैसा उसको प्रेरित करता है, प्रेरणा देता है, वैसा ही वह करता है। अतः अपने स्वार्थ के अनुसार, अपने स्वभाव के अनुसार, अपने स्तर के अनुसार, अपने संस्कारों एवं सोच के अनुसार ऐसे ही देव को हम अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर लेते हैं एवं भ्रमवश उसी प्रेरणा को अन्तःप्रेरणा मान बैठते हैं।

जब हम राग-द्वेष से रहित होते हैं, चित्त शुद्ध होता है, तो पूर्वाग्रह से मुक्त चित्त में ही ईश्वरीय प्रेरणा एवं साक्षात्कार होता है। उसके पूर्व तो अपने स्तर, अपने सोच, संस्कार एवं आवश्यकतानुसार प्रेरणा होती है। उसे ईश्वरीय प्रेरणा कहना गलत है। उसे ईश्वर प्रेरित नहीं मनःप्रेरित, मनःकल्पित ही कहा जा सकता है। सेमिटिक परम्परा ने ऐसी कोई मर्यादा या चिंतन न होने से जो ब्रह्मविद्या के शिष्य बनने की पात्रता भी नहीं रखते हैं वे ही ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनने से, ईश्वर के नाम पर कितने अनर्थकारी सिद्धान्तों को जन्म दिया—

सेमिटिक परम्परा में ईश्वर सातवें आसमान में है, एकदेशीय है। ईश्वर ऊपर वाला है जो अपने संदेश को दूतों के माध्यम से, फरिश्तों के माध्यम से प्रसारित करता है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने पुत्र एवं पैगम्बर को भेजता है, स्वयं नहीं आता। और इनकी साक्षी में विश्वासियों को अनन्त नरक या स्वर्ग मिलता है। मुक्ति या मोक्ष या पूर्णता की अवधारणा सेमिटिक परम्परा में नहीं है। हिन्दू परम्परा ईश्वर सर्वव्यापी है, सृष्टि का कोई भी कण ईश्वर से रहित नहीं है। नर में ही नारायण समाया हुआ है बस उसे धर्म-कर्म, साधना के द्वारा जगाने की आवश्यकता है। इसलिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू परम्परा में दीक्षित एवं शिक्षित ईसा मसीह ने जब कहा—'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है', तो यहूदियों को यह समझ में नहीं आया और इसे राजद्रोह मानकर उसे सूली पर लटका दिया। मंसूरी द्वारा अनहलक की धुन सुनकर यानी मैं खुदा हूं, मैं खुदा हूं को सबसे बड़ा अपराध मानकर औरंगजेब ने उसे सूली पर लटका दिया। सेमिटिक परम्परा में अल्लाह ऊपर वाला होने से मुल्ला जोर से बांग देता है नहीं तो वह सुन नहीं पायेगा। और अब तो ध्वनि विस्तारक यंत्र का उपयोग किया जाता है। हिन्दू परम्परा में ईश्वर सर्वत्र है स्वयं हमारे हृदय में प्रतिष्ठित है, अतः मौन प्रार्थना मन-मन में प्रार्थना को महत्त्व दिया जाता है।

सेमिटिक परम्परा का ईश्वर घोर राग-द्वेष से ग्रस्त है। उसकी अभिरुचियां नृशंसतापरायण हैं। उसकी मुंहलगी जातियां हैं, मुंहलगे चर्च और उम्मा हैं। उसके अक्षम्य शत्रु भी हैं। वह अहंकार से भरा हुआ और स्वार्थ से सराबोर है। वह किसी

अन्य उपास्य अथवा उपास्यों को सहन नहीं कर सकता। उसका आग्रह है कि उसके सिवाय किसी अन्य उपास्य की पूजा नहीं होनी चाहिए।

बाइबिल में ईश्वर (याहू) अपने मुख से कहता है कि 'वह ईर्ष्या विदग्ध ईश्वर है'। और जो ईर्ष्या विदग्ध है वह भयंकर रोष और नृशंसता से भरा हुआ भी है। वह अपने मुंहलगे लोगों को आदेश देता है कि जब मैं तुमको उस देश में पहुंचा दूं जहां पहुंचाने का वायदा मैंने तुमसे किया था और मैं उस देश के वासियों को तुम्हें सौंप दूं तो तुम उनको मारोगे और उनका सर्वनाश कर दोगे। तुम उनके साथ कोई समझौता नहीं करोगे न ही उनके प्रति दया दिखलाओगे.... तुम उनके पूजास्थलों का ध्वंस करोगे, उनकी देवमूर्तियों को तोड़ डालोगे और जिन वनों में चैत्य हैं उनको काट डालोगे..... कारण, तुम अपने प्रभु के निकट पावन लोग हो। बाइबिल विधि विवरण—7.1.6। कुरान के अल्लाह में भी लगभग ऐसे ही गुण-धर्म मिलते हैं। वह कोप का देवता है। जो लोग उस पर तथा उसके पैगम्बरों पर विश्वास नहीं करते उनको वह भयावह दण्ड (अजाब-अल-अजीम) देता है। इसी न्याय से वह प्रचण्ड प्रतिशोध लेने वाला है। वह लूट के माल की प्रभूत राशि देने वाला भी है। वह अपने मोमिनो को बतलाता है कि उसने किस प्रकार मोमिनो के शत्रुओं (काफिरों) को परास्त करके काफिरों की धरती, उनके घर-बार और उनका धन-धान्य मोमिनो को दिलवाये। अल्लाह बाइबिल के याहू का अक्षरशः अनुसरण करता है। याहू ने अपने मुंहलगे लोगों से वायदा किया है कि वह उनको ऐसे प्रशस्त और सम्पन्न नगर प्रदान करेगा जिनका निर्माण उन्होंने नहीं किया, ऐसे कुएं देगा जो कि उन्होंने नहीं खोदे। अंगूरों के ऐसे बाग और जैतून के ऐसे पेड़ देगा जो कि उन्होंने नहीं बोये।

बाइबिल विवरण 6.10.11 में God एवं अल्लाह के ये गुण-धर्म हैं। तो प्रश्न है शैतान के कौन से गुण-धर्म हैं? God एवं अल्लाह में स्वयं में देवीय गुण नहीं है तो उनके अनुयायियों में देवीय सम्पदा कहाँ से आयेगी। फिर इनके God सर्वोच्च सत्ता भी नहीं हैं। उनके समानान्तर शैतान की सत्ता है जो God का पहले नम्बर का शत्रु है, जो God की चुनौती के रूप में खड़ा है तथा God से निरन्तर संघर्षरत है। दोनों धर्म पुस्तकें हमें उपदेश देती हैं कि अपने नेक कर्मों के द्वारा खुदा की मदद करनी चाहिये ताकि शैतान उसको पीठ न लगा दे। इस प्रकार God न सर्वोच्च सत्ता है और न सर्वशक्तिमान।

इनका (ईसाई और मुसलमान का) कर्म सिद्धान्त अपूर्ण और अशुद्ध है। क्योंकि वे कर्म के सिद्धान्त को अन्तिम कयामत के दिन न्याय के रूप में मानते हैं पर पुनर्जन्म न मानने से उनके कर्म के सिद्धान्त का आधार भी कच्चा रह जाता है। Justice delayed is justice denied विलम्बित न्याय अन्याय जैसा बन

जाता है। अमरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर पर विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा, ऐसे ईश्वर से धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है जो कुछ दिन, माह या वर्ष में न्याय तो दे देता है।

हिन्दू धर्म मानता है कि ईश्वरीय न्याय अनवरत रूप से चल रहा है। भगवान् का न्यायालय एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं होता है।

फिर उनका ईश्वर न्याय भी अपने-अपने विश्वासियों के पक्ष में देता है। इस प्रकार ईश्वरीय न्याय निष्पक्ष नहीं है। अपने मत के सापेक्ष है। अविश्वासियों यानी काफिरों और हिडेनों को चाहे कितने ही सदाचारी पुण्यात्मा हों, गांधीजी हो या स्वामी विवेकानन्द हो या सुभाष बोस हो या रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, ऋषि अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर हो या डॉ. राधाकृष्णन् आदि हो सबको ही अनन्त नरक की आग में ही जलना है।

इसी विश्वास की निष्पत्ति मुहम्मद अली के कथन में है—पापी से पापी, भ्रष्ट से भ्रष्ट मुसलमान भी गांधी से श्रेष्ठ है। क्योंकि वह अल्लाह एवं मुहम्मद को स्वीकारता है। यही बात ईसाइयत के साथ है। इस तथ्य को स्वामी प्रणव चैतन्य पुरीजी ने बहुत सुन्दर रीति से रखा है–धर्म क्यों...क्या...कैसे....में वे कहते हैं—उन्नीसवीं सदी के इग्लैण्ड में एक विचारक हुए बर्ट्रेण्ड रसेल। वे किसी रिलीजन को नहीं मानने वाले थे। उस समय के एक क्रिश्चियन विद्वान से उनकी खुली बहस (Public Debate) हुई थी। रसेल ने उनसे एक प्रश्न किया—Christianity (क्रिश्चियनिटि) क्या है? उन्होंने संक्षेप में सुस्पष्ट उत्तर दिया। जीसस एक मात्र उद्धार करने वाला है। Jesus is the only Saviour बाइबिल सत्य है। गॉड सर्वोपरि है। इन तीन चीजों पर, व्यक्ति पर, ग्रन्थ पर व पूजा विधि पर जो विश्वास करता है वह क्रिश्चियन है। जो इन पर विश्वास करता है और अच्छा इनसान है वह मरने के बाद स्वर्ग (Heaven) में जाता है, जो ऐसा नहीं है, वह सदा के लिए नरक (Hell) में जाता है। यह क्रिश्चियनिटि है। बहुत सही विवरण दिया उन्होंने। बड़े स्कॉलर थे। रसेल ने पूछा जो जीसस को नहीं मानता, बाइबिल को नहीं मानता, गॉड को नहीं मानता, पर अच्छा इनसान है, वह कहाँ जाता है? और जो जीसस को मानता है, बाइबिल को मानता है, गॉड को मानता है पर अच्छा इनसान नहीं है वह कहाँ जाता है?

बड़े स्पष्ट शब्दों में पादरी महोदय ने कहा, जो जीसस को मानेगा वह चाहे कितना भी बुरा इनसान क्यों न हो, जीसस उसका उद्धार करेंगे। वह स्वर्ग जायेगा।

जो जीसस को नहीं मानता वह नरक जायेगा। गॉड को मानने से भी जीसस को एकमात्र उद्धारकर्ता मानना महत्त्वपूर्ण है। अगर रिलिजन के चरित्र को समझना है तो इस बात को ठीक से पकड़ना पड़ेगा। कितना ही अच्छा इनसान क्यों न हो, जीसस को न मानने का जो अपराध उसने कर दिया है, उसके फलस्वरूप थोड़े दिन के लिए नहीं, अनन्त काल के लिए, नरक जाना पड़ेगा। उनके यहां पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है।

उनकी ऐसी मान्यता है कि उनके ईश्वर ने या उनके पुत्र या पैगम्बर ने जो आदेश दिया है, वह आदेश उचित है या अनुचित—यह विचार आपको नहीं करना है। उसका अनुसरण करना है। उस पर संशय करना या उसको न मानना अपराध है। उसको मानना रिलिजन है। अब हिन्दुओं से पूछें, यही प्रश्न। आपसे ही पूछें। जो मन्दिर में नहीं जाता है, किसी शास्त्र को नहीं मानता, भगवान को भी नहीं मानता, पर सदाचारी है, अच्छा इनसान है, किसी को कष्ट नहीं देता, हिंसा नहीं करता, सत्य बोलता है, किसी का चुराता नहीं है, वह कहां जायेगा? उत्तर—'स्वर्ग में'। नरक में तो नहीं जायेगा कम से कम।

किसी भी हिन्दू से पूछ लीजिए। गाँव के व्यक्ति से पूछ लीजिए। वह भी बिना झिझक तुरन्त यही कहेगा। क्योंकि उसको पता है, धर्म क्या है? अच्छा इनसान बनने का नाम धर्म है। आप भगवान को मानते हैं या नहीं यह दूसरी बात है। किसी को कष्ट नहीं देना, यह धर्म है। किसी भी हिन्दू को उत्तर देने में कठिनाई नहीं होगी। मैंने इंग्लैण्ड में हिन्दुओं से यह प्रश्न पूछ के देखा। उनको अपने धर्म के बारे में बहुत मालूम नहीं होगा। परन्तु अन्तर्हृदय से जवाब आता है, अच्छा इनसान है तो नरक कैसे जा सकता है?

रसेल ने सुन्दर उत्तर दिया। कहा, जहाँ अच्छे इनसान पहुंच जाते हैं, उस नरक में मैं जाना पसन्द करूंगा। बुरे लोग, भगवान को मानने वाले स्वर्ग में जाकर तोड़-फोड़ ही करेंगे, आतंकवाद ही फैलायेंगे। उससे तो अच्छा है, हमारे लिए जो जगह रिजर्व है, उसी को अच्छी तरह बसा लेंगे।

ईसाइयत केवल इलहाम का दावा करती है। यह दावा कि उसे कभी 'ऊपर से' एकाएक सत्य प्राप्त हो गया था, जो एक मात्र ईश्वरीय सत्य है। वह केवल चर्च के पास सुरक्षित है। किसी मनुष्य की उस में कोई भूमिका न है, न हो सकती है। मनुष्य का काम केवल उस में विश्वास रखना है, और उसी मत में दूसरों को भी लाना है। छल, प्रपंच, लोभ, दबाव आदि हर तरीके से। क्योंकि कैथोलिक मत ही एकमात्र सत्य है। इसीलिए जो चर्च से बाहर है वे कभी स्वर्ग नहीं जा सकते। वे नरक में जलेंगे। इस सपाट, गोल तर्क के अलावा कैथोलिक चर्च या अन्य इलहामी धर्मविश्वासों के पास मूलतः कोई दर्शन नहीं है।

इसके ठीक उलटे भारत का सनातन धर्म तथा अन्यय पूर्वी धर्म-परम्पराएं भी सत्य को मनुष्य के अन्दर स्थित मानती है, जिसे वह आचरण, मनन, ध्यान और साधना से स्वयं पा सकता है। उसे किसी बाहरी एजेंसी की आवश्यकता नहीं है। ईश्वरीय सत्य कोई एक बार की ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि हरेक युग, स्थान और सभी मनुष्यों के लिए सदैव खुला मार्ग है। इसीलिए यह शाश्वत, सनातन और भौगोलिक सीमाओं से मुक्त भी है। इस में कोई जड़ रूढ़ियां नहीं, न कोई मजहबी संदेशवाहक जिन के आदेश मानना बाध्यकारी हो। मनुष्य कभी भी ईश्वरीय मार्ग स्वयं ढूँढ़ने, जाँचने का प्रयत्न कर सकता है।

सेमिटिक परम्परा में ईश्वर प्राप्ति के लिए माध्यम की अपरिहार्यता को ईसाइयत में चरवाहे और भेड़ों के रूपक में कहा गया है। सभी मनुष्य भेड़ें हैं, अप्रबुद्ध पशु हैं, और ईसा मसीह चरवाहे हैं जो उन्हें हांक कर मंजिल पे ले जाते हैं। ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट देन बुद्धि-विवेक है। अगर बुद्धि-विवेक से वंचित इनसान को भेड़ों की तरह हांक कर ईश्वर तक ले भी जाया जाता है, तो यह न तो ईश्वर के लिए और न इनसान के लिए ही गौरव की बात होगी। भगवान् ने हमें क्या बनाकर भेजा और हम किस तरह हांक कर भगवान् के सामने हाजिर किये गये इस एहसास से बोझिल ईश्वर और इनसान आमने-सामने होते हुए भी एक-दूसरे से आंख नहीं मिला सकते। हिन्दू धर्म मानव के सकल व्यक्तित्व को यथावत् स्वीकारते हुए उसी में उसके उद्धारक का अनुसंधान करता है। उसमें वासना है, आवेग है, अशुभ है, त्रुटियां हैं, पशु वृत्तियां हैं पर उसमें बुद्धि-विवेक भी है जिसके द्वारा अशुभों को पारकर अपने अन्तर में निहित नारायण तक, आत्मा तक, परमात्मा तक पहुंच सकता है। यहां गीता का एक उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देता है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ गीता 3/42-43

अर्थात् शरीर से इन्द्रियां श्रेष्ठ, सूक्ष्म बनी है, इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। इस प्रकार आत्मा को बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, आत्मा से ही आत्मा का स्तम्भन करके अर्थात् शुद्ध बुद्धि द्वारा मन को वश में करके व इस काम रूपी दुर्जय शत्रु को जीत ले। अपने भीतर विराजमान आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता के प्रति निरपेक्ष अध्यात्म पथ के वीर योद्धा रूप में मानव की यह अवधारणा, गड़रिये द्वारा हांक कर ले जाती भेड़ के रूप में मानवता की अवधारणा से कितनी और किस प्रकार भिन्न है, श्रेष्ठ है, मानव की गरिमा से युक्त है।

सेमिटिक परम्परा के सभी ग्रन्थ आदेशात्मक हैं। इनके मजहब में अक्ल का दखल स्वीकार नहीं है। उनका God या अल्लाह सर्वोच्च सत्ता है, शासक है। उन्होंने आदेश दिया ज्ञान वृक्ष का फल नहीं खाना है तो किसी भी स्थिति में नहीं खाना है क्योंकि God का आदेश है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन दण्डनीय अपराध है। उनको चुनौती देना है और वह सजा पाने का पात्र है। इस प्रकार पूर्ण तानाशाही है। सही-गलत का विचार करने का प्रश्न ही नहीं, सिर्फ आदेश पालन करना है। हिन्दू धर्म में आदेश-उपदेश-संदेश तीनों है। गीता भगवान का दिव्य संदेश है, आदेशात्मक शास्त्र नहीं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सारा उपदेश देकर कहते हैं, यह मैंने आपके हित का कथन किया है—'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु' गीता 18/63, मेरी बातों पर अच्छी तरह विचार कर लो और आपकी इच्छा हो वैसा करो। पर बाइबिल तथा कुरान शरीफ केवल और केवल आदेशात्मक ग्रन्थ हैं। अनुयायी के लिए 'आज्ञापालन' अथवा दण्ड के अतिरिक्त ये कोई विकल्प नहीं छोड़ते, किसी पहल का अवसर नहीं देते। इन धर्म ग्रन्थों के भेजने वाले खुदा से हम स्वप्न में भी यह आशा नहीं कर सकते कि वह कहेगा—यह धर्म ग्रन्थ भेजता हूं, इस पर पूरी तरह विचार करके, जैसा उचित समझो करो। व्यक्ति को यह गरिमा, उसके विवेक को यह हैसियत केवल हिन्दू धर्म ही देता है। सेमिटिक धर्मों में मनुष्य मात्र मशीन का पुरजा बनकर रह जाता है, बुद्धि-विवेक के विकास का कोई अवसर नहीं।

भगवान श्रीकृष्ण का आदेश है दूसरे प्रकार का। एक डॉक्टर बोल रहे हैं, यह करना, यह नहीं करना; यह खाना, यह नहीं खाना। ऐसा नहीं करोगे तो जरूर मरोगे। आगे तुम्हारी मर्जी। इस आदेश का जो रूप है, इसमें पहले की अपेक्षा क्या अन्तर है? इसको खयाल रखना। डॉक्टर जो कह रहे हैं, वह प्रकृति का नियम है। जिस सिद्धान्त से शरीर काम कर रहा है? जिन्दगी चल रही है उसको समझकर तदनुसार बोल रहा है। एक वैज्ञानिक दृष्टि है। देखो, ऐसे जिन्दगी चलती है, ऐसा खाओ, इतना सोओ, इतनी मेहनत करो, सफाई रखना, इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। डॉक्टर का आदेश है इसलिए यह ठीक है, ऐसा नहीं। यह प्राकृतिक नियम है। जैसे न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण की बात कही। क्या यह न्यूटन की आज्ञा है? आज्ञा नहीं। उन्होंने उसको समझा और बताया।

भगवान् श्रीकृष्ण जब आज्ञा दे रहे हैं, उनकी आज्ञा का स्वरूप भी वैसा ही है। यह पहले ही बताया कि 'धर्म जगतः स्थिति कारणम्'। इन नीतियों से जगत का संचालन हो रहा है। ये Nature में Inherent है। प्रकृति में स्वाभाविक रूप से समाया हुआ है। धर्म आपके भीतर है। आपके शरीर, इन्द्रिय आत्मा में

वह समाहित है। जाने-अनजाने उसके खिलाफ चलेंगे, उसका विपरीत परिणाम आपको भुगतना पड़ेगा।

ईसाई और इसलाम सांघिक धर्म है। इसलाम में नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद जाना आवश्यक है। क्योंकि नमाज बाजमात ही कबूल होती है। अकेली पढ़ी हुई, (विशेष परिस्थिति छोड़कर) नमाज कबूल नहीं होती। ईसाई को रविवार को चर्च जाना आवश्यक है।

इसलाम में सांघिकता पर विशेष बल है। आप दिन में पांच बार नमाज के लिए इकट्ठा हों। यह भी सम्भव न हो तो सप्ताह में एक बार जुम्मे के लिए इकट्ठा हों, ईद की नमाज के पूरे नगर के लोग इकट्ठा हों और हज के मौके पर पूरी दुनिया के मुसलमान इकट्ठा होकर नमाज पढ़ें। जब लोग मिलकर कार्य करते हैं तो संगठन की शक्ति पैदा होती है, और इसका लाभ भी उन्हें मिलता है। इस संगठन की शक्ति के कारण वे समाज के असंगठित लोगों पर हावी हो जाते हैं। संगठन की शक्ति के बल पर पूरे विश्व में उनका वर्चस्व बन जाता है। जहां संगठन से शक्ति पैदा होती है, वहां इसका नुकसान भी भारी है। जितना संगठन दृढ़ होता है उतना उनके अनुयायियों की प्रवृत्ति आज्ञा पालन तक सीमित हो जाती है। बुद्धि के उपयोग का अवसर नहीं रहता और उनका आत्मिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। आत्मबल क्षीण हो जाता है।

इसके विपरीत हिन्दू धर्म एक वैयक्तिक धर्म है। हिन्दुओं में पूजा के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। आप पूजाघर में अकेले बैठकर पूजा करें या मन्दिर में जाकर करें, किसी को कोई आपत्ति नहीं है। पूजा वस्तुतः आपके मन को संस्कारित करने का, शुद्ध करने का एक साधन है। अतः वह आपकी निजी व्यवस्था का विषय है। हिन्दू धर्म में पूजा की स्वतंत्रता है, आप जैसे चाहें और जिसकी चाहें पूजा करें इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है, आप राम, कृष्ण, सूर्य, शिव, दुर्गा आदि किसी की भी उपासना करें जहां से आपकी आत्मा को बल मिलता है। यह आत्मिक बल उत्पन्न करने का एक साधन है, यंत्र है। जिसके कारण कोई भी व्यक्ति समय आने पर अपने भीतर के आत्मिक अंश को इतना ऊंचा उठा लेता है कि वही भगवान बन जाता है। इसलिए भारत में परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार कभी बुद्ध, कभी महावीर, कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द आदि प्रकट हुए। ऐसी सम्भावना ईसाइयत व इसलाम में सम्भव नहीं होती।

इसलाम और ईसाइयत में संघ बल के कारण मुल्ला, मौलवी, पादरियों, बिशपों में शक्ति केन्द्रित हो जाती है। मुल्ला मौलवी द्वारा अपने अनुयायियों को फतवे जारी किये जाते हैं। इधर सारी शक्ति संगठित चर्च में केन्द्रित हो जाती

है। शक्ति भ्रष्ट करती है। और, पूर्ण शक्ति पूर्णतया भ्रष्ट करती है। धार्मिक और राजनीतिक दोनों शक्तियां पोपों में, खलीफाओं में केन्द्रित हो गई। पोपों ने अपने धार्मिक न्यायालय बना लिए और जनता पर दोहरा शासन स्थापित हो गया। 1438 ई. में ईसाई धर्म न्यायालय ने नीदरलैण्ड के 3 लाख लोगों को कैथोलिक पंथ से तनिक भिन्न आस्था के कारण जीवित जलाने का मृत्यु दण्ड दे दिया। इनीक्विजिशन एवं खूनी परिषद् द्वारा यूरोप के प्रत्येक देश में भीषण रक्तपात द्वारा सूर्य पूजा को नष्ट कर ईसाई मत थोपा गया। शिक्षा व्यवस्था चर्च के नियंत्रण में थी। बाइबिल से स्वतंत्र चिन्तन सम्भव नहीं था। इस कारण हजारों वैज्ञानिकों को निर्मम मृत्यु दण्ड स्वीकारना पड़ा। आर्किमिडिज के काल से न्यूटन के काल तक विज्ञान मृतप्राय हो गया था। मध्य युग में ज्ञान-विज्ञान की धारा अवरुद्ध हो गयी। इसलिए इसे ज्ञानांधकार का युग माना जाता है। अभी पश्चिम में किसी भी क्षेत्र में जो चिन्तन देखते हैं वह मात्र 300 वर्षों का है। उसके पूर्व शून्य की स्थिति देखते हैं। ईसाइयत से पिंड छुड़ाकर ही पश्चिम ने ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में उन्नति की है। यह दुरवस्था बनी संगठित चर्च के कारण जिससे यूरोप अभी तक पूरा मुक्त नहीं हो सका है। लाहौर कॉलेज में एक प्रो. क्लास रूम में पढ़ा रहे थे यह धरती हमारे सूर्य से पैदा हुई। और परीक्षा में यही लिखना तब पास हो होओगे। और क्लास रूम के बाहर यह मानना धरती पहले थी। उसके अंधकार को दूर करने के लिए अल्ला ताला ने सूर्य-चांद बनाये। ये नहीं मानने पर काफिर हो जाओगे। यह विरोधाभासी हास्यास्पद स्थिति तामसिक संगठित शक्ति के कारण कि कुरान के विरुद्ध जो भी कुछ कहो वह कुफ्र है, दण्ड का पात्र है, के कारण बनी।

मुल्ला-मौलवी के जीवन व उनके कार्य-व्यापार को देखें, पादरी बिशपों पोपों के जीवन व उनके कार्य-व्यापार, उनके यात्रा वृत्तान्तों को देखे तो उनमें कहीं भी धर्म और अध्यात्म की गंध नहीं मिलेगी। तब इनके अनुयायियों में कहां से मिलेगी! यह सब संगठित धर्म का परिणाम है जो आचरण और चरित्र पर बल नहीं देता, केवल विश्वासी होना पर्याप्त मानता है।

हिन्दू धर्म में ऐसी कोई बात कभी नहीं देखी गई। ब्राह्मण वर्ण का बहुत गौरव रहा है। किन्तु इनका काम पुरोहिती, पंडिताई, शिक्षा, उपदेश अथवा परामर्श तक ही सीमित रहा। वह भी यदि यजमान चाहे, आमंत्रित करे। हिन्दू धर्म के मर्म को जानने वाले और टीका करने वाले साधु-संन्यासी और गृहस्थ दोनों ही रहे हैं। इसमें जन्मगत, संस्थागत या सत्तागत विशेषाधिकार का कोई स्थान नहीं रहा है। इसीलिए हिन्दू धर्म में राजा, विद्वान और संत सभी जातियों से होते रहे हैं। इसमें **किसी पोप को स्थान नहीं** मिला है, न ही किसी मंचविशेष से की गई घोषणा को। हिन्दू धर्म **फतवे** नहीं देता। **न ही** ऐसी किसी **सिद्धान्त-संहिता** का यहां

स्थान है जिसका संकलन किसी सत्ता प्राप्त पुरोहित वर्ग ने किया हो और जो बाध्यकारी हो।

भारत ने कभी किसी को त्रास नहीं दिया न अपने देशवासियों और न विश्वासियों को? वह जन-जन का सेवक, विश्व का सेवक बना। भारत ने सारे विश्व को धर्म-दर्शन का, ज्ञान-विज्ञान का, सभ्यता-संस्कृति, कला-कौशल का यानी अपनी श्रेष्ठताओं का दान दिया बिना किसी देश की स्वाधीनता को छीने, बिना किसी देश की मां-बहनों के शील पर आघात किये, बिना किसी देश के अर्थ पर डाका डाले, बिना उसके धर्म को लूटे, बिना उनके सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को तहस-नहस किये। अपने निष्कलंक चरित्र और निर्मल ज्ञान के द्वारा बिना अपने देश का अहित किए हुए दिया।

सेमिटिक मजहबों में एकमेव मार्ग, एकमेव ग्रन्थ, एकमात्र पैगम्बर या मुक्तिदाता का आग्रह रहता है। वे यह विश्वास रखते हैं और प्रचारित करते हैं कि ये सत्य पर आरूढ़ हैं, इनका ईश्वर ही एकमात्र ईश्वर है। अन्य सभी धर्म मिथ्या को वहन कर रहे हैं, वे शैतानी भटकाव में हैं, अन्धकार में डूबे लोग हैं 'अन-रीच्ड पीपुल हैं, यहां अभी तक सच्चे मजहब का प्रकाश पहुंचा नहीं है। इनका दैवी अधिकार है इनको एकमात्र सच्चे रिलिजन की छत्रछाया में ले आएं। बाइबिल-कुरान दिव्य वचन हैं, अन्य सारे के सारे धर्म ग्रन्थ शैतान की कृतियां हैं। अन्य देवी-देवता 'फाल्स गॉड्स' हैं उनके पूरे इतिहास और अतीत को ठुकराते हैं जो उनके मजहबी विचारों से भिन्न प्रतीत होता था। उसे वह अन्धकार का युग या दौरे-जहालिया या पिछड़ा हुए समाज' कहते थे। इस प्रकार अपने से पहले या भिन्न लोगों में वह कुछ भी अच्छा नहीं देखते। सामी मजहबों की इस विशेषता या मनोवृत्ति से आज का आधुनिक यूरोपीय चिन्तन भी अभी तक मुक्त नहीं हो सका। इसी प्रवृत्ति से मिशनरी भावना, जिहाद भावना, क्रूसेड, इंक्विजीशन और सभी मनुष्यों का धर्मान्तरण करा कर अपने मजहब में लाने की जिद पैदा हुई। ये धर्म मान बैठे कि मूर्ति पूजकों, काफिरों, हीडेनों, पैगन और अन्य 'शैतान के अनुयायियों' को अपने कथित मजहब में ले आना इनका धार्मिक अधिकार है।

सत्य किसी एक ही किताब में बन्द नहीं किया जा सकता, बाइबिल, वेद या कुरान में, या किसी एक ही धर्म में। दैवी सत्ता शाश्वत और सार्वभौम और असीम है, ईश्वर और सत्य इन धर्मों से आगे तक बने रहेंगे और उन नए तरीकों, रूपों में पुनः निःसृत होंगे जैसी दैवी इच्छा होगी। तुम ईश्वर को अपने संकीर्ण दिमाग की सीमाओं में बन्द नहीं कर सकते अथवा दैवी शक्ति और चेतना को मनमाना आदेश नहीं दे सकते कि कैसे या कहां या किसके माध्यम से वह अपने को व्यक्त

करे; तुम दैवी सर्वशक्तिमत्ता के समक्ष अपनी दुर्बल बाड़ नहीं खड़े कर सकते। यह सब तो सामान्य सचाइयां हैं।

कुरान में कहा गया है कि 'काफिर' लोग 'निकृष्टतम कोटि के पशु हैं।' इसलाम के क्रियाकलाप इसके साक्षी हैं कि यह शब्दालंकार मात्र नहीं। इसलामी विचारधारा ने मानव-जाति को तीन वर्गों में बाँटा है : (1) मोमिन अर्थात् मुसलमान (2) अहले-किताब अर्थात् अन्य सामी मजहबों के अनुयायी यहूदी, ईसाई (3) शेष सभी मनुष्य। पहले वर्ग के लोग विशेषाधिकारी लोग हैं। दूसरे वर्ग के लोगों को 'जिम्मी' कहा गया, अर्थात् वे जिन्हें इसलाम आश्रय दे सकता है (ज़िम्मा ले सकता है), यदि वे उन पर लादी गई शर्तों एवं अनाचार का विरोध न करें। तब वे ज़िम्मी रूपी दूसरे दर्जे के नागरिक बन कर इसलामी शासन या समाज में रह सकते हैं। किन्तु तीसरे वर्ग के लोगों के लिए तो केवल दो ही रास्ते हैं—इसलाम या मौत! यह अन्य बात है कि इसलाम सदैव और सब स्थानों पर इस नीति को क्रियान्वित नहीं कर पाया।

इसलाम ने तो बुद्धि का प्रयोग सीखा ही नहीं। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि स्वतंत्र चिन्तन के रूप में बुद्धि का प्रयोग करने वाले को सशरीर खत्म कर ही वह सारे विवाद समाप्त करता रहा है। वह प्रवृत्ति आज भी यथावत और जग-जाहिर है। इसलाम के मत में प्रश्न पूछना व्यर्थ का प्रयास है। **बल प्रयोग** को ही इसलाम ने अधिक उपयोगी माना है। इसीलिए आरंभ से आज तक बड़े-बड़े इसलामी प्रवक्ताओं, प्रतिनिधियों और लेखकों ने प्रायः तलवार के ही गुण गाए हैं। इस बात को झुठलाकर मजहबी उग्रवाद की समस्या को समझना संभव नहीं है।

गांधीजी ने इसलाम की टिप्पणी करने से बचते रहे हैं। पर ईसाई मत का गहरा अध्ययन भी किया और उस पर अनेकों टिप्पणियां भी की हैं। पर ईसाई पर टिप्पणी इसलाम पर भी टिप्पणी सिद्ध होता है क्योंकि दोनों के विचार, कार्य, आधार भूत सिद्धान्त, आदर्श और आधार एक ही हैं। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि हिन्दू धर्म के प्रति मिशनरियों के अपमानजनक प्रचार से उन्हें ईसाइयत से अरुचि हो गई। क्योंकि 'ईसाई मिशनरी लोग हाई स्कूल के पास नुक्कड़ पर खड़े हो जाते थे और हिन्दुओं तथा हिन्दू देवी-देवताओं पर गालियां उड़ेलते हुए अपने पंथ का प्रचार करते।

आज भी ईसाई मिशनरियों की मूल प्रवृत्ति यथावत् है। वे भारत में जो साहित्य प्रायः वितरित करते हैं उसमें यही निष्कर्ष रहता है कि बाइबिल दिव्य वचन है और सारे हिन्दू धर्मग्रन्थ शैतान की कृतियां हैं। हिन्दू देवी-देवता 'फॉल्स गॉड्स' हैं, आदि। यह अनायास नहीं कि यहां प्रत्येक मिशनरी स्वयं को शिक्षक समझता है। भारत में हिन्दुओं से, महान हिन्दू ग्रन्थों, शास्त्रों से कुछ भी सीखा जा सकता है यह उसे

सिद्धान्ततः और अन्तिम रूप से अस्वीकार्य है। इन गम्भीर बिन्दुओं को भुलाकर सर्वधर्म समभाव का सपाट प्रचार करना भारतवासियों के लिए आत्मघाती ही हैं।

मत-पंथ-सम्प्रदाय या उपासना पद्धति या धर्म तो उसी को कहेंगे जो मनुष्य में सद्गुणों, श्रेष्ठ गुणों का, दैवी सम्पदा, चरित्र का विकास करे। यानी मनुष्य को मनुष्यत्व में ले जाये। मनुष्यत्व से देवत्व में, देवत्व से ब्रह्मत्व में यानी विकास के सर्वोच्च शिखर पर ले जाए। पर इसके विपरीत जो मनुष्य को मनुष्यत्व से च्युत कर पशुत्व, पशुत्व से पिशाचत्व में ले जाए क्या उसे मत-पंथ-सम्प्रदाय या मजहब अथवा धर्म कैसे कहा जा सकता है? हिंसक पशु दो कारणों से आघात करता है या तो भूखा हो या प्राणों पर संकट हो। पर पिशाच अकारण आघात करता है, हिंसा करता है उसी में उसे आनन्द आता है। इसलाम और ईसाइयत अकारण सारी दुनिया को त्रास दिया है और आज भी दे रहा है।

यही कारण है जब तक वह हिन्दू है वह राम-कृष्ण का पुजारी, गोभक्त, देवभक्त, देशभक्त है। पर जैसे ही इसलाम या ईसाइयत को स्वीकारता है राम-कृष्ण और भारत देश से कट जाता है। गोभक्षक बन जाता है। अन्य धर्मावलम्बियों का विरोधी बन जाता है। अलगाववादी, आतंकवादी बन जाता है। साम्राज्यवाद का पुर्जा बन जाता है।

इस संदर्भ में गांधीजी के उस कथन को स्मरण रखना चाहिए जो उन्होंने खिलाफत आन्दोलन के बाद हुए हिन्दुओं के नरसंहार पर डॉ. भगवानदास को लिखा था। श्रेष्ठ दार्शनिक भगवानदास ने उनसे पूछा था कि हमें बताया जाता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की धमनियों में एक ही पूर्वजों का रक्त बह रहा है, किन्तु दोनों का आचरण इतना भिन्न क्यों है? जहां हिन्दुओं का सहज झुकाव अहिंसा और शांति की ओर है तो मुस्लिम समाज का सहज ही हिंसा का मार्ग अपना लेता है। इस पर गांधीजी का उत्तर था कि इसका कारण दोनों विचारधाराओं में और इतिहास की यात्रा में खोजना होगा। यही बात ईसाइयत के साथ लागू होती है। इनके ग्रंथ बाइबिल और कुरान, हदीस में गैरों के प्रति, अविश्वासियों के प्रति जिहाद का आदेश उनके समूलोच्छेद का आदेश है। कुरान में 70 बार से अधिक आदेश है गैर-मुस्लिमों के वध के लिए। और अपने-अपने जन्म लग्न से आज तक का उनका इतिहास भी यही है।

ईश्वर सर्वज्ञ है अतः उसका कोई कार्य त्रुटियुक्त नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं को बारम्बार बदलता रहता है तथा अपनी पूर्व आज्ञाओं के विरुद्ध नई आज्ञाएं प्रकाशित करता रहता है, वह सफल नेता बनने के योग्य नहीं।

(क) बाइबिल में कई स्थानों पर ऐसा उल्लेख आता है कि ईश्वर ने अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप किया। कई स्थानों पर ईश्वर धमकियां देता है। किन्तु पीछे

क्षमा कर देता है। बाइबिल के कई भाग में कहा जाता है भिन्न-भिन्न समयों पर आसमान से उतरे। क्या परमात्मा का पहला ज्ञान अपूर्ण था?

(ख) मुसलमान मानते हैं कि पहले परमात्मा ने क्रमशः जबूर, तौरेत तथा अञ्जील के ज्ञान प्रकाशित किए। फिर उनको क्रमशः उत्तरोत्तर निषिद्ध करता रहा। क्या ईश्वर पहले अज्ञानी था? वेद जैसे सृष्टि के आदि में था वैसा अभी है। एक मात्रा भर का भी अन्तर नहीं हुआ।

प्राकृतिक संसार का कर्ता परमेश्वर है। अतः ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि नियमों के विरुद्ध भी नहीं हो सकता।

(क) बाइबिल में सृष्टि के नियमविरुद्ध लिखा है कि ईसा मसीह मरियम कुमारी के पेट से पैदा हुए। उन्होंने मुर्दे को जीवित किया।

(ख) कुरान में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाह ताला ने दुनिया की तारीकी (अंधेरा) को दूर करने के लिए ही चाँद और सूरज बनाये।

यदि सृष्टिकर्ता ईश्वर है तो सृष्टि के पूर्व ही उसका विधान प्रकट होना चाहिए, जिसके आधार पर सृष्टि प्रकट हुई, जिसके आधार पर सृष्टि चल रही है और जिसके आधार पर सृष्टि लय को प्राप्त होगी। उस विधान को वेद कहते हैं। वेद ब्रह्माजी को सृष्टि के पूर्व सृष्टि रचने और संचालन के लिए दिया गया। भगवान् विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए और ब्रह्माजी को वेद ज्ञान दिया गया। फिर ब्रह्माजी के मानस पुत्रों को ऋतंभरा प्रज्ञा से प्राप्त हुआ। फिर गुरु-शिष्य परम्परा से यह ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है। जो वेद सृष्टि के पूर्व से ही, सृष्टि प्रारम्भ से ही, प्रकट है। इसलिए वेद को अनादि, अपौरुषेय और अनन्त मानते हैं।

किसी भी राज्य का प्रशासन समुचित रीति से चलाने के लिए प्रशासन से पूर्व ही संविधान को होना अनिवार्य है। संविधान विधि नियम का सम्यक व सुस्पष्ट घोषणापत्र है। यदि किसी नागरिक को जीवन का उद्देश्य तथा नियम स्पष्ट शब्दों में नहीं बताये जायेंगे तो किन नियमों के आधार पर अनुशासित किया जायेगा और उल्लंघन करने पर दण्डित?

जो आज से 2017 वर्ष पूर्व या 1400 वर्ष पूर्व भगवान् के विधान को प्रकट मानते हैं तो वे ईश्वर को न्यायकारी सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि सृष्टि को बने करोड़ों वर्ष बीत चुके, मानव अस्तित्व को प्रकट हुए भी करोड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके तो 2017 या 1400 वर्ष पूर्व तक पूरी सृष्टि एवं मानव को अंधकार में, अज्ञान में रखने वाला ईश्वर न्यायकारी कैसे सिद्ध किया जा सकता है।

सृष्टि का काल ईसाई परम्परा के अनुसार—सन् 1642 में यूनान के प्रोफेसर लाइटफुट ने बाइबिल के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि सृष्टि की रचना प्रातः 9 बजे 17 सितम्बर 3928 ईसवी पूर्व हुई थी। पादरी यूशर ने 1658 ई. में इस विषय पर पुनर्विचार कर प्रोफेसर लाइटफुट के विचार का विरोध किया। वाद-विवाद चलता रहा। आयरलैण्ड के आर्चविशप (बड़े पादरी) ने 1664 ई. में यह निर्णय दिया कि सृष्टि की रचना 23 अक्टूबर 4004 ई. पूर्व प्रातः 9 बजे हुई और जो कोई इस निर्णय के विरुद्ध विचार रखेगा वह धर्मद्रोही समझा जायेगा तथा उसे पाप के लिए दण्ड भोगना पड़ेगा। यह दण्ड उस काल में जीवित जला देना होता था और इनक्यूजीशन कहलाता था। अतः कोई भी ईसाई उस काल में सृष्टि की उत्पत्ति 4004 ईसा पूर्व से अधिक न सोच सकता था, न कह सकता था।

सृष्टि का यह काल भारतीयों को मान्य नहीं है। वेद के अनुसार सन् 2017 में सृष्टि को बने 1,97,29,49,117 वर्ष हुए हैं। यह संख्या वर्तमान भू-गर्भशास्त्रियों की 2 अरब की संख्या से आश्चर्यजनक तौर पर मिलती हैं। पहले भारतीय काल गणना की हंसी उड़ाई जाती थी, Myth कहा जाता था। आज उनकी काल गणना Myth सिद्ध हो गई और भारतीय काल गणना विज्ञान सम्मत।

इसलामी विद्वान् पूछते हैं हिन्दू छात्र से कि आप पुस्तक का कौन-सा संस्करण पसन्द करोगे? उत्तर स्वाभाविक रूप से आता है नवीनतम। तो वेद का नवीनतम संस्करण कुरान है, यह कहना है मुस्लिम विद्वान् का। हिन्दू छात्र का प्रश्न—क्या सूर्य कभी पुराना होता है? क्या उसका कोई संस्करण होता है? सूर्य सदा एक सा रहेगा। उसका दूसरा, तीसरा या अन्तिम संस्करण नहीं होता। हमारा वेद सूर्य है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक एक ही रहने वाला है। और आज तक उसमें एक मात्रा का भी अन्तर नहीं हुआ।

गिरिलाल जैन (पूर्व सम्पादक टाइम्स ऑफ इण्डिया) प्रश्न उठाते हैं—इसलाम की हदीस के मुताबिक अल्लाह ने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में एक लाख चौबीस हजार पैगम्बर भेजे थे। दुनिया में कोई ऐसा समाज नहीं है जिनके पास अल्लाह के ये संदेशवाहक न पहुंचे हो। अगर अल्लाह ने सबके पास सन्देशवाहक भेजे हैं तो फिर मत परिवर्तन की क्या जरूरत हुई? आप फिर दूसरों के मजहब क्यों बदलना चाहते हैं? हिन्दुओं ने कभी पंथ परिवर्तन नहीं कराया। उनकी मान्यता है कि तुम अपने रास्ते से ईश्वर की खोज करो, मैं अपने रास्ते से करूंगा। यदि एक गुरु के दो शिष्य हैं तो वे दोनों भी अपना भिन्न मार्ग चुन सकते हैं। बड़े मजे की बात है उन्होंने मुहम्मद साहब को आखिरी संदेशवाहक भी करार दे दिया—अब गौर करने की बात यह है कि इसलाम की परम्परायें (हदीस) मुहम्मद साहब के

सौ-दो-सौ साल बाद एकत्र की गई और इन हदीसों को एकत्र करने वाले विद्वान थे मुस्लिम और बुखारी। दोनों ने लिखा है कि इन हदीसों में से 90 प्रतिशत तो झूठी हैं और उन्हें अस्वीकार कर दिया। लाखों हदीसे एकत्र की गई थी, जिनमें ये उन्होंने सिर्फ दस प्रतिशत को सच मानकर स्वीकार किया? अब सवाल उठता है कि अगर 90 प्रतिशत झूठी थी तो 10 प्रतिशत को सत्य कैसे माना गया?

बाइबिल पृथ्वी को चपटी मानता है। पृथ्वी सृष्टि के केन्द्र में है और सूर्य उसकी परिक्रमा करता है। गलैलियो का पृथ्वी को गोल कहने और धरती ही सूर्य की परिक्रमा करती है का प्रतिपादन करने पर उसे जेल में डालकर दारुण यंत्रणा दी गई और अपनी स्थापना का खंडन करने को कहा गया। कोपरनिक्स भी गलैलियो के ही निष्कर्ष पर पहुंचा। पर गलैलियो की स्थिति देखकर उसने अपने जीवन काल में भय से प्रकाशित नहीं किया। कुरान शरीफ के अनुसार पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाह ताला ने दुनिया की तारीकी (अन्धेरे) को दूर करने के लिए ही चांद सूरज दो लालटेन बनायी। इसके विपरीत धरती का सूर्य से पृथक् होने का स्पष्ट प्रतिपादन हिन्दू शास्त्रों में है। हमारे यहां भूगोल नाम ही पृथ्वी के गोल होने का परिचायक है। मनुस्मृति में केवल पृथ्वी को ही नहीं, वरन् समस्त सृष्टि (ब्रह्माण्ड) को भी अण्डाकार माना गया है। और भारतीय शास्त्र सृष्टि को हुए करीब दो अरब वर्ष की मानती है जो आज विज्ञान सिद्ध तथ्य है।

ईसाइयत मानती है God ने मनुष्य को अपने अनुरूप बनाया फिर वह मनुष्य को जन्म से पापी मानती है ये दोनों बातें स्वविरोधी है। फिर वह तब तक पापमुक्त नहीं होता जब तक ईसा को व्यक्तिगत मुक्तिदाता न स्वीकारता हो। भले ही वह कितना भी सदाचारपरायण, धर्मपरायण, ईश्वरपरायण क्यों न हो। क्योंकि जीसस ने स्वयं सूली पर चढ़कर सारे ईसाइयों के पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है। इसलिए ईसाइयत को जो स्वीकार करता है वह सब प्रकार के पाप करके भी पाप से मुक्त रहता है। इससे तो पुण्यात्मा बनने की प्रेरणा ही शेष नहीं बचती। इसलिये ईसाइयत के इतिहास में एक भी पुण्यात्मा ढूंढ़ना मुश्किल है। जो ईसाइयत को स्वीकारता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। इससे अधिक असंगत, अनर्गल बात क्या हो सकती है। क्या दूसरे के पापों का, आने वाली सभी पीढ़ियों के पापों का प्रायश्चित्त किसी अन्य के द्वारा किया जा सकता है? फिर ईसा को धोखे से पकड़वाने वाला जुडास (उनका यहूदी शिष्य) जो स्वयं पश्चात्ताप स्वरूप आत्महत्या कर लेता है, उसको वे दोषी मानते हैं। ईसा को सूली पर लटकाने के लिए केवल उसे ही नहीं, पूरी यहूदी जाति को दोषी मानकर उन्हें सब प्रकार से पीड़ित कर उनको दण्डस्वरूप उनके देश से ही निष्कासित कर देते हैं। अतः दोनों बात एक साथ कैसे सत्य हो सकती है। ईसा ने सूली पर चढ़कर सभी के पापों का

प्रायश्चित्त कर लिया और दूसरी तरफ ईसा की सूली के लिए पूरी यहूदी जाति को दोषी मानें या जुडास को दोषी मानें।

जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, अपार वेदना हो रही थी। तब God से शिकायत करते हुए कह उठे—हे God! तुमने भी कष्ट के समय साथ छोड़ दिया। तब H.G. Wells प्रश्न उठाते हैं—God ने अपने पुत्र का ही साथ छोड़ दिया तो उनके शिष्यों का क्या होगा? जो स्वयं दीन-हीन दशा में क्रॉस पर लटका हो और उसके शरीर पर ठोंकी कीलों से रक्त प्रवाहित हो रहा है, जो आतताइयों के सम्मुख बिल्कुल लाचार दिख रहा हो और जिसके चेहरे पर अन्याय और अत्याचार से लड़ने का संकल्प रत्तीभर भी न झलक रहा हो, जिसकी स्वयं की यह स्थिति है वह दूसरों का, शिष्यों का क्या उद्धार करेगा? अतः यह कितनी बकवास कि ईसा ने सूली पर चढ़ कर ईसाइयों के भविष्य में आने वाली सारी पीढ़ी के पापों का स्वयं प्रायश्चित्त कर लिया। स्वयं ईसा सूली पर अपार वेदना से त्राहि-त्राहि कर रहा है। ईसा को भारी-भरकम क्राँस को लेकर पहाड़ियों पर चढ़ना पड़ रहा है, रास्ते में तीन बार गिरता है उसे प्यास लगी है, वह पानी मांग रहा है, पर कोई उसे पानी नहीं देता वरन् तरह-तरह से अपमान करते हैं। जीसस को भाले चुभा-चुभा कर लोगों ने पूछा कि क्या हुआ तुम्हारे चमत्कारों का? क्या हुआ तुम्हारे परमात्मा का? तुम तो कहते थे कि तुम ईश्वर के बेटे हो, अब कहां है तुम्हारा पिता? आये और प्रमाण दे। स्पष्ट है यह ईसा के बाद के आचार्यों का कपटपूर्ण और निरी मूर्खतापूर्ण वचन है। ईसा का तो यह वचन हो ही नहीं सकता।

ईसाइयत मानती है कि जीसस ने सबके पाप भस्म कर दिये? जीसस को गये दो हजार साल हो गये। अगर जीसस ने सब पाप समाप्त कर दिये तो फिर दो हजार साल से ईसाइयों द्वारा पाप क्यों हो रहे हैं दुनिया में? इन दो हजार सालों में ईसाइयों द्वारा जितने पाप हुए हैं उतने शायद ईसा के पहले कभी नहीं हुए हों। आठ क्रूसेड, दो-दो विश्वयुद्ध ईसाइयों ने लड़े हैं। ये दो हजार साल आदमी के दुःख, पीड़ा, घावों के, पाप के, घृणा के, हिंसक युद्धों के साल हैं। आदमी खूंखार से खूंखार होता चला गया और ईसाइयत फिर भी दोहराये चली जाती है कि ईसा ने सबको पाप से मुक्त कर दिया। यह कितना अनर्गल प्रलाप है? ईसाइयों के सब कष्ट ईसा ने ऊपर झेल लिया है तो ईसा के बाद ईसाई कष्ट-दुःख क्यों पाते हैं? स्पष्ट है इससे अधिक मूर्खतापूर्ण बात और क्या हो सकती है।

विश्व प्रसिद्ध इतिहासज्ञ H.G. Wells कहते हैं—पैगम्बर मुहम्मद साहब की मृत्यु आयशा की गोद में हुई। वे अन्त समय तक स्त्री और भोग से स्वयं को विरत नहीं कर पाए। हिन्दू परम्परा में अन्त समय में इनसे नितान्त उपराम हो जाते हैं। अन्तिम समय बिछावन छुड़ाकर धरती पर शयन करवाते हैं। भगवान की कथा,

भगवत भजन का क्रम चलाते हैं, मुख में गंगाजल तुलसी देते हैं। सासांरिकता से विमुख करके मन को भगवान में रमाते हैं ताकि सद्‌गति मिले। यह हिन्दू परम्परा है। पर इसलाम में इसके विपरीत स्वयं मुहम्मद साहब भोग और स्त्री से उपराम नहीं हो पाये। वे अन्त तक भोग में रमे रहे, सांसारिकता में डूबे रहे। अतः इसलाम में जीवन और भोग एक दूसरे के पर्याय हैं। इहलोक में भी भोग और परलोक (स्वर्ग) में भोग ही भोग, इस प्रकार इसलाम में धर्म और अध्यात्म की गंध भी नहीं है। ईसाइयत में काम शैतान है, पाप है, वहां विवाह भी न्यूनतम अपराध है। विवाह के पश्चात् भी स्त्री-पुरुष समागम में बहुत ज्यादा विधि निषेध हैं यानी यह गृहस्थाश्रम को भी समुचित स्थान नहीं है। यहां मां बनना भी बड़ा अपराध है। अतः वहां के साहित्यकारों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी हैं। मां को पाप के संसार में लाने वाली कहा है। इनके यहां प्रवृत्ति मार्ग को भी समुचित स्थान नहीं है। और इसलाम ने काम को बहुत महिमान्वित किया है।

बराकपोर्ट (न्यूयार्क, अमेरीका) के First Beptist Mission के महापुरोहित रेबरेन्ड डाइक्लर्क (जिनके निवास पर डॉ. ओबराय अतिथि के रूप में लगभग एक मास तक ठहरे थे।) एक दिन कहने लगे कि आप हिन्दू लोग मृतक का शव जलाकर बड़ा अन्याय करते हैं। उनके पूछने पर उन्होंने कहा कि जिन बड़ों का सारी उमर सम्मान करते हैं मरने पर उनको स्वयं आग लगाकर जला देते हैं। यह बड़ा क्रूर दिखाई देता है। उसने कहा कि हम मृतकों के लिए सुन्दर कफन और बक्सा बनवाकर उसमें सुरक्षित रखते हैं। ऊपर सुन्दर पत्थर का स्मारक बना देते हैं। उन्होंने कहा, प्रतिव्यक्ति की कब्र के लिए कम से कम तीन फुट चौड़ी और आठ फुट लम्बी भूमि अवश्य लगती है। संसार में सारी जनसंख्या के लगभग ढाई अरब ईसाइयों में, लगभग 75 करोड़ मुसलमानों में, कुछ बौद्ध देशों में भी गाड़ने की प्रथा है, आदिवासियों में भी गाड़ने की प्रथा है। कभी-कभी हिन्दू महात्माओं को समाधि दी जाती है। लगभग 25 वर्ष में संसार की आधी जनसंख्या बदल जाती है। अत: प्रत्येक 50 वर्ष में लगभग पौने चार अरब लोगों को कब्रें चाहिये। ईसाइयत प्रारम्भ हुए 2000 वर्ष और इसलाम को प्रारंभ हुए 1400 वर्ष हो चुके हैं। यदि 2000 वर्षों में और 1400 वर्षों में लोगों की कब्रें और उनकी भूमि का हिसाब लगाया जाए तो धरती पर एक चींटी के भी रहने का स्थान नहीं बचता। फिर कयामत के दिन तो अभी तक बहुत दूर हैं। 10,000 वर्षों के 10,000 युग बीतने के बाद कयामत का दिन आयेगा, तब तक सारी धरती तो कब्रिस्तान बन चुकी होगी और जिस चन्द्रमा, मंगल ग्रह पर जाने का प्रयास करते हैं वहां भी कब्रिस्तान बन जायेगा। क्योंकि धरती पर जगह बचेगी ही नहीं। फिर वैज्ञानिक दृष्टि से कोई शरीर धरती के भीतर इतनी लम्बी अवधि तक सुरक्षित रह ही नहीं

सकता। अनेक पुराने कब्रिस्तान बाद में खेत बन जाते हैं या नगर बस जाते हैं। धरती पर हल के फाल से अनेक खोपड़ियां निकलती हैं। जिनको बच्चे फुटबाल समझ कर खेलने लगते हैं। अंग्रेजी की एक कविता में एक बच्चा अपने बूढ़े दादा से हल द्वारा निकली एक खोपड़ी के विषय में कहता है कि यह फुटबाल मुझे दे दो। मैं इससे खेलूंगा। पर दादाजी ने कहा, नहीं बेटा! यह फुटबाल नहीं है। यहां युद्ध में बहुत सैनिक मारे गये हैं। और यह कब्रिस्तान है। इसी प्रकार बहुत सी कब्रें खुली हुई मिलती हैं जिनकी भुजा, टांग जंगली पशु खींचकर ले जाते हैं। कयामत के दिन कीड़ों से खाये शरीर और पशुओं के पेट में गई हुई मांस-मज्जा, फुटबाल की तरह निकली हुई खोपड़ियां आदि सब मिलकर पुनः मानव शरीररूप धारण कर अन्तिम न्याय में स्वर्ग या नरक में जायेंगे। आर्य धर्म में शरीर को केवल जड़ मिट्टी माना जाता है। इसलिये उसको जला देने से शरीर का न भयंकर तिरस्कार होता है और न पशुओं द्वारा नोच-नोच कर खाने की नौबत आती है और न उपजाऊ धरती जीवित मानवों से छीनकर मुर्दों के लिए सुरक्षित की जाती है। चेतन आत्मा को न मिट्टी का भय है। न आग की ज्वालाओं का भय है। उसे कर्मफल के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा भी नहीं करनी पड़ती।

सृष्टि का जब अन्त अर्थात् कयामत का दिन आएगा, तब 'सुर' नाम की एक तुरही बजेगी, सब कब्रें खुल जाएंगी और जन्नत या दोजख का फैसला होगा। प्रश्न उठता है कि जो लोग कयामत के दिन भी जीवित होंगे तथा कब्रों में दफन नहीं होंगे उनका क्या होगा? वे लोग इसका उत्तर देते हैं कि कयामत के दिन तुरही बजते ही जिन्दा लोग भी तुरन्त मर जाएगे। प्रश्न यह भी उठा कि इतने दिन कब्र में रहने पर शव मिट्टी हो जाएगा तो वह कैसे उठ सकेगा। इस प्रश्न का हल डॉ. सेल अपने द्वारा किए गए कुरान अनुवाद में बताते हैं कि हजरत मुहम्मद ने इस समस्या का हल यह निकाला था कि शरीर तो मिट्टी हो जाएगा मगर एक हड्डी बची रहेगी जिसका नाम 'अल अज्ब' है। जिसे अन्तिम रीढ़ की हड्डी कहा जाता है। कयामत के दिन से चालीस दिन तक वर्षा होती रहेगी जिससे जैसे वर्षा से बीज से पौधे उठ खड़े होते हैं वैसे 'अल अज्ब' से सब मुर्दे उठ खड़े होंगे। इसलाम के अनुसार मुर्दे को किब्ला अर्थात् मक्का शरीफ की तरफ मुंह रख के दफनाया जाता है। कब्र इतनी ही गहरी बनाई जाती है ताकि समय पड़ने पर मुर्दा आसानी से उठकर बैठ सके। कब्र में मुनकिर और नकीर नाम के दो फरिश्ते मुर्दे के दाएं-बाएं बैठकर उससे उसके अच्छे-बुरे कर्मों की पड़ताल करेंगे जिसके अनुसार उसे जन्नत या दोजख में भेजा जाएगा।

सामी मजहब मनुष्य जीवन को एक घटना मात्र समझते हैं। उनके अनुसार मनुष्य का एक ही जीवन होता है जो यकायक आरम्भ होता और खत्म हो जाता है। इसलाम व ईसाइयत में मृत्यु के उपरान्त कयामत तक कब्र में उसी शरीर और

मानस, उन्हीं राग द्वेषों, कामनाओं के साथ पड़ा रहना पड़ता है। कयामत एक अरब वर्ष बाद आयेगी तब तक कब्र में पड़ा रहना पड़ता है। जहां न भोजन है न पानी, न हवा, न प्रकाश है। एक अरब वर्ष तक भूखे-प्यासे, सर्दी-गर्मी, कीड़ों की मार सहते हुए कब्र में पड़ा रहना होगा, जीवित अवस्था में अपनी सुविधा के लिए कितने प्रकार के व्यंजन (भोजन), पेय, हवा (पंखा, कूलर, एसी) की व्यवस्था करते हैं। एक दिन भी भोजन न मिले, थोड़ी देर के लिए भी बिजली चली जाती है तो कितने परेशान हो जाते हैं। कब्र में तो एक अरब वर्ष भूखे-प्यासे बिना हवा के अंधेरे में पड़े रहना है। यानी दुर्गति ही दुर्गति के शिकार होते हैं।

पर हिन्दुओं को कब्र में नहीं रहना पड़ता है, वह मृत्यु के उपरान्त आगे की यात्रा के लिए, पूर्णता की यात्रा के लिए चल पड़ता है। वह जीवन पर्यन्त पराक्रम करता है और मरणोपरान्त अग्नि की ज्वालाओं को झेलता है यानी वह सदा चुनौतियों को स्वीकार कर पराक्रम करता है। परन्तु मुसलमान-ईसाई मरणोपरान्त निष्क्रिय होकर कब्र में घुस जाता है, छिप जाता है। पलायन कर जाता है।

ईसाइयत और इसलाम के अनुसार मृत्योपरान्त कयामत तक भूखे-प्यासे, अंधेरे में, सीलन में कब्र में पड़ा रहना पड़ेगा। नेहरूजी जीवन भर नास्तिक रहे, हिन्दू धर्म-संस्कृति-दर्शन का विरोध करते रहे, इसलाम-ईसाइयत का सदा पक्ष लेते रहे। धर्म की दृष्टि से स्वयं को मुसलमान शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज मानते थे, पर अन्त समय इनसे सांत्वना नहीं मिली। सांत्वना मिली तो हिन्दू धर्म ग्रंथ गीता से ही। जर्मनी का विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहावर मृत्यु शय्या पर पड़ा मृत्यु के दिन गिन रहा था। उसे भी ईसाइयत से जीवन की सांत्वना नहीं मिली। उसे भी जीवन और मृत्यु की सांत्वना उपनिषदों और गीता से मिली। उसे अपनी यहूदी और ईसाई परम्परा सांत्वना नहीं दे सकी। यही हाल विश्व प्रसिद्ध अमरीकी का पत्रकार क्रिस्टोफर ईशरवुड का हुआ। उस कयामत के सिद्धान्त ने उसे भी नास्तिक बना दिया। वह भी अपनी आस्था को पुनर्जीवित गीता और वेदान्त के आधार पर ही कर सका। और अपने जीवन की रक्षा कर सका। आत्महत्या करने से अपने को बचा सका। और आज अमेरीका में एक तिहाई ईसाई हिन्दू आस्थाओं में विश्वास करने लगे हैं, कर्म सिद्धान्त को, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, ईश्वर प्राप्ति के एक नहीं अनेक मार्ग, शवदाह करने लगे हैं। आदि-आदि।

अनन्त स्वर्ग और नरक की धारणा त्रुटिपूर्ण है। एक जन्म के कर्मों से या थोड़े से कर्मों के आधार पर अनन्त स्वर्ग-नरक नहीं मिल सकता। स्वर्ग तो Five Star Hotel की तरह है। वहां जितनी पुण्य की पूँजी ले जायेंगे उतने सुख के अधिकारी बनेंगे। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोकं विशन्ति।' गीता 9/21 पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होना पड़ेगा। ऐसे ही पाप के क्षय होने पर नरक से छूट जाता है, मुक्त हो

जाता है। अतः स्वर्ग-नरक अनन्त नहीं होकर अल्प ही होता है, दीर्घ हो सकता है पर अनन्त तो कभी नहीं। अनित्य से नित्य, शान्त से अनन्त प्राप्त नहीं हो सकता।

फिर जो स्वर्ग है वह साक्षी सापेक्ष है, माध्यम की अनिवार्यता है। ईसाइयों के लिए ईसा और मुसलमानों के लिए पैगम्बर मुहम्मद की साक्षी स्वर्ग प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। यहां पैगम्बर और गुरु में अन्तर स्पष्ट है। ईसा स्वयं मानवता के सारे पाप लेकर सूली पर लटक गए। अतः अब पापी से पापी ईसाई भी ईसा का अनुयायी होने से, उनकी साक्षी मात्र से स्वर्ग का अधिकारी है। पर हिन्दू धर्म में गुरु सिर्फ पथ प्रदर्शक है, प्रेरणा देने वाला है, उस पर चलना शिष्य को ही है। और पाप-पुण्य का भागी वह स्वयं ही है। हमारे पाप को अन्य कोई भोग नहीं सकता। पुण्य को पुरस्कार को लोकहित के लिए किसी को या समाज, देश को समर्पित कर सकते हैं, पर पाप को, दण्ड को स्वयं ही भोगना पड़ता है।

हिन्दू परम्परा में हमारी मुक्ति के लिए, उद्धार के लिए किसी को स्वर्ग से आने की आवश्यकता नहीं है। हमारी मुक्ति हमारे ही अन्तर में निर्मित है, हमारा नित्य स्वभाव सदैव एक मुक्त आत्मा के रूप में है। वेदान्त साहित्य में यह बल निरंतर दिया जाता रहा है। यह आत्मा हममें से प्रत्येक में यहां तक कि जानवरों में, कीड़े-मकोड़ों में, सर्वत्र हमारी अन्तरतम आत्मा है। अन्तर इतना सा है कि जानवर इस सत्य को जान नहीं सकता। केवल मनुष्यों में ही इसे जानने की जैविक क्षमता है। यह मनुष्य की सर्वोच्च विशेषता है। जब कोई इस सत्य को पा लेता है तो वह तृप्त हो जाता है, कृत-कृत, धन्य-धन्य हो जाता है। सब प्रकार के तापों-पापों से मुक्त हो जाता है। जब तक हम स्वयं को, वास्तविक 'मैं' को नहीं जानते तभी तक सब प्रकार के ताप-पाप और अपराध है।

स्त्री के विषय में ईसाइयत की मान्यता है कि स्त्री का जन्म इसलिए हुआ कि आदम अकेला था और उसने कहा कि 'भगवान् मैं अकेला हूँ, मेरा समय नहीं कटता है। मुझे कोई साथी दो।' तब God ने ''मैन'' को सुला दिया और उसकी एक पसली खींची और उसमें फूंक मार दी तो हौव्वा (औरत) पैदा हो गई। हौव्वा आदम के मनोरंजन के लिए, सेवा के लिये, उपभोग के लिये पैदा हुई। उसमें आत्मा या चेतना नहीं है। उससे जैसी चाहें सेवा ली जा सकती है। इनके यहां नारी पूज्या नहीं भोग्या है। दूसरा, नारी मनुष्य को पाप के संसार में लाने वाली है क्योंकि हौव्वा शैतान से प्रेरित होकर निषिद्ध ज्ञानवृक्ष के फल को स्वयं खाती है फिर आदम को खिलाती है। फलतः ईश्वर से अभिशप्त होने और स्वर्ग से च्युत होने का कारण बनती हैं। यहां सब कुछ बिना परिश्रम के प्राप्त था। पृथ्वीलोक में सब कुछ परिश्रम से प्राप्त होगा और साथ ही प्रसव पीड़ा भोगने का अभिशाप प्राप्त करती है। नारी ही मनुष्य को पाप के संसार में लाने वाली है। अतः ईसाइयत

में मातृपद वंदनीय नहीं तिरस्करणीय है। यही कारण है कि वहां के साहित्यकारों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी और शताब्दियों तक नारियों को अमानुषिक यातना देकर लाखों की संख्या में मार दिया गया।

ईसाइयत के अनुसार मानवेतर प्राणी और चराचर जगत् मनुष्य के उपभोग के लिए हैं—तब गॉड ने नूह और उसके लड़कों को आशीर्वाद दिया—फलदायी बनो, अपनी संख्या बढ़ाओ और जमीन पर फैल जाओ। तुम्हारा आतंक जमीन के जानवरों, आसमान के परिन्दों, उन सब पर जो भूमि पर चलते हैं और सागर की मछलियों पर छा जायेगा। उन सबको तुम्हें सौंप रहा हूं। जो जिन्दा है और चलता है वह सब तुम्हारे खाने के लिए है। जैसे मैंने तुम्हें वनस्पति दी, उसी तरह अब तुम्हें सब कुछ दे रहा हूं।

अर्नाल्ड टायनबी ने कहा था कि आज जो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या व्याप्त है उसका कारण क्रिश्चियनिटी है जिसने कहा कि भगवान् ने मनुष्य को भेजा और कहा कि इसका उपभोग करो। तो मनुष्य सोचता है सारी दुनिया मेरे लिये है और इसका अविवेकपूर्ण विध्वंस कर रहा है। इससे यदि मुक्ति प्राप्त करनी हो तो हमको पौर्वात्य, भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर जाना पड़ेगा जो सभी के अन्दर ईश्वर का निवास मानकर चलता है।

इसलाम और ईसाइयत, दोनों धारायें मानव समाज को दो भागों में बांट देती हैं। मनुष्यों के आचार-व्यवहार चरित्र के आधार पर नहीं, वरन् उनके विश्वास के आधार पर। विश्वासी (जो इसलाम व ईसाइयत को स्वीकारते हैं) मोमिन हैं और अविश्वासी जो उन्हें नहीं मानते वे काफिर हैं। हिडेन हैं। इनके भाग्य में इहलोक में इनका उचित प्रायश्चित्त वध और परलोक में प्रायश्चित्त अनन्त नरक की आग में अनन्त काल तक जलना ही है। और इन दोनों सम्प्रदायों के पूर्वज माता-पिता ईसाई या मुसलमान नहीं हो सकते हैं। उन्हें भी इन दोनों पंथों ने अनन्त नरक की अग्नि में डाला है और अपने ही देश की पूर्व सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को नष्ट कर दिया है। क्योंकि वे इसलाम या ईसाइयत से सम्बन्ध नहीं रखते। अतः वे नष्ट होने योग्य ही हैं। जब उन्होंने अपने देश की यह दुर्गति की तो अन्य देशों पर भी कहर ढाया और आज भी ढहा रहे हैं—इसकी कल्पना भी कितनी भयावह है। इन दोनों में जिहाद आवश्यक कर्तव्य है जिसमें काफिरों और हिडेनों को अपने मत में लाना नहीं तो निर्मम ढंग से वध कर देना। जो जितने काफिरों का वध करेगा उसे जन्नत में उतना ही ऊंचा स्थान मिलेगा। गाजी बनने पर स्वर्ग में विशेष भोग प्राप्त होगा। और जिहाद में मृत्यु होती है तो वह शहीद कहलाता है और उसे तुरन्त जन्नत मिलती है। कयामत तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जन्नत में नीची दृष्टि किए हुई 72 हूरें मिलेंगी। और युद्ध में विजयी होने पर लूट में उसको हिस्सा मिलता है।

जो भी सद्‌गुण, मानवता, दया, क्षमा, सेवा, भाईचारे व बंधुत्व की बात है वह अविश्वासियों पर लागू नहीं होती उसे मंसूरी कहते हैं। इन सब तथ्यों को बाद देकर जब यह कहा जाता है कि सब धर्म समान हैं, कोई भी मजहब वैर करना नहीं सिखाता है तो यह आत्मवंचना नहीं तो क्या है? भारतीय विचारधारायें जीओ और जीने दो में विश्वास करती है सबको अभय देती हैं, पर सेमिटिक धारा केवल स्वयं के जीने में विश्वास करती है। दूसरों को जीने दो में विश्वास नहीं करती।

हिन्दू धर्म एकात्मता में विश्वास करता है पर सेमिटिक परम्परा एकरूपता में। यह मानव प्रकृति के विरुद्ध है। 84 लाख योनियों में एकमात्र मानव योनि ही कर्म योनि है जिसमें विचार स्वातंत्र्य है। रुचि भेद है। अतः एकरूपता नहीं एकात्मता ही सम्भव है। अतः मानव समाज को एक डण्डे से हाँका नहीं जा सकता। यही कारण है कि इसलाम, ईसाइयत, कम्यूनिज्म जो एकरूपता को लेकर चले वे आगे चलकर स्वयं ही कई सम्प्रदायों में विभक्त हो गये। केवल मात्र इसलाम में 73 सम्प्रदाय हैं।

गीता के 12वें अध्याय के बीसवें श्लोक में अमृत धर्म 'धर्म्यामृतमिदं' शब्द आया है। अमृत धर्म वह है जो सबको अमृत की, ईश्वर की संतान मानता है और सबको अभय देता है। पर जो मानव समाज को दो भागों में बांट देता है, जो उनके मत को मानता है वह विश्वासी और उसके मत को नहीं मानता है वह अविश्वासी है, काफिर है, Hidden है। उनको परलोक में अनन्त नरक की आग में ही जलना है और भूलोक में उनका उचित प्रायश्चित्त निर्मम ढंग से मृत्युदण्ड ही है। अतः जो अविश्वासियों के प्रति घृणा, द्वेष फैलाता है क्या उसे अमृत धर्म कहेंगे? या वह विष धर्म है। एक के प्रति भी द्वेष फैलाता है वह अमृत धर्म नहीं हो सकता। अमृत धर्म राग-द्वेष से मुक्त कर सबको समान रूप से प्रेम करना सिखाता है, पर जो विद्वेष फैलाये उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है? उसे असुर धर्म या विष धर्म ही कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिन्दू धर्म सबको एक ही ईश्वर की संतान मानता है। सबके अन्तर में एक ही नारायण का वास मानकर उसे निष्पाप और पवित्र मानकर सबको अभय देता है।

ईसाइयों का इतिहास भी बड़ा रक्तरंजित हैं। कलंकित है—पहले चर्च ने गैर ईसाइयों को मारना, जलाना प्रारम्भ किया। फिर राजनीतिक विरोधियों को नष्ट करने का अभियान चलाया। फिर गैर ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ किये तथा गैर ईसाई राष्ट्रों को धरती से उच्छेद करने का अभियान चलाया। फिर ईसाई मत के ही भिन्न सम्प्रदायों के स्त्री-पुरुषों को तेल छिड़क कर सामूहिक रूप से जलाना प्रारम्भ किया। पोप ने अपने धार्मिक न्यायालय बना लिये जो तनिक भी विरोध करने वाले या भिन्न मत रखने वाले लोगों को चर्च के शत्रु कहकर

सामूहिक रूप से जलाने या मारने का दण्ड देता था। Blood Council ने हजारों-लाखों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया। धार्मिक न्यायालय (Inquisition) ने पोप के एक वाक्य पर सन् 1568 में नीदरलैण्ड (हालैण्ड) के तीन लाख निवासियों को तेल छिड़ककर सामूहिक रूप से जला दिया। सारे यूरोप और अमरीका का चर्च का इतिहास इसी प्रकार के हिंसा-हत्या के कुकर्म से रक्तरंजित है।

डॉ. पितृम ए. सोरोकिन (डाइरेक्टर हार्वर्ड सेन्टर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म) अपनी पुस्तक—रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी (पृष्ठ 47) में ईसाई मिशनरियों के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं—'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्धपिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार परायण तथा सर्वाधिक सत्तामदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में पाश्चात्य ईसाइयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है। इनकी सेनाओं ने जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा है। पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यह अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, अफ्रीकावासी, आस्ट्रेलियावासी तथा एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के ईसाई प्रेम के शिकार हुए हैं, जिनके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का क्षरण, सामाजिक संस्थाओं का तथा ईसाई प्रेम के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन पद्धति का विनाश, शराबखोरी, यौन रोगों व व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, आदि-आदि।

एच.जी. वैल्स ने ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वेक्षण करते हुए लिखा है, 'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है, जो क्रॉस पर मर गया। इस पर उसके मित्र ने व्यंग्य करते हुए टिप्पणी की कि वह भी ईसाई कहां था? वह तो स्वयं यहूदी ही था।

लोकमान्य तिलक ने ईसा के महान शिष्य संत पाल को अपने 'गीता रहस्य' में उद्धृत किया है। वह भी ईश्वर से कहता है यदि मैं असत्य भाषण द्वारा तुम्हारी (ईश्वर की) महिमा की वृद्धि करता हूं, तो पाप कैसे हो सकता है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उनके इस वक्तव्य का वर्तमान ईसाई पंथ प्रचारकों ने अपने कुचक्रों को आगे बढ़ाने में पूर्ण उपयोग किया है। यह सच ही कहा गया है कि दुनिया में सच्चा ईसाई केवल एक ही हुआ है और क्रूस पर उसकी मृत्यु हुई।

ईसाई प्रचारकों की गतिविधियां केवल अधार्मिक ही नहीं राष्ट्र विरोधी भी हैं। एक बार गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकरजी) ने एक ईसाई पंथ प्रचारक से प्रश्न किया कि वे हमारे पवित्र ग्रंथों और देवी-देवताओं की निंदा क्यों

करते हैं? उसने स्पष्ट उत्तर दिया—'हमारा लक्ष्य है कि हिन्दू के हृदय से उसके धर्म के प्रति विश्वास को हटाकर बाहर कर दिया जाए। जब उसका यह विश्वास ध्वस्त हो जाएगा, तब उसका राष्ट्रत्व भी नष्ट कर दिया जाएगा। उसके मस्तिष्क में एक रिक्तता उत्पन्न हो जाएगी, तब हमारे लिए उस रिक्तता को ईसाइयत से भरना सरल हो जाएगा।

धर्म की जो परिकल्पना ईसाई प्रचारकों द्वारा प्रचारिता की जाती है, वह सचमुच आश्चर्यकारक है। गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवरकरजी) एक बार एक ईसाई प्रचारक से मिले। उसने इंग्लैण्ड के एक आर्कविशप द्वारा लिखी गई एक पुस्तक दी और कहा कि इस पुस्तक द्वारा आपको हमारे कार्य की प्रकृति के विषय में स्पष्ट ज्ञान हो जाएगा। उन्होंने पुस्तक पढ़कर लौटाई तो उसने अत्यन्त उत्साह पूर्वक पूछा कि पुस्तक कैसी थी, उन्होंने उत्तर दिया—यदि तुम्हारा आर्कविशप ऐसा है तो तुम क्या होंगे? वह इस बात से चौंका। उन्होंने उस पुस्तक के कुछ अंश उसे दिखाए जिनमें लिखा था कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए इतना ही पर्याप्त है कि प्रतिदिन दो बार प्रार्थना की जाए और रविवार को गिरजाघर में जाया जाए। शेष समय सभी प्रकार के शारीरिक आनन्द एवं भोगों का सेवन करने में कोई हानि नहीं है। सत्य यह है कि ये शब्द ईसा के उपदेशों के नितान्त विपरीत हैं। गुरुजी का बाइबिल का अच्छा अध्ययन था।

चर्च के इतिहास में दिवंगत पोप जॉन पाल द्वितीय वे अब तक चर्च द्वारा किए गए कम से कम 98 पुराने अपराधों के लिए कूटनीतिक के तौर पर क्षमा-याचना की। ताकि ईसाइयों की गतिविधियां अबाध रीति से चलती रहे। ये सारी कूटनीति क्षमायाचनायें हैं जिससे ईसाइयों के प्रति रोष समाप्त हो जाए या कम हो जाए और उनकी गतिविधियां बदले हुए परिवेस में बदली हुई तकनीकी से चलती रहे अबाध गति से। भारत में ऐसी कोई क्षमायाचना नहीं की, ऐसी कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई क्योंकि यहां तो सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी, प्रगतिवादी राज-नेताओं का पूरा जमात इसके साथ खड़ा है सहयोग के लिए। 13 फरवरी, 2008 को आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री केविन खड़ेन, आस्ट्रेलिया की संसद के अन्दर सारे पापों के लिये जो सारे आस्ट्रेलियाई पुराने एबोरिझनल्स जोन है उसके पुराने मूल निवासी थे, जिनकी विशेष पहचान थी, जिनकी विशेष संस्कृति थी, विशेष पूजा पद्धति थी, उसको नष्ट कर उनको मारकर उनकी जगह स्वयं बस गये थे, जो आज एबोरिझनल्स के वंशज हैं उनसे क्षमा मांगी। एक-एक बात के लिये कि हमने आपकी संस्कृति, परम्परा एवं परिवारों को नष्ट किया। यह एक काला अध्याय है। मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। भविष्य में ये कभी नहीं होगा। यही कारण है कि अपने देश में और अन्यत्र भी ईसाई मिशनरियों की वही पुरानी गतिविधियां

परिवर्तित रूप से चालू हैं। इसलाम का इतिहास भी कम दर्दनाक नहीं। उन्होंने गैर मुस्लिम (काफिर) देश के विरुद्ध जिहाद बोलकर भयंकर रक्तपात किये। नारी जाति का घोर अपमान किया। धन और इज्जत को लूटा। नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में चुनवाया। विधर्मियों की आँखें निकलवायी, बोटी-बोटी नुचवायी, आरे से चिरवाया, चर्खियों पर कटवाया, दो-दो पैसों में सिर बिकवाये, जलते हुए तवों पर जलवाया, उबलती हुई देग में जलवाया, खून के खांखरे जलवाये, मन्दिरों-मठों को तोड़ा, पुस्तकालयों-विश्वविद्यालयों को जलाया, देव प्रतिमाओं को अपने शौचालयों में औंधे मुख लगवाया। दुर्लभ ग्रंथों को जलाकर अपने हमाम गर्म करवाये और देश के नर-नारियों को विदेश में गुलाम बनाकर बेचा। यह सब दुर्भाग्य से धर्म के विस्तार के लिए घोर अधर्म होते रहे। और आज भी यथावत जारी है।

ईसाइयत की इन सब असंगत, अनर्गल, बचकानी हास्यास्पद बातों ने केवल मानव जाति को ही नहीं, नारी जाति को ही नहीं, केवल जीव जगत् को नहीं पूरे चराचर जगत् को कितना त्रास दिया। हजारों वैज्ञानिकों को त्रास दिया, निर्मम ढंग से वध किया। जिसने ज्ञान-विज्ञान की धारा को, विकास की धारा को सदियों तक अवरुद्ध कर रखा था। बाइबिल से स्वतंत्र एवं चर्च से मुक्त होकर चिन्तन की कल्पना भी घोर अपराध था। इसके विरोध में जब पश्चिम में प्रबुद्ध लोगों में आत्ममंथन की प्रक्रिया चली तब ईसाइयत के प्रति मोहभंग हुआ। और धर्म के नाम पर वे ईसाइयत को ही, सेमिटिक परम्परा को ही जानते थे इसलिए उनमें धर्म के प्रति अनास्था उत्पन्न हो गयी। फयूरबाख, मार्क्स, नीत्शे, फ्रायड, बर्टेंड रसेल आदि सब ईसाइयत या सेमिटिक परम्परा को ही जानते थे। इनकी विकृत मान्यताओं और क्रियान्वयन की बीभत्सता से इन्हें धर्म और ईश्वर के नाम पर Allergy हो गयी। फिर ईसाइयत के पीछे न कोई दार्शनिक आधार था, न बौद्धिक-वैज्ञानिक तथ्य। किसी भी आधार को न पाकर यह परिणाम निकाला कि ईसाइयत का प्रारम्भ मात्र कपोल कल्पना से हुआ है।

और इसलाम में अभी भी इतनी कट्टरता है, उन्माद है कि अभी तक विधिवत आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारंभ ही नहीं हुई। आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारंभ होते ही उनके विरुद्ध मौत का फतवा जारी हो जाता है। मौत के फतवे के अलावा उनके पास बचाव का और कोई उपाय नहीं है। इससे इनका खोखलापन स्वतः स्पष्ट है। और इस आधार पर बहुत समय तक बचाव नहीं हो पायेगा। जिस दिन विधिवत इसलाम में आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी इनकी भी स्थिति ईसाइयत की तरह होगी। इसको कोई रोक नहीं सकता।

साम्यवाद भी अपने ही घर में प्रकृति के विरुद्ध विचार होने के कारण ढह गया। भौतिक आधार पर कभी समता स्थापित नहीं हो सकती। वह जब भी होगी

तो आध्यात्मिक आधार पर, आत्मिक आधार पर, वैदान्तिक आधार पर ही होगी। सृष्टि ही विषमता में होती है और विषमता पर्यन्त ही रहती है। सभी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। पर सबमें चेतन तत्त्व, आत्मतत्त्व एक ही है। अतः आत्मिक आधार पर ही समता स्थापित हो सकती है, भौतिक आधार पर कभी नहीं।

मार्क्स की मूलभूत तीन मान्यतायें हैं—सभी मनुष्य जन्म से स्वार्थी हैं, मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य (Sole Goal) अर्थ की प्राप्ति ही है और अर्थ के व्यापार में नैतिकता का दखल नहीं होना चाहिये। फिर मार्क्स यह कल्पना करता है—सभी अपनी योग्यता के अनुसार समाज को अपनी सेवा देंगे और आवश्यकतानुसार समाज से अपना योगक्षेम प्राप्त करेंगे।

यह भौतिक आधार पर कभी सम्भव नहीं है। क्योंकि भौतिकता में श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं बचता। यह चेतना के विस्तार से सम्भव होता है। हमारी चेतना का विस्तार अपने परिवार तक होता है। अतः परिवार में प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार परिवार को सेवा देता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे योगक्षेम प्राप्त करता है। ऐसे ही जिसकी चेतना का विस्तार समाज तक है तो वह समाज के प्रति, जिसकी चेतना का विस्तार राष्ट्र तक है, तो वह राष्ट्र के प्रति और जिसकी चेतना का विस्तार सारे चराचर जगत् के प्रति है तो उसके सारे क्रियाकलाप उसको केन्द्र करके होंगे। पर मार्क्स चेतन तत्त्व को, आत्मा या ईश्वर को मानता ही नहीं है। चेतना का विस्तार तो धर्म के आधार पर, चरित्र के आधार पर होता है इन सबका साम्यवादी दर्शन में कोई स्थान ही नहीं है। यदि कोई ईश्वर है तो बदमाश, उचक्के का नाम है। धर्म अफीम है। नैतिकता, सदाचार आदि पुराने जमाने के बाट हैं। न कर्मफल सिद्धान्त है न पुनर्जन्म। यही प्रथम और अन्तिम जन्म है। सज्जन और दुर्जन को शेष में मरकर मिट्टी में ही मिल जाना है तब क्यों स्वार्थ त्यागकर सदाचरण करें? यही कारण है कि यह धारा स्वपोषक, स्वजनपोषक और परपीड़क बनकर अपने घर में ही ढह गयी। आज कम्यूनिज्म का वैचारिक आधार प्रायः समाप्त हो गया है फिर भी भारत में टिके हुए हैं तो आतंक एवं शासन के बल पर ही। और अपने देश में प्रारम्भ से ही कम्युनिस्टों की दोगली भूमिका रही है। मार्क्स ने तो सेमिटिक परम्परा (ईसाई व इसलाम) के धर्म का खण्डन किया था। हिन्दू धर्म से तो वह परिचित ही नहीं था। तब उसके खण्डन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पर कम्युनिस्टों की यहां भूमिका विपरीत रही है। वे प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के कट्टर शत्रु और ईसाई-इसलाम के समर्थन में प्रारम्भ से आज तक खड़े हैं। मुस्लिम लीग की हर राष्ट्र विरोधी कार्यों के समर्थक और उसको वैचारिक आधार प्रदान करने वाले रहे

हैं। भगवाकरण का अर्थ समझे बिना देश का भगवाकरण हो रहा है, इसका शोर मचाने वाले रहे हैं। समझ में नहीं आता भारत देश में भगवाकरण नहीं हो तो क्या होगा? भारत का भारतीयकरण हिन्दुस्तान का हिन्दूकरण नहीं तो क्या होगा? हिन्दू में भारत में उत्पन्न सभी मत-पंथ आते हैं। भारत को एक सनातन राष्ट्र न मानकर भारत में 18 भाषा के आधार पर 18 राष्ट्र मानते रहे हैं। प्रचारित करते रहे हैं। कुछ की विवेक की दृष्टि खुली रहती है। उन्हें भूल का एहसास हुआ स्वीकार किया तो उनको ही उन्होंने अपनी पार्टी से निष्कासित कर दिया। उदाहरणार्थ—

नवम्बर, 1985 में कम्युनिस्ट पार्टी के नेता और केरल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री ने मलयाली पत्रिका 'कैरियर' में एक लेख लिखकर राष्ट्रीयत्व के विषय में अपने संशोधित विचार रखे। अच्युत मेनन लिखते हैं—'जिस समय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई उस समय हमने कहा था कि भारत एक राष्ट्र कभी नहीं रहा। क्योंकि यहां राजनीतिक एकता नहीं थी। यह हिन्दुस्तान एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा वह कहना गलत था। अब हमें यह अनुभव होने लगा है कि भारत एक राष्ट्र ही है। यहां राजनीतिक एकता भले न रही हो किन्तु सांस्कृतिक एकता थी। यहां अलग-अलग भाषायें थी, इसलिए अलग-अलग राष्ट्र थे ऐसा भी हमने सोचा। लेकिन अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है कि अलग-अलग भाषायें रहते हुए भी सांस्कृतिक एकता यहां रही है और अगर यह सांस्कृतिक एकता न होती तो क्या केरल से निकलकर आदि-शंकराचार्य सारे भारत में भ्रमण करते और हिन्दुस्तान के चार कोनों में चार मठों की स्थापना करते? यदि सांस्कृतिक एकता न होती तो चार मठों की स्थापना न की गयी होती। और अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है जिसको हम तीर्थक्षेत्र कहते हैं वे वास्तव में राष्ट्रीय एकात्मता के केन्द्र हैं। किसी भी हिन्दू सम्प्रदाय के तीर्थ में चले जायें वहां पूरे भारत के हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व मिलेगा। सांस्कृतिक एकता पर आधृत यहां के राष्ट्रीयत्व का आधार यदि कोई हो सकता है तो यह हिन्दू धर्म (फेथ) ही हो सकता है। हिन्दू धर्म की अपनी कल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं हिन्दू मजहब की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे हिन्दू धर्म में केवल वैदिक (लोग) ही नहीं जैन और बौद्ध, सिख, शैव, शाक्त, वैष्णव लिंगायत आदि भारत में उत्पन्न सभी मतों-पंथों के सभी लोग आते हैं।

आज रूस (सोवियत संघ) के 17 टुकड़े हो गये हैं पर जब गोर्बोचेव रूस के राष्ट्रपति थे, तब रूस विघटन की स्थिति में था कई टुकड़ों में विभक्त होने की आशंका थी, इसके लिये आन्दोलन चल रहे थे। इसलिए गोर्बोचेव बड़े उदास, निराश थे। उस समय इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री थैचर रूस की यात्रा पर आयी हुई थी। इस विषय पर चर्चा होने से थैचर ने हंसते हुए उनसे कहा, कि कमाल है ऐसे समय में आप अपने परममित्र भारत से सलाह क्यों नहीं लेते, जो इतने हजारों साल से

इतने राज्य, इतनी जातियां, इतनी बोलियां, इतने सम्प्रदाय, इतनी विविधताओं के होते हुए भी उन सबको जोड़कर चल रहा है। स्पष्ट है इतनी विविधता के होते हुए भी भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक बना हुआ रहा है।

पश्चिम में ईसाइयत की प्रतिक्रिया में धर्म और ईश्वर को तिरस्कृत कर भोगवादी, उपभोक्तावादी और बाजारवादी सभ्यता को जन्म दिया गया। जिससे जीवन के बहिर्मुखी विकास के लिये अहर्निश कर्म की प्रेरणा देकर भौतिक प्रगति का जैसा उद्‌भव हुआ जो शायद इससे पूर्व कभी सम्भव नहीं हुआ। पर यह प्रगति हुई अन्तर्जीवन को खोखला करके। समाज जीवन, परिवार जीवन को प्रायः नष्ट करके। अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं यथा अन्न, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश (ओजोन परत में छेद करके) को प्रदूषित कर अपने अस्तित्व के लिये संकट खड़ा कर लिया है। अतः यह विकास नहीं सर्वनाश की स्थिति है। यह कृत्य उस मूर्ख की तरह है जो वृक्ष की जिस डाल पर बैठा है उसे ही काटने में अपनी शैखी बघार रहा है। इस प्रकार यूरोपियन सभ्यता के अवसान की, पतन की घोषणा स्वयं उनके ही मनीषी दशकों से करते आ रहे हैं। सावधान करते आ रहे हैं।

स्पष्ट है विकृत अध्यात्मवाद (सेमिटिक परम्परा उसमें विशेषकर इसलाम और ईसाइयत) साम्यवाद, ईसाइयत की प्रतिक्रिया में उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति मानव को सुख-शांति, स्वस्थ दृष्टि देने में असमर्थ सिद्ध हुई है। फलतः पश्चिम के श्रेष्ठ मनीषियों की दृष्टि भारत पर है। जो पूरे विश्व का विचार करते हैं। पश्चिम में भी दोनों वर्ग हैं। एक तो अपने हित में भारत सहित सारी दुनिया का शोषण करना चाहता है, भारत को अपना बाजार बनाये रखना चाहता है। इसके लिये भारत को दुर्बल बनाये रखने के लिये नानाविध षड्यंत्रों में लिप्त है। दूसरे वहां के श्रेष्ठ मनीषी जो सारी दुनिया की हित चिंता करते हैं उनकी दृष्टि भारत पर है। नवीन भारत पर नहीं जो कि स्वयं पथच्युत है, भग्न और भ्रष्ट है। उनकी दृष्टि प्राचीन भारत पर, वैदिक भारत पर है। वैदान्तिक, औपनिषदिक, गीतोक्त भारत पर है जो अमर भारत है, शाश्वत भारत है। सारे विश्व को राह दिखा सकता है। प्राचीन भारत की, वैदान्तिक भारत की सत्यता निरन्तर पुरातात्त्विक आधार पर भी और नवीनतम वैज्ञानिक अन्वेषणों के द्वारा और भी अधिक पुष्ट होती जा रही है। पहले वे भारत की प्राचीनता को स्वीकारने के लिये तैयार नहीं थे, परन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने और सरस्वती नदी के अन्वेषण ने भारत की प्राचीनता और विस्तार को मानने के लिए बाध्य कर दिया।

पुराणों को Mythology के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ। पर पुराणों के आधार पर नील नदी के स्रोत का पता लगने पर पुराणों की सत्यता मानने के लिए बाध्य हुए हैं।

राम और कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता को मानने के लिये भी तैयार नहीं थे। रामसेतु के प्रकटन से राम की ऐतिहासिकता और प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो गई। और समुद्र के गर्भ से द्वारिका के प्रकटन से स्वयं कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता सिद्ध हो गई। और जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है वह वैदान्तिक निष्कर्षों के समीप पहुंचता जा रहा है। जिस भारतीय कालगणना की पहले हंसी उड़ाई जाती थी वह सत्य सिद्ध हो गई और उनकी कालगणना Religion Myth सिद्ध हो रही है। पश्चिम ने भौतिक क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में जो भी जय यात्रा की है वह ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ही की है। जब तक पश्चिम ईसाइयत के चंगुल में था तब तक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग, अज्ञान का युग माना जाता है और अरब के माध्यम से भारतीय एवं यूनानी ज्ञान-विज्ञान से परिचित होकर ही तथा एशिया की लूट से उनकी जय यात्रा, विकास यात्रा सम्भव हो पाती है। पर स्वस्थ दृष्टि के अभाव में यह जय यात्रा सर्वनाश की यात्रा, मानव समाज के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगता जा रहा है। पश्चिम की मात्र 300 वर्ष की इस विकास यात्रा ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया जबकि भारत के हजारों-लाखों वर्ष की उत्थान-पतन की यात्रा में ऐसा प्रश्नचिह्न कभी नहीं खड़ा हुआ।

इसलिए विश्व मनीषा की दृष्टि भारत पर है। आज हिन्दू धर्म विश्व की मांग बनता जा रहा है। और इस मांग की पूर्ति करना हमारा दायित्व है। आज वे योग को स्वीकार कर रहे हैं, आयुर्वेद को स्वीकार रहे हैं, दीपावली उत्सव को, हिन्दू विवाह पद्धति को स्वीकार रहे हैं, उनकी संसद वेदमंत्रों से प्रारम्भ हो रही है। जब स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना से एक संवाददाता ने पूछा 'आपकी अब इच्छा क्या है? अगला जीवन किस प्रकार बिताना चाहती हैं?' स्वेतलाना ने कहा कि मैं गंगाजी के किनारे कुटिया बनाकर मनःशान्ति के साथ जीवन बिताना चाहती हूं। ऐसी इच्छा स्टालिन की पुत्री प्रकट करती है।

अमरीका के पूंजीपतियों में जो शिखर पर थे उनमें हेनरी फोर्ड नाम आता है। फोर्ड परिवार अभी भी वहां के बड़े पूंजीपतियों में गिना जाता है। उनके प्रपौत्र अलफ्रेड फोर्ड भगवान कृष्ण के भक्त बन गये। वे हिन्दुस्तान में आये थे। यहां कुछ पत्रकारों ने उनको घेर लिया। यहां के प्रगतिशील लोगों को इस बात का बड़ा दुःख था कि ये भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति जैसे प्रतिगामी विचार में कैसे फंस गया। पत्रकारों ने उनसे प्रश्न किया कि 'आप यदि कृष्ण भक्ति में लग गये तो आपकी सम्पति का क्या होगा? फोर्ड ने उत्तर दिया Wealth? Whose Wealth? All wealth belongs to lord krishna. कोलकाता के प्रगतिशील पत्रकारों को बड़ा दुःख हुआ।

सम्पूर्ण दुनिया के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन करने वाले अर्नाल्ड टायनबी ने अट्ठाइस (28) विश्व संस्कृतियों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष

निकाला था वक्तव्य दिया था कि इसके पश्चात् मानवता का मार्गदर्शन करने का दायित्व भारत को उठाना पड़ेगा। न्यूक्लियर शस्त्रों के भण्डार के कारण, अन्न की कमी के कारण सारी दुनिया को बचाने का काम केवल भारत कर सकता है। उन्होंने कहा कि 'आज भारत में तरह-तरह के संकट हैं। दुनिया में जितने भी तरह के संघर्ष हैं विभेद हैं वे सब तरह के संघर्ष और विभेद भारत में मौजूद हैं। किन्तु इन सारे संकटों से ग्रस्त होते हुए भी मैं यह जानता हूं कि भारत में जो एक बात है वह अन्य किसी भी देश में नहीं है। भारत को प्राचीन संस्कृति की यह देन मिली है। वह है Unity in the midst of diversity विविधता के अन्तर्गत बहता हुआ एकात्मता का प्रवाह। उसका साक्षात्कार करने की क्षमता संस्कृति के नाते भारत को प्राप्त हुई है। यह देन और किसी भी देश को प्राप्त नहीं है? इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि इस सांस्कृतिक देन के कारण इस परम्परागत प्रवाह के कारण भारत अपने समस्त संघर्षों एवं अन्तर्भूत विभेदों पर विजय प्राप्त करेगा। वह एक आदर्श समाज निर्माण करेगा और इस समाज रचना के निर्माण के पश्चात् किस तरह विभेदों से रचना की जा सकती है—यह भारत से सीखने का अवसर दुनिया को मिलेगा। भारत में विश्व को दिशा देने की क्षमता है। यह बात अर्नाल्ड टायनबी कहता है। और अब यह बात सत्य होती-सी प्रतीत होती है तभी तो वर्तमान विश्व के श्रेष्ठतम उद्यमी स्टीव जॉब्स ने स्वीकार किया कि भारत की संस्कृति में अवगाहन के पश्चात् उनके जीवन में चामत्कारिक परिवर्तन आया। स्टीव जॉब्स कहते हैं मैं एनलाइटनमेंट के विचार की तरफ आकर्षित था और यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि मैं कौन हूं और मेरी जिन्दगी का मकसद क्या है। वह भारत के गांव-देहातों में सात महीनों तक भटकता रहा। इस छोटी-सी यात्रा में स्टीव जॉब्स भारत से जो लेकर लौटे, उसने उनकी जिन्दगी बदल दी। यह थी इंट्यूशन या अंतर्ज्ञान की ताकत। वह पश्चिमी विचारों और संस्कारों में पले-बढ़े थे। इसमें प्रमुखता दी जाती है तर्क और बुद्धि को। हर चीज का कारण और प्रभाव होता है। पश्चिमी बुद्धि कारण और प्रभाव से हर घटना को समझने की कोशिश करती है। इंट्यूशन इससे अलग अपने भीतर झांकने की ताकत है। स्टीव कहते हैं पश्चिम का तार्किक विचार जन्मजात मानवीय गुण नहीं है। पर भारत के गांव के लोगों को इसे सीखना नहीं पड़ता। वे जो सीखते हैं जो एक अर्थ में मूल्यवान है और दूसरे अर्थ में नहीं भी। यही इंट्यूशन की ताकत है। यही अनुभव से प्राप्त बुद्धिमत्ता है। भारत के गांवों ने उन्हें इंट्यूशन की ताकत ही नहीं दी, इसकी रोशनी में 'पश्चिम दुनिया के पागलपन' को देखने की शक्ति भी दी।

यह शक्ति जीवन भर स्टीव जॉब्स के साथ रही। आईपॉड से लेकर आईफोन तक जितने नये युगांतरकारी आविष्कार स्टीव कर सके, उनके पीछे पश्चिम के तार्किक विचार की बजाय इंट्यूशन की ताकत थी।

इस प्रकार स्टीव ने भारत आकर अंतर्ज्ञान की शक्ति को पहचाना, इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि उन्होंने अपने काम और जीवन में उसका सफल प्रयोग किया।

एक समय कहा जाता था—'सब सड़कें रोम को ले जाती हैं। वह समय था पूरे यूरोप पर रोम का एकछत्र राज्य था। उसकी राजधानी रोम—सभ्यता, साहित्य, कला, संस्कृति एवं सैन्य शक्ति का केन्द्र थी। इसलिए पूरा यूरोप रोम की ओर देखता था और 'सभी सड़कें रोम की ओर जाती हैं, ऐसा कहा जाता था। फिर कालान्तर में, औपनिवेशिक काल में इंग्लैण्ड दुनिया के मानचित्र पर छा गया और कहा जाने लगा कि अंग्रेजी राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। पर द्वितीय विश्वयुद्ध में उसकी भी कमर टूट गयी और फिर रूस के विघटन के बाद अब अमेरीका ने वही स्थान प्राप्त कर लिया है जो कभी रोम और लंदन का होता था। आज अमेरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश है। अब अमरीका भी लड़खड़ा रहा है अब वही स्थान सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भारत लेता जा रहा है तभी तो आज अमरीका के एक-तिहाई लोगों की आस्था हिन्दू धर्म में है वे कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास करने लगे हैं, मृतक का दाह संस्कार करने लगे हैं। अब वे केवल ईसाई मत सच्चा है और अन्य मत झूठे हैं यह स्वीकार नहीं करते। वरन् यह मानने लगे हैं सत्य तो एक है जिसे विद्वान् लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं। और उसे पाने के अनेक मार्ग हैं। ऐसी सर्वे की रिपोर्ट छप रही है। आज वे संस्कृत भाषा को अपना रहे हैं, गीता को अपना रहे हैं। अमरीकी मतान्तरण करके हिन्दू नहीं बन गये हैं, किन्तु अपनी आस्थाओं, विचारों और व्यवहार में हिन्दुओं जैसे हो गये हैं। पर बड़े दुःख की बात है कि अपने ही देश के संविधान में हिन्दू धर्म और संस्कृति को संरक्षण प्राप्त नहीं है। जबकि इसलाम और ईसाइयत को विधिवत संरक्षण प्राप्त है जो ईसाइयत स्वयं यूरोप में तिरस्कृत हो गयी है और निरन्तर होती जा रही है। वहां इंग्लैण्ड का राष्ट्राध्यक्ष ईसाई होता है और ईसाइयत को वैधानिक संरक्षण प्राप्त है। यही स्थिति यूरोप के अन्य देशों में है। पर बड़ी विचित्र बात है कि जो हिन्दू धर्म विश्व की आशा है उसे अपने ही देश में संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं है।

विकास सीधी रेखा में नहीं चलता। यह चक्राकार चलता है। इसमें उत्थान और पतन के दौर आते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति जीवन में, परिवार जीवन में, समाज जीवन में उत्थान और पतन के दौर आते हैं वैसे ही राष्ट्र जीवन में उत्थान और पतन के दौर आते हैं। तो काल के प्रवाह से कुछ गर्द उस पर अवश्य आ गई है। समाज जीवन में कुछ अंधविश्वास, गलत रूढ़ियां अवश्य जुड़ गयी हैं, पर ये सब ऊपर-ऊपर ही हैं। अन्दर में मूल सुरक्षित है। अतः गर्द हटाते ही उसका मूल स्वरूप प्रकाश में आ जायेगा। जिससे न केवल भारत वरन् पूरा विश्व ही नहीं

चराचर जगत् आलोकित हो उठेगा। जबकि सेमिटिक परम्परा के मूल में विकृतियां ही विकृतियां, त्रुटियां ही त्रुटियां, पैशाचिकता ही पैशाचिकता भरी हुई हैं। अतः कोई कितना भी लीपापोती करे काम बनने वाला नहीं है। यही कारण है कि वह अपने जन्म के लग्न काल से आज तक सारे विश्व ही नहीं चराचर जगत् को त्रास देता आ रहा है। क्यों नहीं इस पर कोई आयोग गठित होता है जो यह विचारे कि उसके अपने सन्दर्भ में और विश्व के अन्य देशों के सन्दर्भ में उसका अवदान क्या रहा है?

पश्चिम में मार्क्स, फ्रायड, नीत्शे, बर्ट्रेंड रसेल, फयूरबाख आदि ने जो धर्म की आलोचना की है वह सेमिटिक परम्परा की, की है। वे हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति से परिचित ही नहीं थे। सेमिटिक परम्परा में जो Personal God की अवधारणा है, गांधीजी के शब्दों में King like God की अवधारणा जो भीषण रूप से राग-द्वेष, ईर्ष्या से ग्रस्त है, जिसकी मुंहलगी जातियां, देश, उम्मा, चर्च हैं और उनके प्रति वचनबद्धता है, समझौता है। जिनकी स्वयं की रुचि नृशंसतापरायण है। ऐसा ईश्वर हमारा आदर्श कैसे हो सकता है? यह तो खण्डन योग्य ही है। ऐसे ईश्वर के स्वरूप के कारण उन्हें धर्म के नाम से ही, ईश्वर के नाम से ही अरुचि हो गई और हिन्दुओं में जो धर्म की, ईश्वर की अवधारणा थी उससे वे परिचित नहीं थे। पर जैसे-जैसे उनका हिन्दू धर्म, हिन्दू ईश्वर, हिन्दू सभ्यता-संस्कृति से परिचय हुआ, वे इसके प्रशंसक बने। इम्यानुल कांट की गणना दुनिया के अजर-अमर दार्शनिकों में है। प्रशा के कानिग्सवर्ग नामक नगर में सन् 1724 में एक गरीब परिवार में मोची के घर में उनका जन्म हुआ था। उसकी मां बड़ी धर्मनिष्ठ थी। वह पाइटिस्ट सम्प्रदाय की अनुगामिनी थी जिसमें सदाचार और नैतिकता को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता था। किन्तु 'पाइटिस्ट' सम्प्रदाय में संयम एवं अनुशासन के नियम बड़े कड़े थे। बालक कांट इसी सांचे में ढला था—माता के मार्गदर्शन में उसकी संकल्प शक्ति और आचरण-बुद्धि फौलाद की दृढ़ता में परिणत होती रही।

माता के साथ कांट प्रतिदिन दोनों समय चर्च जाता था। और अपनी दैनिक-चर्या का काफी समय पादरियों के धर्मोपाख्यान सुनने में बिताता था। किन्तु माता की ईश्वर निष्ठा का जितना गहरा बीजारोपण उसकी चेतना पर हुआ पादरियों के आचरण से उतनी ही घृणा उसे होने लगी। और इसी विद्रोह के आवेग में एक दिन उसने अपनी माता से कह दिया—प्यारी मां, सैकड़ों-हजारों भयभीत लोगों को पादरियों के सामने घुटने टेक कर पाप मुक्ति का आशीर्वाद प्राप्त करते देख मेरा मन कहता है कि यदि कहीं भगवान के कोप जैसा कोई विधान है तो वह बिजली बनकर गिरे। जिसकी आग में यह चर्च, पादरियों का यह मठ और ये मूढ़ पुजारी जलकर भस्म हो जाएं।

इसी विद्रोह भावना की स्फूर्ति में कांट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'क्रिटिक आव प्योर रीजन, लिखी जिसने विचारों की दुनिया में तहलका मचा दिया। उसके बाद 'क्रिटिक आव प्रैक्टिकल रीजन' प्रकाशित हुआ। सारे यूरोप के मठाधीशों की नींद हराम हो गई। सामंतवाद के किले थरथराने लगे और चर्च की दीवारें लड़खड़ाने लगी।

ये दोनों पुस्तकें ज्ञानयोग पर थी। ज्ञान क्या है? ईश्वर क्या है, धर्म क्या है? इन दोनों पुस्तकों में इन प्रश्नों का जो विवेचन है उससे पाश्चात्य दर्शन की कई स्थापनाओं में आमूल-चूल परिवर्तन हुए। उसने अपने प्रखर आलोचक हाडने को कहा था—मैं दार्शनिक नहीं हूं, मैं एक मामूली प्रोफेसर हूं। किन्तु मैं यह देखकर बेहद पीड़ित हूं कि भय ने मनुष्य को सर्कस का पशु बना कर रखा है। मैं इस भय को मिटाने का बीड़ा उठा चुका हूं। बाइबिल में वर्णित 'पाप का भय' आज के जगत् का सबसे भयंकर भय है। मैं उसको तोड़ दूंगा। मैं मनुष्य को धर्म के भय, पाप के भय, ईश्वर के भय से मुक्त करना चाहता हूं। भय ही वास्तव में पाप का बीज है। मनुष्य और उसकी आत्मा के बीच में भय का पहाड़ ही सबसे बड़ी बाधा है।

वही कांट कहता है गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा मैंने उसे पढ़ा और उसने मुझे आजीवन विस्मित रखा। उसके दर्शन पर गीता के निष्काम कर्मयोग और कर्तव्यवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

पंथों और पैगम्बरों की परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण जो भीषण रक्तपात एवं बर्बर जनसंहार हुए उसी ने कार्लमार्क्स जैसे क्रान्तिद्रष्टा को भी नास्तिक बना दिया।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा था उस समय उसे उपनिषद् का अनुवाद प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर उसे इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया, वह विस्मय विमुग्ध होकर कहता है—'यह अनुपम ग्रंथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो यह विचार हमारे आत्मिक बन्धु के विचार हों। हमारे मनों पर यहूदी संस्कार की जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाये हुए हैं वे उनके स्पर्श मात्र से एकबारगी धुल जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है तथा मृत्युपर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।'

भारत की पराधीनता के काल में भी लंदन के ट्रैफल्गार स्क्वेयर पर खड़े होकर दोनों भुजा उठाकर मैक्समूलर कहा करता था, 'भारत सारे संसार का आध्यात्मिक

पूर्वज है। जिस जाति में राम और कृष्ण पैदा हुए हैं उसे गुलाम बनाना सारी मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना है।'

रोम्यो रोलां प्रथम जीवन में मार्क्सवादी था, उससे मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका। वहां भी संतोष न मिलने पर हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। और उससे समाधान पाकर प्राच्य और पाश्चात्य विशारद रोमां रोलां कहता है कि पचीस साल पहले की बात है। मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा। पादरी प्रवचन पढ़ रहा था—

ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो। अधर्मियों के लिए नरक के द्वार खोल दो। हमारे देश को सुख-सम्पदा से भर दो। हमारे सम्राट् को दिग्विजयी बनाओ....।

आज एक-चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं। उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी आयी और मैं सोचता हूं : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया और सहानुभूति का ईश्वर नहीं है। वह अनन्त प्रेम का ईश्वर नहीं, वरन् वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है, जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हंसी हंसता है।

पिछले पचीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूं और अपनी कल्पना में ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूं जो मनुष्यों के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो। उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शन शास्त्र पढ़े हैं, परन्तु मुझे संतोष नहीं मिला।

हां, हिन्दुओं का वेदान्त पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ और मेरी कल्पना का ईश्वर साकार किया है। हिन्दू दर्शन कहता है—

मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं।

ब्रिटिश आयरिश महिला डॉ. एनीबीसेंट कहती है—दुनिया के महान् धर्मों का 40 वर्षों तक अध्ययन करने के दौरान मुझे इतना पूर्ण, इतना वैज्ञानिक, इतना दार्शनिक और इतना आध्यात्मिक दूसरा कोई धर्म नहीं मिला जितना वह धर्म जिसे हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है। आप इसे जितना अधिक जानेंगे उतना ही अधिक प्यार करेंगे और जितना अधिक समझेंगे उतना ही अधिक आदर करेंगे।

श्री डी.ओ. ब्राउन, 20-2-1884 के डेली ट्रिब्यूशन में लिखते हैं—यदि हम पक्षपात रहित होकर भलीभाँति परीक्षा करें, तो हमें स्वीकारना पड़ेगा कि हिन्दू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं।

अमेरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरवुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों

वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर पर विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा कि ऐसे ईश्वर से कोई धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है, जो हमें कुछ मास या कुछ वर्ष में न्याय तो देता है। यदि किसी आदमी ने आज मुझे चोट मारी है और उसे दण्ड लाखों वर्षों के बाद मिलेगा तो यह घोर अन्याय है। अतः ईशरवुड हिन्दू धर्म के प्रभाव से पुनः अपनी आस्था एवं जीवन बना सका।

काउंट लिओ टाल्सटाय—बौद्धिक ओज से भरपूर, शारीरिक दृष्टि से समकालीन लोगों में स्वस्थ, वेश और प्रतिभा के कारण अत्यन्त प्रतिष्ठित, एक बड़ी जमींदारी के स्वामी, आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त रूसी भाषा के महान् लेखक और विश्व साहित्य के प्रतिष्ठित यशस्वियों में से एक काउंट लिओ टाल्सटाय का बाह्य जीवन समृद्धमय था, पर उन्हें लगा—जीवनधारा रुक-सी गई है।

प्रत्येक प्राणी के लिए और स्वयं उसके लिए भी जीवन में पीड़ा, मृत्यु और निरन्तर क्षय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए निश्चय कर लिया था कि इस भांति वह जीवित नहीं रह सकता। या तो जीवन का कोई अर्थ उसे जानने को मिलना चाहिए, नहीं तो फिर वह अपने-आप को गोली मार लेगा।

इस आन्तरिक संघर्ष ने उन्हें द्रष्टा-चिन्तक, जीवन तत्त्व के सत्य का अन्वेषी बनने को पुनः विवश किया। टाल्सटाय के स्वलिखित कागज में एक 'अज्ञात प्रश्नावली' इस प्रकार से है—

(1) मैं क्यों जी रहा हूं?
(2) मेरे और अन्य सब लोगों के अस्तित्व का कारण क्या है?
(3) मेरे अस्तित्व और दूसरे सारे अस्तित्वों का प्रयोजन क्या है?
(4) मेरे अन्तर में अच्छाई-बुराई का जो विभाजन मैं अनुभव करता हूं इसका अर्थ क्या है और ऐसा क्यों होता है?
(5) मुझे कैसे जीना चाहिए?
(6) मृत्यु क्या है? उससे मैं अपने को कैसे बचा सकता हूं?

इन छह अज्ञात प्रश्नों की खोज के लिए टाल्सटाय दार्शनिकों की ओर झुका—यह जानने के लिए कि मानव जीवन के प्रयोजन के विषय में दार्शनिकों की राय क्या है? हर प्रकार की दार्शनिक पुस्तकें उसने पढ़ना शुरू किया। शोपेनहार, प्लेटो, कांट, पास्कल के दर्शन में उन्हें अपने प्रश्नों का सही उत्तर न मिला। समूचा विज्ञान भी उसके मन को समाधान न दे सका। टाल्सटाय को यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि इन दार्शनिकों ने उन्हीं प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित रूप से दिया है जिसका प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर

जहां निश्चित सुझाव और मार्गदर्शन की आवश्यकता है वहां वे उसे टाल गये हैं। आयु के सातवें दशक के अंत में और अस्सी वर्ष के आरम्भ में भारतीय दर्शन की ओर मुड़े। भारतीय दर्शन के प्राचीन स्मारक वेदों और उपनिषदों व भारत के श्रेष्ठ महाकाव्यों (रामायण और महाभारत, महाभारत में भी गीता उन्हें विशेष महत्त्व की लगी अतः विशेष प्रिय थी) और लोक साहित्यों की ओर जीवन के अंतिम अर्थ और मानव जीवन के लक्ष्य का उत्तर पाने के लिए। तब से मृत्यु पर्यन्त उन्होंने भारतीय संस्कृति की ओर बहुत ध्यान दिया और उसे रूस में लोकप्रिय बनाया। यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि रूसी पाठकों ने भारतीय जनता के प्राचीन ज्ञान और उनके वीरतामय महाकाव्यों को, विशेषकर गीता को प्रेम करना टाल्सटाय के माध्यम से सीखा।

अमेरीका से आये पादरी खेरेण्ड आवर ने पुणे और उसके आस-पास कुछ अशिक्षितों को ईसाई बनाया। एक दिन एक हिन्दू विद्वान ने उनसे प्रश्न किया कि क्या आपने कभी हिन्दू धर्म का अध्ययन किया है? पादरी का उत्तर था, 'नहीं'। तब विद्वान ने आवर साहब से कहा कि हिन्दू धर्म की निन्दा और ईसाई मत की प्रशंसा करने से पहले आप को हिन्दू धर्म का अध्ययन कर लेना चाहिए।

यह बात खेरेण्ड को जंच गयी। संस्कृति और मराठी सीखकर उन्होंने एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्तों के साहित्य का न केवल अध्ययन किया, अपितु उनके जीवन चरित और तत्त्वज्ञान का अंग्रेजी में अनुवाद भी प्रकाशित किया। किन्तु यह सब करते हुए उनका मन बदल गया और उन्होंने अमेरिकी मिशन को जो पत्र लिखा, वह प्रत्येक ईमानदार मिशनरी के लिए ध्यान देने योग्य है।

लिखा, 'भारत ने आज तक हजारों ईसा उत्पन्न किये हैं और भविष्य में भी यहां अनेक ईसा पैदा होंगे। इसलिए भारत में ईसाई मत के प्रचार का कोई प्रयोजन नहीं, उसे सर्वथा बन्द कर देना चाहिए।

भारत तो सत्य और धर्म का अगाध समुद्र है। प्रत्येक ईसाई को अपने मत का प्रचार न कर सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मैं मिशन से त्याग पत्र देता हूं और अपनी आठ लाख की सम्पत्ति, जो अमेरीका में है, पुणे के 'भारतीय इतिहास संशोधन मण्डल को अर्पित करता हूं। इस धन से भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद छपते रहेंगे।'

बर्टेंड रसेल जिन्होंने Why I am not a Christian पुस्तक लिखी। वे कहते हैं उन्हें किसी धर्म को स्वीकारने का कहा जाए तो वे बौद्ध धर्म को स्वीकारेंगे। सन् 1950-52 में एक बार डॉ. राधाकृष्णन् और रसेल में रेडियो वार्ता हुई। पहले रसेल ने 'मैं धर्म को क्यों नहीं स्वीकारता' पर अपनी वार्ता

प्रस्तुत की फिर डॉ. राधाकृष्णन् ने हिन्दू धर्म को परिभाषित कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। उस वार्ता को सुनकर रसेल कहते हैं—धर्म का स्वरूप यह है तो मुझे भी धर्म मान्य है। स्पष्ट है 'ईसाइयत एकमात्र सच्चा Religion है' और 'Personal God की अवधारणा' ने लोगों के जीवन को नरक बना दिया था। इसलिए हर प्रबुद्ध व्यक्ति यूरोप में ईसाइयत के विरोधी हुए यथा—जॉनलेकी, चाहे जॉनलॉक, चाहे आइंस्टाइन, कार्लजुंग, सिंगमंड फ्रायड, नीत्शे, थियोडोर, एडोलमो, ए.जे. अय्यर, अन्ना, अरिन्ट, मैक्स प्लेंक, हुस्सर्ब, मैक्समूलर, फयूरबाख आदि-आदि।

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार, लेखक मार्क तुली ने दार्जिलिंग के वेलहम स्कूल के बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवन-मूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है तब नकली अमरीका बनने की अपेक्षा असली भारत बनना अधिक सातत्यपूर्ण है।

विलियम काँप कहता है—हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीर्घायुता का सर्वप्रथम कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं को व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग-अलग पहचान देने की इसकी योग्यता सम्भवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व है।

भगिनी निवेदिता कहती है—हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

अमरीकी इतिहासकार विल डूरेन्ट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633) 'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख

सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ हैं। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

गाँधीजी का पश्चिमी सभ्यता पर मुख्य आरोप यह है कि वह सुख और समृद्धि के नाम पर व्यक्तियों एवं समाजों में लालच, लिप्सा और अंतहीन भोग-कामना को धधकाती है जिससे विवेक ढक जाता है और शैतानियत जागती है। (पूरा पश्चिम का इतिहास इसका साक्षी है।)

संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

हम सब जानते हैं ग्रामोफोन की रिकॉर्ड प्लेट का आविष्कार थॉमस अल्वा एडीशन ने किया, तो उसमें उस समय किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के बोल सर्वप्रथम रिकॉर्ड करना चाहा, इस दृष्टि से मैक्समूलर से सम्पर्क किया। मैक्समूलर एडीशन का बहुत मान करते थे। इस दृष्टि से एडीशन को जिस समय यूरोप के अधिकांश विद्वान इंग्लैण्ड के सम्मेलन में एकत्रित होने वाले थे, उसमें बुलाया। एडीशन निर्धारित तिथि पर उक्त सम्मेलन में पहुंचे। जहां उनका भव्य स्वागत हुआ। विद्वानों के बीच में एडीशन ने अपने यंत्र में मैक्समूलर को बोलने को कहा। तब मैक्समूलर ने एक वचन कहा। जब कुछ समय बाद उस वचन की पुनः हू-ब-हू आवाज को श्रोतागण सुनकर करतल ध्वनि से स्वागत किया तो इस आवाज के विषय में मैक्समूलर ने स्पष्ट किया कि संस्कृत भाषा में ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है। वेद मानव जाति का प्रथम प्रकाश है, आलोक है, पुस्तक है। यह उस समय की बात है जब यूरोप के लोगों ने बन्दर की पूँछ काटकर मनुष्य बनना नहीं सीखा था, कच्चा मांस खाते थे, अपने तन को पत्तों से ढकते थे। उस प्राचीन काल में भारतीयों ने उच्च सभ्यता का विकास कर लिया था और उन्होंने वेद के रूप में दुनिया को सर्वकल्याणकारी दर्शन उपलब्ध

कराया। मैक्समूलर ने एडीशन से इस रिकॉर्ड को पुनः बजाने का अनुरोध किया। इस बार जब 'अग्निम् इळे पुरोहितम्' की ध्वनि हुई तो वहां उपस्थित समुदाय भारतीय मनीषियों के प्रति श्रद्धा भाव से मौन होकर खड़े हो गये। इस बार करतल ध्वनि के स्थान पर श्रद्धा युक्त शान्ति थी।

जब पिटमैन ने ध्वनि को शब्दों में रूपान्तरित कर शॉर्ट हैंड का आविष्कार किया था, तब उन्होंने माना था कि अपने कार्य के लिए उन्होंने संस्कृत की मदद ली थी।

न्यूजर्सी में स्थापित अमेरीका की सेटन हाल यूनिवर्सिटी जिसमें 10,800 छात्र हैं सभी छात्रों के लिए गीता पढ़ना अनिवार्य कर दिया है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में गीता के मुख्य अंश पाठ्यक्रम में डाले हुए हैं।

आज रूस के राष्ट्रपति मेदवेदेव ओमकार (ॐ) ध्वनि के साथ-साथ राष्ट्रपति पद की शपथ ले रहे हैं।

त्रिनिदाद और टोबैगो की प्रधानमंत्री कमला प्रसाद बिसेसर 26 जून, 2010 को नोस्ली (पोर्ट ऑफ स्पेन) में एक गरिमामय समारोह में, गीता हाथ में लेकर प्रधानमंत्री पद की शपथ लेती है।

जिस संस्कृत भाषा को मृत भाषा घोषित किया था अंग्रेजों ने, किन्तु उसे अब विश्व के वैज्ञानिकों, भाषाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने विश्व की श्रेष्ठ भाषा घोषित किया है तथा विश्व के वैज्ञानिकों की भावी भाषा बतलाया है।

विश्व के 35 देशों के 450 विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन होता है। अमेरीका के विश्वप्रसिद्ध अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र (नासा) के वैज्ञानिक डॉ. रिक ब्रिक ने विधिवत शोध कर निष्कर्ष निकाला है कि संस्कृत संगणक (कम्प्यूटर) के लिए सहज और सर्वशुद्ध भाषा है। केवल संस्कृत ही एकमात्र भाषा है जिसकी ध्वनि हमारे मानवीय स्वर यंत्र के अनुसार है। लेखन और उच्चारण में कोई अन्तर नहीं है। मूल भाषा के नियमों के अन्तर्गत ही लाखों नए शब्द बनाने की सामर्थ्य केवल संस्कृत भाषा में ही है। किसी भी नए उपकरण अथवा वैज्ञानिक विधि का छोटा सारगर्भित नाम देने की सामर्थ्य केवल संस्कृत में है। पांच हजार वर्ष पूर्व गीता में प्रयुक्त संस्कृत भाषा तथा वर्तमान में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। जबकि विश्व की किसी भी भाषा का स्वरूप 100-200 वर्षों के बाद इतना बदल जाता है कि भावी पीढ़ियों को समझने हेतु शब्दकोश तथा भाषा वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है। विश्व की किसी भी भाषा में लिखे वैज्ञानिक साहित्य को एक हजार वर्ष बाद जब अध्येता पढ़ेगा उसे समझने में कठिनाई होगी, यह कठिनाई संस्कृत

भाषा में लिखे साहित्य के साथ होने वाली नहीं है। अनेक समृद्ध क्षेत्रीय भाषाओं के उपरान्त भी बड़े-बड़े भारतीय विद्वानों द्वारा स्थायी प्रकृति का साहित्य संस्कृत भाषा में ही लिखने के कारण इस भाषा का शाश्वत स्वरूप है।

2006 अमेरीका White House में दीपावली मनाई गई जिसमें President बुश को आमंत्रित किया गया और घी के दीये जलाए गए। पूरा White House भगवामय हो गया। लंदन में हाउस ऑफ कामंस में इसे मानव मात्र की सुख-समृद्धि का उत्सव मानकर मनाया जा रहा है। अमरीकी संसद में इस बार (2013 ई.) भी दीपावली मनाई गई।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि की संसद में विगत आठ वर्षों से शानदार ढंग से हिन्दू विधि से हिन्दू पंडित से मंत्रोच्चार करवाकर सरकारी स्तर से दीपावली उत्सव मनाते हैं।

12 जुलाई, 2008, संयुक्त राष्ट्र अमेरीका की सीनेट की बैठक का (कांग्रेस के कार्यक्रम का) हवन से शुभारम्भ हुआ। गीता के श्लोक व वेदमंत्रों का पाठ कश्मीरी पंडित राजन जैद ने सम्पन्न कराया।

10 दिसम्बर को अमेरीका की सबसे बड़ी डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने अधिवेशन का शुभारम्भ उसी प्रकार से किया जिस प्रकार White House में गीता के श्लोकों का पाठ, वेदों की ऋचाओं का पाठ व शान्तिमंत्र के गायन से किया।

यूनेस्को ने वैदिक मंत्रोच्चार की पद्धति को अन्तरराष्ट्रीय धरोहर घोषित किया है।

अमेरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, वर्तमान ओबामा हनुमानजी के भक्त हैं। गले में हनुमान का लॉकेट है।

10 सितम्बर, 2008 (हिन्दुस्तान टाइम्स) जिनेवा में Big Bang theory के अध्ययन को लेकर किए जा रहे प्रयोग धरती के काफी नीचे सुरंग बनायी। उसमें एक विस्फोट करना था। उसमें पूरे विश्व के वैज्ञानिक लगे हैं, जिसमें भारत के 200 वैज्ञानिक हैं। इस संस्था का नाम सी.ई.आर.एन. है। इन वैज्ञानिकों का अधिवेशन हुआ था उसकी अध्यक्षता नटराज की दो मीटर की बड़ी मूर्ति ने की।

बिल क्लिंटन जब राष्ट्रपति थे तो उनके साथ में उपराष्ट्रपति अलगोर थे। इस समय दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग के बारे में सर्वाधिक इनिशिएटिव लेकर प्रचार करने वाला कोई व्यक्ति है तो वह अलगोर हैं। अलगोर उस समय उपराष्ट्रपति थे और वहां पर पृथ्वी सम्मेलन हुआ था। उस पृथ्वी सम्मेलन के उद्घाटन में अलगोर ने एक वाक्य कहा था कि पिछले तीन सौ सालों से हम लोग गलत मार्ग पर चल रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम पुनर्चिन्तन करें और मार्गदर्शन के लिए पूर्व की ओर

मुड़ें। इस समय और इस दिशा में जाना है तो होलिस्टिक थिंकिंग का जो कॉन्सेप्ट, जो मदर अर्थ का कॉन्सेप्ट भारत ने बहुत पहले दिया है, उसे अपनाएं। उस कान्फ्रेंस में अथर्ववेद का जो भूमि सूक्त है वह दुनिया के इकोलोजी के लोगों के लिए मास्टर प्रिन्ट हो सकता है, उसका अंग्रेजी अनुवाद सबको दिया गया। सबने कहा कि इसमें हमने जो कुछ सोचा वह सब कुछ है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। जो परिदृश्य खड़ा हुआ है इसमें आदमी को लगता है कि हमें कहीं इधर आना पड़ेगा।

वैश्विक ताप की समस्या अमेरीका और यूरोपीय देशों की जीवनशैली के कारण ही उत्पन्न हुई है। इसके समाधान के लिए अनेक सम्मेलन हुए, लेकिन कहीं से भी इस समस्या का समाधान नहीं निकल पाया। समाधान के लिए आखिरकार सबने भारतीय चिन्तन दर्शन की ओर देखा। दुनिया के अनेक देशों ने भारतीय चिन्तन दर्शन को विभिन्न समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार किया है।

राजीव गांधी जब प्रधानमंत्री बने और भारत से परिचय कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा, आज दुनिया सर्वनाश की ओर जा रही है, उसे विनाश से बचाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्धान्त, तत्त्व, जीवन-मूल्य भारत ही दे सकता है। इस अवसर पर उन्होंने गीता के दो श्लोक भी कहे—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2/62, गीता

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63, गीता

जिसका अर्थ है कि जब मनुष्य का मन मोह में पड़ जाता है तो वह दानव बन जाता है। गुणों की सम्पत्ति नष्ट करने का प्रयास करता है। सबकी हत्या करने का प्रयास करता है। सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः मन को नियंत्रित करो। यदि मन नियंत्रित रहा तो सब कुछ ठीक रहेगा। यह कार्यक्रम दूरदर्शन में दिखाया गया था।

पश्चिम में परिवार जीवन, समाज जीवन समाप्तप्राय हो गया है। इसके बड़े दुष्परिणाम आ रहे हैं। अनैतिक सम्बन्ध और लावारिस बच्चों की फौज विस्फोटक स्थिति में पहुंच रही है। मार्गरेट थैचर इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री, जब वे प्रधानमंत्री पद से मुक्त हुईं तब एक भारतीय परिवार में एक सप्ताह तक रही। उसने कहा कि आने वाले समय में इंग्लैण्ड के समाज को अगर बचना है तो जितनी जल्दी हो सके भारतीय पारिवारिक मूल्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्लिंटन से लेकर ओबामा तक बिलियन्स डॉलर्स का बजट पारिवारिक जीवन-मूल्यों को पुनः विकसित करने के लिए प्रचार में लगा दिया है। पहले तोड़ा, अब भुगतने लगे, तो फिर से इधर आ रहे हैं।

इंग्लैण्ड में लंदन के मेयर (महापौर) स्वामीनारायण सम्प्रदाय द्वारा बनाए गए मंदिर को देखने गए। मंदिर में भारतीय और पौराणिक पात्रों पर बनी झांकियों को देखा। उसमें प्रह्लाद और ध्रुवजी की भी झांकी थी। उनके दर्शन करते-करते श्रवण कुमार की झांकी के सामने रुक गए। उसे बड़ा विचित्र लगा। एक युवक है, उसके बलिष्ठ कंधे पर एक विचित्र-सी चीज है, कांवड़ के जैसी। और एक बूढ़ा, एक बूढ़ी उसमें बैठे हैं। उसमें एक जवान और बूढ़ा-बुढ़िया से क्या तालमेल है? क्योंकि वहां तो सम्बन्ध रहता नहीं है। तो उसने पूछा कि क्या है यह? उसे बताया कि एक भारतीय पात्र है। एक युवक था, यह उसके मां-बाप हैं, उनकी इच्छा थी तीर्थयात्रा करने की। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए उसने शादी वगैरह नहीं की। पहले यह करूंगा फिर उसके बाद अपना सुख, उनको लेकर सारे भारत में घूमकर यात्रा कराई। वह मेयर कहता है कि क्या यह सम्भव है? कंधे पर लेकर जवान लड़का और जवानी में ऐशो आराम करने के बजाय बूढ़े मां-बाप को ढोकर के ले जा रहा है क्या यह सम्भव है? लौट कर आने के बाद लन्दन की स्कूलों में एक सर्कूलर निकाला कि अपने बच्चों को मंदिर देखने के लिए भेजो कि चरित्र क्या होता है, जीवनमूल्य क्या होता है। इसकी तो हमें जरूरत है? इस प्रकार आज पाश्चात्य जगत् भारतीय पारिवारिक मूल्यों की ओर, जीवनमूल्यों की ओर आकृष्ट हो रहा है।

आज वे भारतीय विवाह पद्धति की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

आज अमेरीका विचारों से हिन्दू होता जा रहा है। ऐसे सर्वे प्रकाश में आ रहे हैं। एक लेख में ऋग्वेद की उस ऋचा का उल्लेख किया गया है जिसमें कहा गया है कि सत्य एक है और विद्वान् इसे कई प्रकार से कहते हैं। इसी तरह हिन्दू मानते हैं कि ईश्वर की ओर जाने के कई रास्ते हो सकते हैं। ईसाइयत और कुरान भी इसमें शामिल है। ऐसा नहीं कि कोई भी रास्ता दूसरे से श्रेष्ठ है। अधिकतर पारम्परिक और रूढिवादी ईसाइयों को इस तरह से सोचने के बारे में नहीं सिखाया जाता है। लेकिन अमेरीका अब पुरानी सोच को छोड़ रहे हैं। 30 फीसदी अमरीकी खुद को धार्मिक के बजाय आध्यात्मिक बताते हैं। आज नासा के वैज्ञानिक कह रहे हैं कि सूर्य रश्मियों से ओम की ध्वनि निकल रही है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील के मुख्य अतिथित्व में चाइना में भगवान बुद्ध के नये भव्य मन्दिर का उद्‌घाटन हुआ। उसमें भगवान बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति प्रतिष्ठित है। और इसमें सारा अर्थ-व्यय जन सहयोग से हुआ है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के द्वितीय चरण में चर्च से प्रेरित रूस में स्थित साइबेरिया के किसी एक लोवर कोर्ट ने गीता को आतंकवादी ग्रंथ घोषित कर

प्रतिबंध लगाने की तैयारी कर ली थी। पर फैसला देने से पूर्व वहां की लोकसभा के सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहा और प्रतिबंध की कड़ी भर्त्सना की। ऐसे व्यक्ति को पागल तक कहा। विश्व के अनेक देशों में गीता के समर्थन में आवाज उठी। भारतीय संसद ने पहली बार सर्व सम्मति से गीता के समर्थन में आवाज उठाई। अतः कोर्ट को गीता के समर्थन में फैसला देना पड़ा। असल में ईसाइयत गीता से भयभीत है, उसे अपने प्रसार में बाधक समझकर के ऐसे ओछे हथकण्डे अपनाती रहती है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में अमेरीका के किसी कोर्ट में चर्च से प्रेरित होकर किसी नागरिक ने योग केन्द्र में होने वाले ओम की ध्वनि के विरुद्ध याचिका दायर की। उसका मन्तव्य था ओम के साथ हिन्दुत्व की सारी बातें आने लगती हैं, इससे सारे अमेरीका में हिन्दुत्व छा जायेगा। कोर्ट ने उसकी याचिका को रद्द कर दिया और 'ओम' ध्वनि में ऐसी किसी आपत्ति को स्वीकार नहीं किया।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में इंडोनेशिया, जो विश्व का सबसे अधिक मुस्लिम जनसंख्या वाला देश है, उसने अमेरीका की राजधानी वाशिंगटन को एक सरस्वती की प्रतिमा भेंट की। यह सुन्दर मूर्ति सोलह फुट ऊँची है और इसमें कमल के पुष्प पर विद्या की देवी सरस्वती खड़ी हैं। विद्या की देवी होने के कारण ही यह प्रतिमा अमेरीका को भेंट की गई है। अमेरीका में इसका सम्मान करते हुए मूर्ति भारतीय दूतावास से कुछ दूरी पर महात्मा गांधी की मूर्ति के सामने स्थापित की गई है। यह महात्मा गांधी की प्रतिमा कुछ वर्ष पूर्व वहां स्थापित की गई थी।

व्हाइट हाउस से कुछ दूरी पर स्थापित यह प्रतिमा औपचारिक उद्घाटन के पूर्व से ही शहरवासियों और टुरिस्टों के आकर्षण का केन्द्र बनी रही।

आज प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी विश्व के नेताओं (राष्ट्रपति और प्रधानमंत्रियों) को गीता भेंट में देते हुए कह रहे हैं भारत के पास इससे बड़ा कोई उपहार नहीं आपको देने के लिए और आपको भी भारत से लेने के लिए इससे बड़ा कोई उपहार नहीं है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रयास से योग को विश्वस्तर पर स्वीकार कर लिया है। पहले ही प्रयास में 177 देशों ने स्वीकारा और 194 देशों ने इस पर दिव्य कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी। 21 जून को विश्व में योग दिवस के रूप में पालन किया जा रहा है। मोदीजी विश्व के साथ भारत का सांस्कृतिक सम्बन्धों को पुनः दृढ़ करने में लगे हुए हैं जिसकी स्वाधीन भारत की उपेक्षा हुई थी।

आदि-शंकराचार्य की जयन्ती पर व्हाइट हाउस अमेरीका में श्री रूद्रम स्तोत्र के पाठ का वाचन जेफ्री अरहार्ड द्वारा शुद्ध व बहुत सुन्दर तरीके से प्रस्तुत हुआ।

आज वे कैमिकल के स्थान पर हरित को तुलसी, आंवला, हलदी, ग्वारपाठा, नीम, शाकाहारी भोजन, अध्यात्म, जीवन-मूल्य, पारिवारिक-मूल्य, हिन्दू त्योहार आदि की तरफ निरन्तर आकृष्ट होती जा रही है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म को पुनः विश्वस्तर पर मान्यता मिलती जा रही है और हिन्दू धर्म से स्वतः आकर्षित होकर विश्ववासी इसे अपनाते जा रहे हैं।

शोपेनहावर एवं गांधीजी की भविष्यवाणी सत्य होती प्रतीत होती है। उन्होंने कहा था—'मैं विश्वास करता हूं कि जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य के अनुशीलन ने पुनर्जागरण किया था, उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य न रहा होगा।' गांधीजी कहते हैं—'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय निष्क्रिय विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।' सारा विश्व निरन्तर इस ओर बढ़ रहा है।

श्री मां कहती हैं—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगद्गुरु है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर ही निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिए।

ऋषि अरविन्द सनातन भारत निर्जीव नहीं है और न उसने अपने अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहे, वह जीवन्त है और उसे अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है।

इस पुस्तक में भारतीय दर्शन परम्परा के कालातीत स्वरूप को, उसके वैज्ञानिक स्वरूप को आज के आधुनिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। कैसे भारतीय दार्शनिक परम्परा चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन, आधुनिक व शाश्वत है। इसी संदर्भ में दर्शन की मूलभूत मान्यताएं क्या है? भारतीय दर्शन की धाराएं कितने प्रकार की हैं, भारतीय दर्शन के मूलभूत प्रश्न क्या हैं? भौतिकवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? द्वैतवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? चेतनवाद क्या है, उसके कितने प्रकार हैं? उसका सबसे उत्कृष्ट, परिपूर्णरूप शंकराचार्य के अद्वैतमत में मिलता है जिसकी ओर वैज्ञानिक जगत् भी झुक रहा है। आकृष्ट हो रहा है। जीवन तत्त्व क्या है, उसका रहस्य क्या है, जीवन तत्त्व की महत्ता क्या है? आत्म तत्त्व क्या है? मृत्यु तत्त्व क्या है, क्या इसकी वास्तविक सत्ता है या मुमुक्षु के लिए एक पड़ाव की तरह है सिद्धि प्राप्त साधक के लिए वास्तविक जीवन तत्त्व की, आत्म तत्त्व की उपलब्धि का अवसर है, प्रभु मिलन की वेला है, मोक्ष का महापर्व है। तत्त्व के प्रति भारतीय और पाश्चात्य अवधारणा में क्या मूलभूत अन्तर है, विकासवाद के संदर्भ में भारतीय

एवं पाश्चात्य अवधारणा में क्या विभेद है? अपरा विद्या, विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टि क्या है? आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की खोज क्या है? और उसके निष्कर्ष कैसे भारतीय दर्शन के, वेदान्त के निकट आते जा रहे हैं। सृष्टि क्या है, उस संदर्भ में वैज्ञानिक खोजों के साथ भारतीय दर्शन से किस प्रकार का सामंजस्य है? पाश्चात्य विज्ञान किन आधारों पर भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है? विश्व की प्राचीन सभ्यताएं क्यों नाश को प्राप्त हुईं और पश्चिम की आधुनिक सभ्यताएं परम वैभव पर होते हुए भी क्यों अवसान पर हैं और भारतीय सभ्यता-संस्कृति सब प्रकार की दुर्भाग्य की ठोकरें खाकर भी क्यों चिरंजीवी बनी हुई है, और भविष्य में विश्व की आशा का केन्द्र क्यों बनती जा रही है? कार्लमार्क्स द्वारा धर्म की आलोचना की समीक्षा सेमेटिक परम्परा पर लागू है, सनातन हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म, आर्य धर्म पर नहीं। वर्तमान आधुनिक मानव समाज की समस्याओं से उबरने के लिए विश्व को और आधुनिक भारत को, भारतीय दर्शन का क्या मार्गदर्शन है, इन सब तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित करने की, विचार करने की आवश्यकता है।

भारतीय दर्शन परम्परा के विषय में जैसे-जैसे विश्वविद्यालय में चुनौती मिलती गयी वैसे-वैसे परम पूज्य स्वर्गीय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से जिज्ञासा करता रहा और उनके चरणों में बैठकर पढ़ता रहा। उनकी व्यस्तता और असमय में दुर्घटना में चले जाने से बहुत से पाठ अधूरे रह गये जो इस प्रकार हैं—द्वैतवाद, कर्मसिद्धान्त, भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान में तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन, सृष्टि रहस्य, हिन्दू एवं ईसाई का तुलनात्मक अध्ययन—जिसे मैंने उनसे प्राप्त दृष्टि के आधार पर बहुत कुछ उन्हीं के शब्दों में पूरा करने का प्रयास किया है। इसमें तीन स्वतंत्र लेख मेरे भी हैं जो उनके चले जाने के बाद लिखे गये हैं। और विषय की स्पष्टता के लिए शामिल किये गये हैं जो इस प्रकार हैं—

1. आधुनिक समय में उपनिषदों का प्रसार यूरोप में
2. पाश्चात्य विज्ञान तीन कारणों से भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है
3. पश्चिमी सभ्यता का बुरा हश्र क्यों?

फिर उनके कुछ भाषणों के सारसंक्षेप, मैंने जो उनसे जिज्ञासाएं की थी, उनका भी सारसंक्षेप और स्फुट विचार भी शामिल किए गए हैं। और जो लेख पूर्व के तीन खण्डों में शामिल होने से रह गये थे उन्हें परिशिष्ट में समाविष्ट किया गया है। पुरुलिया के राजस्थान स्कूल में 'गोस्वामी तुलसीदास' पर भाषण हुआ था, वह भी इसमें शामिल है।

हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है।

डॉ. राधाकृष्णन्

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

पंचम खण्ड की सम्पादकीय

जब मैं नवीं-दसवीं और ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ता था तब स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता, मां शारदा, ऋषि अरविन्द घोष, वारीन्द्र घोष, स्वामी रामतीर्थ, रमण महर्षि, लाल-बाल-पाल, मदनमोहन मालवीयजी, वासुदेव बलवन्त फड़के, रासबिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण, खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, विनय बादल, दिनेश, बाघा जतिन, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, दुर्गा भाभी, भाई परमानन्द, शचीन्द्रनाथ बख्शी, डॉ. हेडगेवार, माधवराव सदाशिव गोलवलकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, दीनदयाल उपाध्याय, वीर सावरकर, महर्षि दयानन्द, मीराबाई, रविदास, सूर, तुलसी, जगदीशचन्द्र बसु, रानी अहल्या बाई, रानी लक्ष्मीबाई, श्री माँ, कस्तूरबा गांधी, महात्मा गांधी आदि के जीवन व साहित्य से मेरा कुछ-कुछ परिचय हो गया था। प्रायः इन सभी की प्रेरणास्रोत गीता देखकर, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में गीता का अविस्मरणीय अवदान देखकर और वैज्ञानिकों में भी गीता के प्रति श्रद्धा देखकर मेरी भी गीता के प्रति श्रद्धा निर्मित हुई। स्वाधीनता संग्राम की दोनों धाराओं-गरम दल लोकमान्य तिलक आदि एवं नरम दल—गांधी, विनोबा आदि के हाथ में गीता; फिर विप्लवी खुदीराम, रामप्रसाद बिस्मिल, सुभाषचन्द्र बोस के हाथ में गीता; संन्यासी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द घोष के हाथ में गीता; गृहस्थों के हाथ में गीता, उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला के हाथ में गीता, शिक्षक व दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् के हाथ में गीता देखकर गीता के प्रति मेरी भी श्रद्धा उपजी।

जब मैं आई.ए. में था तब मेरी भी भावना बनी कि लोकमान्य तिलक-महात्मा (गांधीजी) की तरह मैं भी गीता के श्लोक कंठस्थ कर लूं ताकि अन्दर-ही-अन्दर जीवनपर्यन्त गीता के श्लोकों पर निरन्तर चिन्तन-मनन, निदिध्यासन चलता रहे।

जब मैं दर्शनशास्त्र में एम.ए. कर रहा था तब एक मैडम गीता पढ़ाती थी। वह अक्सर कहती रहती थी—गीता तो बैलगाड़ी के युग में कही गई, आज तो

रॉकेट का युग है। ज्ञान-विज्ञान का युग है। अतः गीता की कोई प्रासंगिकता नहीं रही आज के सन्दर्भ में। इसमें तो केवल पुनरावृत्ति और पुनरावृत्ति मात्र है। गीता तो विज्ञान से, मनोविज्ञान से, विकासवाद से, मार्क्सवाद से, समाजविज्ञान से खण्डित हो जाती है। मैंने विनम्रता से प्रतिवाद किया और कहा—मैडम! मैं तो यह जानता हूं गीता एक पूर्ण दर्शन है जो न विज्ञान से, न मनोविज्ञान से, न ही मार्क्सवाद से खण्डित होती है। वरन् मण्डित होती है। हां, इनमें जो अपूर्णताएं हैं उसको पूर्णता प्रदान करने की क्षमता, मार्गदर्शन करने की क्षमता गीता में है। आप तो विपरीत बात कह रही हैं। वे इसका उत्तर तो दे नहीं पायी। और यह क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। एक दिन संयोगवशात दर्शन विभाग के प्रमुख संस्कृति विहार के डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से मिलने आये और उस समय मैं भी वहां उपस्थित था। मैंने अच्छा अवसर समझकर इस विषय को छेड़ दिया...मैडम गीता के विषय में ऐसी-ऐसी टिप्पणियां करती हैं और डॉ. राधाकृष्णन् की किताब से नोट करवाती हैं। डॉ. राधाकृष्णन् की पुस्तक 25 रु. में मिलती है, तो हमारे क्लास करने की क्या आवश्यकता है? डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी ने भी बताया जब उनकी स्वयं की श्रद्धा गीता पर नहीं है तब वह क्या गीता पढ़ाएंगी? तब हेड ने पूछा आप किनसे गीता पढ़ना चाहते हैं। तब मैंने उनसे निवेदन किया डॉ. विद्यार्थीजी (जो रामानुज सम्प्रदाय में निष्ठा रखने वाले, भारतीय दर्शन, गीता व वेदान्त के अधिकारी विद्वान् थे) से। हेड डॉ. रामाशंकर श्रीवास्तवजी को भी यह बात जंच गई और उसी के अनुसार परिवर्तन कर दिया। तब मैडम ने मुझसे क्लास में कहा—आपका जब जन्म भी नहीं हुआ तब से मैं गीता पढ़ रही हूं।

तब से मुझमें और अधिक सम्यक् रूप से गीता का अध्ययन करने की प्रेरणा जगी। मेरे अनुरोध पर डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी की त्रिदिवसीय-व्याख्यानमाला दर्शन विभाग में हुई। तब से मैं प.पू. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के सान्निध्य में गीता पढ़ने लगा और उससे सम्बन्धित साहित्य जुटाने लगा।

मेरी तो इच्छा थी गीता के प्रत्येक श्लोक को विधिवत पढ़ूं और आज के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं के सन्दर्भ में भी गीता पढ़ूं। पर डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी की व्यस्तता के कारण बहुत बार प्रयास करने पर भी यह सम्भव नहीं हो सका।

तब से अब तक मेरी यह धारणा है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में गीता जैसा कोई ग्रंथ नहीं है और अवतारी पुरुषों में, महापुरुषों में कृष्ण जैसा कोई व्यक्तित्व नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध, साधक, मित्र, सारथि,

सेवक, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूरशिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोकशिक्षक—वे सभी कुछ तो थे! पिछले 5000 वर्षों की गम्भीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उनके बहुरंगी जीवन की अनेकानेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष है।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) कहते हैं विश्वभर में ईश्वर अथवा ईश्वर पुत्रों की जितनी भी परिकल्पनाएं और अवधारणाएं हैं उन सभी में श्रीकृष्ण का स्वरूप सर्वाधिक आह्लादक और आकर्षक है। विदेश-प्रवास के अन्तराल में विभिन्न धर्मावलम्बियों से की गयी बहुविध चर्चाओं में यह तथ्य और भी उभरकर आया कि अब विश्व को ऐसा ईश्वर या मसीहा नहीं चाहिए जो दीन-हीन मुद्रा में क्रॉस पर लटका हो और उसके शरीर पर ठोंकी गयी कीलों से रक्त प्रवाह हो रहा हो—जो आतताइयों के सम्मुख बिलकुल लाचार दिख रहा हो और जिसके चेहरे पर अन्याय और अत्याचार से लड़ने का संकल्प रत्ती भर भी नहीं झलक रहा हो। इसके विपरीत विश्व को अब श्रीकृष्ण सरीखा ऐसा ईश्वर चाहिए जो शील और सौन्दर्य से समन्वित होने के साथ ही सर्वशक्तिमान भी हो—हर कदम पर अन्यायियों और अत्याचारियों से डटकर मुकाबला करने के लिए हमें प्रेरित कर रहा हो तथा जीवन को समग्रता में जीने का मंत्र दे रहा हो। अब हमें ऐसा ईश्वर चाहिए जो उदासी और मनहूसियत फैलाने के स्थान पर नाच-गाकर और बांसुरी बजाकर जीवन के क्षण-क्षण में आनन्द और उल्लास का संचार कर रहा हो और ईश्वर का यह स्वरूप कृष्ण के स्वरूप से भिन्न नहीं है। श्रीकृष्ण के इसी आनन्दमय रूप को मथुरा-वृन्दावन में निहारकर मुसलिम कवयित्री ताज के कण्ठ से कदाचित अनायास ये पक्तियां निकल गयी थीं—

नन्द के कुमार! कुरबान तेरी सूरत पे,
हों तो मुगलानी, हिन्दुवानी है रहूंगी मैं।

ईसा के विषय में जो यह कहा जाता है वे इतने महान हैं, मरते वक्त भी सभी को क्षमादान करते हैं। 'पिता उन्हें क्षमा करो, क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या करते हैं (ल्यूक 23/34 तथा व्यभिचारिणी स्त्री की कहानी (जान 8/3-11) क्षेपक अंश है। बाइबिल की प्रारम्भिक पाण्डुलिपियों में यह अंश नहीं पाए जाते।

इसके विपरीत जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, उन्हें अपार वेदना हो रही थी और जब जीसस को गोलगाथा की पहाड़ी पर उनके कंधे पर वजनी सूली को लेकर चढ़ाया गया तो तीन बार रास्ते में गिरे, इस अपार वेदना से कराहते हुए कह उठते हैं—हे God! तुमने भी कष्ट के समय साथ छोड़ दिया। जब उनके हाथ-पैर में कीलें ठोंक दिये। उन्हें प्यास लगी है वे कहते हैं कि मुझे प्यास लगी है, कोई पानी दे दो। उन्हें किसी ने पानी नहीं दिया। वरन् लोगों ने

पत्थर फेंके, सड़े छिलके फेंके, गालियां दीं, अपमान किया, भाले चुभो-चुभो कर लोगों ने पूछा, क्या हुआ तुम्हारे चमत्कारों का? क्या हुआ तुम्हारे परमात्मा का? तुम कहते थे कि तुम ईश्वर के बेटे हो, अब कहां है तुम्हारा पिता? वह आये और प्रमाण दे। इस प्रकार जब ईसा को अपनी सूली ढोनी पड़ रही थी, अपार वेदना हो रही थी और अपमान झेलना पड़ रहा था, तब God से शिकायत करते हुए कह उठे—हे God! तुमने भी कष्ट के समय मेरा साथ छोड़ दिया। तब H.G. Wells प्रश्न उठाते हैं God ने अपने पुत्र का ही साथ छोड़ दिया तो उनके शिष्यों का क्या होगा?

ईसा मसीह या इसलाम के पैगम्बर के सौम्य रूप की चर्चा प्रायः कहीं नहीं है। ईसा मसीह का सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र वही है, जिसमें वे रक्तरंजित अवस्था में सूली पर लटके हैं। इसलाम के पैगम्बर का जीवन युद्धों में ही बीता। इसलिए मुसलमान चाहे वे जिस देश में हों, किसी-न-किसी से लड़ रहे हैं। दूसरे नहीं मिलते तो आपस में ही लड़ते हैं।

गत 2000 साल का अनुभव बताता है कि किसी नगर, गाँव या कबीले पर कब्जे के लिए हुआ आपसी संघर्ष या मृत्युदण्ड पाये, सलीब पर लटके ईसा मसीह किसी को सत्य, अहिंसा और प्रेम की शिक्षा नहीं दे सकते। इसलिए इन दोनों मजहबों के अनुयायी अपने जन्मकाल से ही दुनिया के अधिकाधिक जन, धन, भूमि और अन्य धर्मों पर कब्जा करने के लिए लड़ रहे हैं। विश्व में अशान्ति का यही कारण है।

एक पारसी विद्वान् प्रो. फीरोज कावसजी दावर भगवान् कृष्ण की महात्मा ईसा से तुलना करते हुए लिखते हैं—'महात्मा ईसा इतिहास के उन बहुमूल्य रत्नों में से हैं जिनके लिए हम लोगों की सदा आदरसूचक विशेषणों का प्रयोग करने की इच्छा होती है, परन्तु क्या वे रणभूमि में जाकर युद्ध कर सकते थे या राजदूत का कार्य कर सकते थे? हमारी यह धारणा है कि समस्त संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसका कार्य क्षेत्र इतना अधिक व्यापक रहा हो जितना श्रीकृष्ण का था। उन्होंने अपने कीर्तिमय जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो-जो लोकोत्तर कार्य किए वे गत पांच सहस्र वर्षों से अटक से लेकर कटक तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक ही नहीं, प्रत्युत सारे जगत् के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में गाए जाते हैं।

वे पुनः आगे लिखते हैं—बालक, विद्यार्थी, मित्र, योद्धा, शासक, राजदूत, तत्त्वदर्शी, योगेश्वर, सिद्ध पुरुष तथा ईश्वर के पूर्णावतार आदि सारे ही रूपों में उनके जीवन की अद्वितीय महानता दृष्टिगोचर होती है। किसी कवि का कथन है कि कीर्तिमय जीवन की कार्य संकुल एक घड़ी भी कीर्ति रहित जीवन के युग से भी श्रेष्ठ है, फिर श्रीकृष्ण ने तो एक सौ पचीस वर्ष की लम्बी एवं पूर्ण आयु प्राप्त

की और प्रत्येक घंटे में उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किये जिनसे उनका नाम तथा यश सदा के लिए अमर हो गया।

आज राष्ट्र जाने-अनजाने में जिन समस्याओं से घिर गया है उससे उबारने की क्षमता यदि किसी ग्रंथ में है तो वह भगवद्गीता है और किसी अवतारी महापुरुषों में है तो भगवान् श्रीकृष्ण में है। आज सारा विश्व जिन समस्याओं से जूझ रहा है उसे मार्ग दिखाने की क्षमता किसी में है तो वह भगवद्गीता है। ऐसे भी गीता और भगवान् कृष्ण का अवतरण राष्ट्र की रक्षा के लिए, विश्व की रक्षा के लिए हुआ है। मानव मन को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए हुआ है। पूर्णता की ओर, आनन्द की ओर ले जाने के लिए हुआ है।

हमारा राष्ट्रीय आदर्श वसुधैव कुटुम्बकम् है। हमने सारे विश्व को एक बाजार या उपनिवेश या साम्राज्य नहीं एक परिवार माना क्योंकि हम सब एक ही ईश्वर की अमृत संतान हैं। परिवार बड़ा हो जाने पर जब विभिन्न कारणों से विभिन्न भूखण्डों में वास करता है, तब शरीर से तो दूर होते हैं पर मन एवं हृदय से तब निकट होते हैं। इसलिए हमारे ऋषि कहते हैं—'स्व देशो भुवनत्रयम्'। तीनों ही देश-लोक हमारे अपने हैं।

भारत अग्रजन्मा होने से, 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' होने से, वेद भगवान् ने आदेश दिया—कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। सारे संसार को श्रेष्ठ, गुणवान, संस्कृत बनाओ। बड़े भाई का स्वयं के सुशिक्षित, सज्जन, संस्कारी बनने से काम नहीं चलेगा। उसे अपनी सज्जनता की रक्षा के लिए भी पास-पड़ोस, दूर के, सभी को संस्कारित करना, सुशिक्षित करना उसका दायित्व है और छोटे भाइयों का कर्तव्य है अपने गुरुजनों से, पूज्यजनों से, गुणीजनों से, वृद्धजनों से अपने-अपने कर्तव्य की, आचरण की शिक्षा प्राप्त करे। इसलिए भगवान् मनु विश्ववासियों को आदेश देते हैं—अपने-अपने कर्तव्य की शिक्षा, आचरण की शिक्षा भारत से ग्रहण करें। यह पौराणिक नहीं ऐतिहासिक तथ्य है। भारत ने सदा विश्वमंगल की साधना निःस्वार्थ भाव से, अपनी श्रेष्ठताओं का यथा—धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का दान बिना किसी देश की स्वाधीनता को छीने, बिना उसके अर्थतंत्र पर डाका डाले, बिना माँ-बहनों के शील पर आघात किए अपने निष्कलंक चरित्र और निर्मल ज्ञान के द्वारा बिना किसी का और अपना अहित किए की। विश्ववासियों ने भी भारत से शिक्षा व संस्कार ग्रहण कर अपने को कृत-कृत्य, धन्य-धन्य माना।

हमारे ऋषि आदर्शवादी तो थे ही, यथार्थवादी, व्यावहारिक भी थे। वे शांतिकामी, मोक्षकामी थे—ॐ द्यौः शान्ति-रन्तरिक्ष (गं्) शान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः शान्ति-रोषधयः शान्तिः, वनस्पतयः शान्तिर्-विश्वेदेवाः शान्तिर्-ब्रह्म शान्तिः सर्व (गं्) शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

अतः हमने सदैव विश्व मंगल की साधना की। भगवान् गीता के 16वें अध्याय में कहते हैं सृष्टि के प्रारम्भ से ही दो प्रकार की सृष्टि है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च। 16/6

इस संसार में दैवी और आसुरी ये दो प्रकार की प्राणियों की सृष्टि है। दैवी प्रकृति के लोगों पर ही प्रेम और विवेक का शासन कारगर होता है। पर जो आसुरी प्रकृति के हैं—वे तमोगुणी होते हैं एवं उनका मस्तिष्क विकृत और हृदय शुष्क होता है, वे कठोर दण्ड की भाषा ही समझते हैं। प्रेम, विवेक, उदारता को वे दुर्बलता समझते हैं। उनकी भावना होती है सारा संसार उनके सुखोपभोग के लिए है, अन्यों का तो दायित्व उनके मनोनुकूल उनकी सेवा व जीवन समर्पित करना है। इसके लिए उन्हें जो भी कष्ट स्वीकारना पड़े, यहां तक कि जीवन की बलि देना पड़े तो सहर्ष दे देना चाहिए। इन्हें दण्ड के द्वारा ही वश में, संयम में रखा जा सकता है। इसलिए हमारे ऋषि शांतिकामी, मोक्षकामी के साथ-साथ मन्यु (क्रोध, दण्ड) के उपासक भी थे, इसलिए वेद में सैकड़ों शांति मंत्र के साथ मन्यु के, दण्ड के मंत्र भी गुंजायमान हैं। इसलिए हमने शास्त्र के साथ-साथ शस्त्र को भी महत्त्व दिया। शास्त्र के द्वारा हम अपने अन्तःशत्रुओं पर विजय प्राप्त कर आत्मबोध, स्वरूपबोध प्राप्त करते हैं और शस्त्र द्वारा हम बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर समाज में सुख-शांति, अभय का वातावरण निर्माण करते हैं। स्पष्ट है शास्त्र द्वारा दैवी सम्पदा का अर्जन कर आत्मबोध प्राप्त करें और शस्त्र द्वारा आसुरी शक्तियों का दमन कर उन्हें अपने वश में रखें। ऐसे ही समाज में ज्ञान-विज्ञान का, सभ्यता-संस्कृति का, कला-कौशल व वाणिज्य के विकास का पूरा अवसर मिलता है। अतः ब्रह्मतेज के साथ-साथ क्षात्रतेज को भी समान महत्त्व देते थे। उनमें शील और शक्ति का समन्वय था। हमारे जितने भी देव विग्रह, देवी विग्रह हैं वे जहां अपने भक्तों की कामना के अनुसार एक हाथ से अभय, सुख-समृद्धि, मोक्ष देते हैं, वहीं दूसरे हाथ में शस्त्र धारण किए दुष्टों का दण्ड के द्वारा दलन करते हैं, अपने वश में रखते हैं। हमने किसी पर आघात नहीं किया, पर हम पर किसी ने आघात किया तो उसको बख्शा भी नहीं।

जब रावण ने हमारी संस्कृति पर, हमारे ऋषि-मुनियों पर, हमारी नारी का अपमान किया तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने उसे कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़ कर फेंक दिया। जिस रावण के विषय में कहा जाता है—

इक लख पूत, सवा लख नाती,
तिस रावण को, दीया न बाती।

इन्द्रपुत्र जयन्त असुरपना दिखाते हुए सीता माता के प्रति अपराध करता है, भगवान् राम उसे भी बख्शते नहीं। यहाँ तक कि उनके पिता इन्द्र ने भी शरण नहीं दी और उसे दण्ड के साथ प्रायश्चित्त करना पड़ा। हमने व्यापक मानव-कल्याण के

लिए समुद्र मंथन के समय आसुरी शक्ति का सहयोग तो लिया, पर उसका पोषण कभी नहीं किया। उनको अमृत पीने नहीं दिया। छल से राहु-केतु ने अमृत पी लिया तो तुरत उनका शिरोच्छेद कर दिया। उन्हें बली होने नहीं दिया, अपने वश में रखा।

सुन्दरलाल ने 'भारत में अंग्रेजी साम्राज्य' पुस्तक लिखी। जिसमें वे बताते हैं कि सिकन्दर के पूर्व भारत पर दो ही आक्रमण हुए। पहले आक्रमण में कोई भी जीवित वापस नहीं लौट सका। दूसरे आक्रमण में केवल सात लोग अपनी पराजय गाथा सुनाने वापस लौट सके।

सिकन्दर के आक्रमण के समय सारा ब्राह्मण समाज सिकन्दर के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और क्षत्रिय राजाओं को अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ किया। इसलिए सिकन्दर ने ब्राह्मण समाज पर कुपित होकर उनका शिरोच्छेद किया। ब्राह्मणों की एक ही सीख थी स्वाभिमान के साथ जीओ और स्वाभिमान के साथ मृत्यु का वरण करो। यही स्वतंत्रता, स्वराज्य की कीमत है। यही कारण है कि सिकन्दर को भारत के द्वार से ही लौटना पड़ा। सैल्यूकस ने आक्रमण की भूल की तो अपनी पुत्री सहित दहेज में चार प्रान्त देने पड़े।

शक, हूण, कुषाणों को प्रारम्भ में थोड़ी सफलता मिली, पर वे शीघ्र ही देश से निष्कासित कर दिये गये और जो बचे वे हममें ही रच-पच और खप गए। उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा। वे हमारे साथ एकमेक हो गए।

पर काल का प्रवाह एक-सा नहीं रहता। उसमें उत्थान-पतन के दौर आते रहते हैं जिसमें हम श्रेष्ठ वस्तुओं, परम्पराओं के रहते हुए भी जड़ता में चले जाते हैं। वेद हमारा आधार है जिस पर हमारी सारी संस्कृति टिकी हुई है। उसको लेकर भी हम जब जड़ता में चले गए तो उससे उबारने के लिए भगवान् बुद्ध आते हैं। व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों से हटाकर समाज में व्यापक नैतिक जागरण का आन्दोलन चलाते हैं और जब तक बौद्ध धर्म अपने मातृधर्म वेद के प्रति श्रद्धा रखे रहा, उससे पोषण पाता रहा, दोनों देश-विदेश में साथ-साथ बढ़ते रहे। पर कालान्तर में काल के प्रवाह से बौद्धों में विकृति आ गई, वे अपने मातृधर्म से ईर्ष्या करने लगे और वैदिकों को पराजित करने के लिए राष्ट्रद्रोह का आश्रय लेने लगे। तब हम देखते हैं कि आद्य शंकराचार्य का आविर्भाव होता है। उन्होंने बुद्ध को भगवान् विष्णु का, करुणा का अवतार स्वीकार किया, पर बौद्धों को स्वीकार नहीं किया। उन्हें पुनः अपने मातृ वैदिकधर्म में समाविष्ट कर लिया। विश्व के विद्वानों को आश्चर्य होता है, अहिंसा के लिए, बौद्ध दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त भूमि भारत में ही बौद्ध नामशेष हो गए और विश्व में बढ़ते रहे। जो थोड़े-बहुत बौद्ध मठ शेष बचे थे उन्हें इसलामी आक्रान्ताओं ने नष्ट कर दिया। हिन्दू मन्दिर तो मुस्लिम आक्रान्ताओं से नष्ट होने पर पुनः-पुनः बनते रहे लेकिन बौद्धों पर

जन साधारण की आस्था शेष नहीं रहने से पुनः-पुनः नहीं बन पाये। इस प्रकार शंकराचार्यजी ने और हिन्दू समाज ने धर्म के नाम पर मातृधर्म से, वेद से, राष्ट्र से उनके द्रोह को सहन नहीं किया। प्रश्रय और संरक्षण नहीं दिया।

फिर हम देखते हैं बौद्ध एवं जैन धारा के सम्पर्क में आकर हमारा क्षात्रतेज दुर्बल हुआ। जैन धारा के भगवान् महावीर और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध, दोनों ही क्षत्रिय वंशी राजा होने से क्षत्रिय राजा और क्षत्रिय उनकी अहिंसा से प्रभावित होकर क्षत्रिय से वैश्य बन गए। इससे क्षात्रतेज दुर्बल हुआ और विदेशी आक्रान्ताओं का देश पर आक्रमण करने का साहस हुआ। कालान्तर में पुनः हम देखते हैं काल के प्रवाह से पृथ्वीराज के समय हम धर्माभास के शिकार होकर 'विनाशाय च दुष्कृताम्' को भूलकर राष्ट्र के शत्रुओं को क्षमादान करने लगे। व्यक्तिगत अपराधी को तो क्षमा किया जा सकता है, पर राष्ट्र के अपराधी को कभी नहीं और वह भी 17-17 बार....भूल की, धर्माभास की पराकाष्ठा है। जयचन्द ने 'वयं पञ्चाधिकशतम्' को भुलाकर मुहम्मद गोरी का साथ देकर स्वयं के लिए और देश के लिए पतन और पराधीनता के द्वार खोल दिए। यथार्थ व्यावहारिकता के अभाव में सद्‌गुण विकृति के शिकार हुए। तब से हम आज तक धर्माभास के शिकार हैं।

धर्माभास के शिकार भ्रान्त हिन्दू समाज को अंग्रेजों ने और भी दुर्बल एवं भ्रान्त किया। हमारी सारी शिक्षा व्यवस्था और अन्य सारी व्यवस्थाओं को अपने स्वार्थ के अनुकूल ढालकर हमारे मानस को, हमारी रुचि को ही बदल दिया और हमारे ब्रह्मतेज को भी नष्ट कर दिया और देशी राजाओं की सुरक्षा व्यवस्था, सैन्यबल अपने हाथ में लेकर क्षात्रतेज को निस्तेज, निर्वीर्य करने का प्रयास किया। हमारे व्यापार-वाणिज्य, कला-कौशल को नष्ट-भ्रष्ट कर हमें वैश्य कर्म से भी च्युत करने का प्रयास किया।

फिर गांधीजी ने अहिंसा पर अतिरेक बल देकर इस देश के राष्ट्रीय हिन्दू समाज को जाने-अनजाने और निस्तेज किया। मुसलमानों की उद्दण्डता की अनदेखी कर उनको और अधिक हिंसा परायण होने, संगठित होने का अवसर दिया, न उनके मनोभाव को, मनोविज्ञान को, महत्त्वाकांक्षा को समझने का प्रयास किया और न देश विभाजन के मूल कारणों को जानने का प्रयास किया। और उनकी उद्दण्डता और हिंसा से डरकर देश विभाजन को स्वीकार कर लिया। एक मां के दो पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन होता है। स्वयं मां का नहीं। भारत भूमि किसी की सम्पत्ति नहीं है या थी। इसको देशवासियों ने हमेशा अपनी माता के रूप में पूजा है, वंदना की है। माता का विभाजन न कभी हुआ है न कभी स्वीकार्य होगा। गांधीजी ने स्वयं भी कहा था कि भारत का विभाजन मेरी

लाश पर होगा। किन्तु यह समझ से परे है कि अन्ततः उन्होंने भारत विभाजन कैसे स्वीकार लिया।

हिन्दू और मुसलमान इन दो सम्प्रदायों को ही भारत भूमि का मालिक गांधीजी ने कैसे मान लिया। हिन्दू हजारों-लाखों वर्षों से इस भूमि पर रहते आये हैं। हमेशा उन्होंने 'जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी' माना है। सनातन धर्म जिसके हिन्दू अनुयायी हैं इस धरती मां की उपज हैं। अतः इस भूमि पर पुत्र होने का अधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त है। मुसलमान इसलाम धर्म के अनुयायी हैं जिसकी न तो उत्पत्ति इस भूमि से हुई और न ही इस भूमि से उसका दूर-दूर का कोई सम्बन्ध है, तो फिर हिन्दू और मुसलमान को एक तराजू में तोलना न केवल विराट विसंगति है अपितु एक अपराध भी है। गांधीजी ने जाने-अनजाने यह अपराध किया है। जब मुसलमान इस भारत भूमि को भोग भूमि, शत्रु भूमि, नापाक भूमि मानते हैं। जिन्होंने इस देश (मातृभूमि) को कभी मां के रूप में स्वीकार ही नहीं किया और न ही मां मानकर किसी कर्तव्य को निभाया, ऐसी स्थिति में उनका देश पर कैसा अधिकार? तब फिर विभाजन कैसा? उन्हें भी अंग्रेजों की तरह निकाल बाहर किया जाना चाहिए था। जो यह दलील दी जाती थी बंटवारे के बाद दोनों भाई शान्ति से रहेंगे यह पूरी तौर पर असफल सिद्ध हुई। क्योंकि घृणा एवं द्वेष की नींव पर निर्मित राष्ट्र में कभी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इतिहास साक्षी है वह अपने जन्मलग्न से अशान्त है और भारत पर निरन्तर युद्ध, षड्यंत्र, आतंक थोप रहा है। अतः जिस हिंसा के भय से विभाजन स्वीकारा उस हिंसा से भी बचे नहीं। क्योंकि हमारे युद्ध एवं हिंसा को अस्वीकार कर देने से दुष्टों का, शत्रुओं का स्वभाव नहीं बदल जाता। इसलिए वीरता के स्थान पर हमने कायरता का रक्त दिया। यदि वीरता का रक्त देते तो देश का विभाजन रुक जाता। जो लाखों हिन्दू मारे गए, वे स्वाभिमान के साथ जीवित रहते, लाखों हिन्दू ललनाओं की इज्जत लूटी गई पांच हजार हिन्दू स्त्रियों को नग्न कर जुलूस निकाला गया और नारे लगे हँस के लिया पाकिस्तान लड़कर लेगे हिन्दुस्तान। यह संभव नहीं होता और भारत अखंड रहता। न पाकिस्तान का कश्मीर पर आक्रमण होता न कश्मीर की समस्या जन्म लेती और न चीन का साहस होता तिब्बत को हड़पने का, हम पर आक्रमण करने का। न भारत और नेपाल में माओवादियों का संकट खड़ा होता। न इसलामी आतंकवाद का संकट देश में खड़ा होता न तमिल चीतों का आतंक श्रीलंका में खड़ा होता और भारत एक अखंड शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विश्व में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता।

पर हमने देश विभाजन भी स्वीकार कर लिया। जिस घाव के ऑपरेशन के लिए देश का विभाजन स्वीकारा उस घाव को भी रख लिया। देश-विभाजन के

पश्चात् मुसलमानों का इस देश में रहने का कौन-सा नैतिक अधिकार बचता था? पर हमने नैतिक अधिकार ही नहीं संविधान के द्वारा विशेष-विशेष सुविधा और संरक्षण प्रदान किया। प्रश्न है अल्पसंख्यक के नाम पर विशेष सुविधाएं दी जाएगी तो वह उनको छोड़कर देश के साथ क्यों एकात्म होगा। द्विराष्ट्र के आधार पर देश का विभाजन हुआ। जब देश विभाजित हो गया। अब विभाजित भारत में एक राष्ट्र ही शेष बचा। और जो मुसलमान इस देश में रह गए अब एक राष्ट्र मानकर ही रहे, भारतीयता को स्वीकार करके ही रहे। केवल देश में जन्म ले लेने से, वास करने मात्र से कोई देश का नागरिक नहीं बन जाता। जो भारत में रहे पर भारतीयता को अस्वीकारे वह भारत का नागरिक कैसे हो सकता है? उपासना पद्धति भले भिन्न हो, पर राष्ट्रीयता, संस्कृति, पूर्वज, इतिहास एक है। अतः देश विभाजन के पश्चात् अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक का विभाजन करना, और अल्पसंख्यक के नाम पर विशेष सुविधा देने का कोई अर्थ नहीं रह गया था। पर देश की विडम्बना है मुसलमानों को अल्पसंख्यक मानकर उन्हें विशेष सुविधा और संरक्षण दिया गया। इसका विरोध स्वयं गांधीजी की शिष्या रैहाना तैय्यब ने गांधीजी को पत्र लिखकर किया—बापू! आप अगर मुसलमानों को वफादार बनाना चाहते हैं तो बाकी शेष हिन्दुस्तानियों से कोई फर्क नहीं करना चाहिए। बापू, मुसलमानों पर यह अन्याय है कि उन्हें अपना दुराग्रह छोड़ने का कोई मौका नहीं देते। और उनकी अनुचित मांगों को पूरी करके उनमें एक कृत्रिम अलगाव पैदा कर देते हैं। इसका प्रमाण स्वयं मेरा अपना खानदान है। आप लोग मुसलमानों से इतने अलग रहे हैं कि आपको उनके मानस की बिलकुल खबर नहीं है। यही कारण है कि पाकिस्तान बन गया और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरी के साथ उर्दू को भी राष्ट्रलिपि बना दिया तो आप हिन्दुस्तान के भीतर एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे....वह कहती है मेरी विनती है खुदा के लिए आप मुसलमानों को अपने ही मुल्क में परदेशियों की तरह रहने के लिए बाध्य मत कीजिए। वे तो यही चाहते हैं आप ब्रिटेन और पाकिस्तान का खेल खेलते रहे और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहे। बापू, मैं बहुत घबराई हुई हूं क्योंकि मैं मुसलमान समाज से वाकिफ (परिचित) हूं। उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को मैं जानती हूं भले ही आप जानने या मानने से इनकार करें।

हमीद दलवाई ने अपनी पुस्तक Muslim Politics in Secular India में लिखा है—मुसलमान, जो उन पर अत्याचार हो रहा है ऐसा नारा लगाते हैं। उनमें से बहुतों से मिला कि आप पर कौन-सा अत्याचार होता है, चूंकि हमीद दलवाई मुसलमान थे अतः स्पष्ट रूप से बताया कि हिन्दुओं का बहुसंख्यक होना ही मुसलमानों पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है जिसके कारण देश का इतना बड़ा हिस्सा मुस्लिम राष्ट्र नहीं बन सका। जब तक हिन्दू समाज बहुसंख्यक

रहेगा, तब तक हम इस देश को मुस्लिम राष्ट्र नहीं बना सकते। यही हम पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है।

कांग्रेस में मौलाना अब्बुल कलाम आजाद जो राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे उनकी स्थिति के विषय में Muslim Politics in Secular India में हमीद दलवाई स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिन्ना एक हिस्से में इसलाम स्थापित कर वहां से सारे देश को धीरे-धीरे ग्रसना चाहते थे और मौलाना अब्बुल कलाम एक बार में सारे देश को इसलाम में लाना चाहते थे। यही दोनों में अन्तर था। मौलाना अब्बुल कलाम ने जो मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे उन्हें रोका, और समझाया कि यहां के मुसलमानों की स्थिति दुर्बल न करें, आपको यहां बैठे-बैठे ही इसी भारत देश में आपको पाकिस्तान मिल जाएगा। डॉ. अम्बेडकर कहते अन्य पार्टियों में जो मुसलमान हैं वे अपने हित में अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त करने के लिए चौकियों के तुल्य हैं। कश्मीर तो एक बहाना है इन्हें पूरा हिन्दुस्तान चाहिए। पर दुर्भाग्य से हमारे राजनेता इन तथ्यों को स्वीकारना नहीं चाहते। पर इसे अस्वीकारने से, इससे मुंह छिपा लेने से समस्या समाप्त नहीं होती वरन् और-और उलझती जाती है। यही कारण है कि मुसलमानों की सुविधाओं एवं आरक्षण की मांग और उनके उत्पात निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं और हमारे राजनेता उन्हें अपना वोट बैंक कैसे बनाये रखें इसकी होड़ में लगे हुए हैं।

गांधीजी की तुष्टीकरण की नीति को नेहरूजी ने और व्यापक रूप से लागू किया। जो मुस्लिम लीग देश विभाजन के पाप के कारण मुंह छिपाये हुए थी, उसको नेहरूजी ने पुनर्जीवित किया और वे अपराध पर अपराध करते रहे पर नेहरू ने सदा छाती से लगाए रखा और माफ करते रहे। चीन के आक्रमण एवं भारत भूमि पर कब्जा कर लेने पर—नेहरू वहां तो घास का तिनका भी नहीं उगता, कहते रहे। नेहरूजी की इस उक्ति के विरोध में लोकसभा सदस्य भाई महावीर का प्रत्युत्तर अत्यन्त समीचीन है—उन्होंने कहा कि आपके सर पर कोई बाल नहीं है तो क्या इस पर भी कोई जबरन दखल कर ले तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी? ऐसे नेता जो देश को सदा लुटाते रहे, पिटवाते रहे। हमने मृत्युपर्यन्त ऐसे नेताओं को अपनी छाती से चिपकाए रखा। इसका ही परिणाम है कि आज देश अंतः-बाह्य आतंक से घिर गया है। पुनः देश में विभाजन से बदतर स्थिति निर्मित हो गई है। मुस्लिम व ईसाई तुष्टीकरण ने पंजाब के आतंकवादियों को शह दी, और आज खालिस्तान की मांग के रूप में उपस्थित है। ऐसे ही क्रिश्चियन स्थान नागालैण्ड, मिजोरम, बोरोलैण्ड, कुकीस्थान आदि की मांग के रूप में उपस्थित है। यहां तक कि अवतारी ऋषभदेव के अनुयायी जो अपने आपको जैन कहते हैं। अल्पसंख्यक का दर्जा चाहने लगे हैं। रामकृष्ण परमहंसदेव एवं उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्दजी

ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए जितना कार्य किया है शायद ही अन्य किसी महापुरुष ने इतना कार्य किया हो तथापि उनके मस्तिष्क में भी यह दूषित मानसिकता प्रवेश कर गयी है और सुप्रीम कोर्ट में उन्होंने खुलेआम अपने आपको हिन्दुओं से अलग एक विशेष अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की मान्यता की मांग की थी। सौभाग्यवश सुप्रीम कोर्ट ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। आज भी महात्मा गांधी के तथाकथित ये अनुयायी इस विष वृक्ष को सिंचित कर रहे हैं, उसे पनपने का अवसर प्रदान कर रहे हैं, हर प्रकार से सहयोग कर रहे हैं वही दूषित मानसिकता भारत एक भूमि है यह न किसी का पावन तीर्थ है न किसी की माता है। उनके दिमाग में, उनके मस्तिष्क में संचारित है। भारत के महान् अद्वितीय भक्त ऋषि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की अमर वंदना वंदेमातरम् का भी विरोध करने में उनको कोई संकोच नहीं होता।

हमारे आदर्श अप्रिय सत्य को भी उच्चारित करने की आज्ञा नहीं देते। किन्तु जब अप्रिय सत्य नहीं कहने से हमारी देवस्वरूपा भारत मां के अंगछेदन का वातावरण बनता हो तो ऐसे अप्रिय शब्द बोलने में किसी प्रकार का संकोच करने के प्रो. ओबरायजी विरोधी थे।

एकतरफा अहिंसा के प्रचार से हिन्दू समाज निस्तेज हो गया। आज वह मरना, बलिदान देना भूल गया है। जो जाति मरना भूल जाती है वह अपने आदर्श और अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकती। आज हिन्दू व्यक्ति और परिवार के नाते जी रहा है, राजनीतिक बेहोशी में जी रहा है, राष्ट्र के नाते नहीं। किन्तु जिसका राष्ट्र सुरक्षित नहीं है उसका परिवार और पेट भी छिन जाता है और वह रोम, मिस्र, बेबीलोन की कहानी दुहराता है। इतिहास साक्षी है जहां-जहां हिन्दू घटा, वह देश नहीं रहकर विदेश बन गया। यथा—अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश बन गया। वहां न उनका पेट, परिवार, न उपासना पद्धति, न देव विग्रह, न मातायें—कोई सुरक्षित नहीं है। कश्मीर घाटी से हिन्दू निष्कासित कर दिए गए। यही स्थिति ईसाई बहुल प्रदेशों में है। आज दुर्भाग्य से साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग हिन्दू समाज को और अधिक तोड़ने, विघटित करने में हो रहा है जबकि इसका प्रयोग शत्रुओं पर किया जाता है। यही कारण है स्वाधीनता के बाद भी मुसलमान एवं ईसाई आक्रामक बने हुए हैं और हिन्दुओं को अपने आदर्श एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने ही स्वाधीन देश में रक्षात्मक लड़ाई लड़नी पड़ रही है। हिन्दू समाज बार-बार सरकार से गुहार लगा रहे हैं वे दोहरे मानदंड नहीं अपनावे, पर सरकार निरन्तर अनसुना करती जा रही है। आज हिन्दुओं के अपने ही एकमात्र देश में हिन्दू होना मानो एक अपराध जैसा हो गया है। यह विचित्र हास्यास्पद स्थिति है सारे विश्व के सामने। अतः यदि हम स्वाभिमान के साथ राष्ट्र को जीवित रखना चाहते हैं तो प्राणों का मोह छोड़कर अपने प्राण विसर्जन के लिए तत्पर रहना होगा।

सुभाष बोस के शब्दों में—तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा—इस भाव को अपने जीवन में लाना होगा। 1200 वर्षों से अवरुद्ध 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कार्य को हाथ में लेना होगा। भगवान् राम, कृष्ण, आद्य शंकराचार्य, आचार्य चाणक्य, पुष्यमित्र, विद्यारण्यक, राणा प्रताप, शिवाजी की दृष्टि को पुनः अपनाना होगा। तब फिर आपकी ओर बुरी दृष्टि डालने की कोई हिम्मत, स्वप्न में नहीं कर सकेगा। जैसा कि प्राचीन भारत में पाते हैं। इसके लिए वीरता का खून देना होगा। नहीं तो कायरता का खून भी देंगे और परतंत्रता को भी भोगेंगे। जैसा कि मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल में हुआ। इनके पक्ष में अपना रक्त देकर अपने को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ेंगे। उसे स्थिर करेंगे। खून तो देना पड़ेगा चाहे वीरता का खून देकर स्वाभिमान के साथ जीएं या कायरता का खून देकर अपने अस्तित्व को शत्रु के हवाले कर देवें। आज हमारे सत्संग, कथा-प्रवचन सब राजनीतिक बेहोशी एवं देश के कर्तव्य के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर रहे हैं। देश लुटता रहे, पिटता रहे। प्रायः सभी कथावाचक और श्रोता, सब मूकदर्शक बने हुए हैं। माँ दुर्गा की, माँ काली की, शक्ति की उपासना हो रही है जिसमें मुख्यतः असुरों के संहार की कथा है और देश आतंक और शत्रुओं से घिर रहा है, राम-कृष्ण की उपासना कर रहे हैं जिन्होंने जीवनपर्यन्त, पूरे अवतारकाल में संघर्ष ही संघर्ष किया। शत्रुओं का दमन किया। और हम उनके अनुयायी शत्रुओं से घिरते जा रहे हैं। परिवार के प्रति, माता-पिता के प्रति कर्तव्यबुद्धि की चर्चा है पर राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की कोई चर्चा नहीं।

राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाए बिना शास्त्र चर्चा, धर्म चर्चा, उपासना, देव-विग्रह, मां-बहनों का शील, ब्रह्मज्ञानी गुरुओं का जीवन आदि कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता। शस्त्र से रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र चिंतन हो सकता है। बिना शस्त्र के शास्त्र रोते हैं। विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां विश्व के मानचित्र से भारत के अस्तित्व को ही सदा-सदा के लिए मिटा देना चाहती हैं और हममें से बहुत से वोट डालने का भी कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं, तो हमें नागरिक सुविधा भी नहीं लेनी चाहिए। पर हमें नागरिक सुविधा तो चाहिए। हमें देश की नागरिकता, भोजन, वस्त्र-आवास व्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात की सुविधा, पर्व-त्योहार मनाने की सुविधा, सरकारी नौकरी आदि सारी सुविधाएं तो चाहिए। हमारे वोट नहीं डालने का लाभ तीनों अराष्ट्रीय शक्तियों मुसलमान, ईसाई व कम्युनिस्टों को मिलता है। और वे सरकार बनाने में निर्णायक बन जाते हैं, इस पर हम विचार नहीं करते। आज हिन्दुओं की स्थिति यह है नीचे प्रारब्ध ऊपर परमात्मा की इच्छा के नाम पर सारे अन्याय-अत्याचार सह लेंगे। न उसका विरोध, न प्रतिकार करेंगे और न उसका प्रतिशोध लेंगे। अपने परिवार को स्थापित करने में, स्वयं की, बेटे-बेटी की शिक्षा, नौकरी, विवाह आदि के लिए पूरा जोर लगाएंगे। किसी प्रमाद का

परिचय नहीं देंगे, पर देश के प्रति कर्तव्य को भगवान् पर, महामाया की लीला पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं। घर की एक गज जमीन पर गैर द्वारा कब्जे के विरुद्ध झगड़ा, मुकदमा आदि सब करेंगे पर देश की हजारों वर्ग कि.मी. चली जाने पर भी हम उदासीन रहते हैं। हम यह भूल जाते हैं 'धर्मो रक्षति रक्षितः।' हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म भी हमारी रक्षा करेगा। हम धर्म के जितने अंशों की, पक्षों की रक्षा करेंगे उतनी ही वह हमारी रक्षा करेगा। धर्म के अन्तर्गत व्यक्ति का शरीर, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, चराचर जगत् और विश्व चेतना का समावेश है। हम शरीर धर्म का पालन करेंगे तो शरीर हमारी रक्षा करेगा। परिवार धर्म के पालन से परिवार हमारी रक्षा करेगा। वैसे ही अगर हम राष्ट्र धर्म का पालन करेंगे, राष्ट्र की सेवा, सुरक्षा व प्रतिष्ठा करेंगे तो राष्ट्र भी हमारी रक्षा करेगा। हमारा पेट, परिवार, सम्मान सबको सुरक्षित रखेगा और हम स्वाभिमान के साथ आगे बढ़ेंगे अन्यथा इसमें से कुछ भी सुरक्षित नहीं रहेगा। इतिहास बार-बार इसका साक्षी रहा है।

इस धर्माभास की स्थिति से गीता और भगवान् कृष्ण ही उबार सकते हैं—अर्जुन भी पारिवारिक स्नेह में पड़कर, धर्माभास का शिकार होता है और युद्ध के विरोध में मिथ्या तर्कों का जाल बुनता है और अन्त में कहता है मैं युद्ध नहीं करूंगा। यह कहकर धनुष छोड़कर रथ के पीछे बैठ जाता है। तब भगवान् जोरदार डांट के साथ ही अपना मुंह खोलते हुए कहते हैं—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।। 2/2-3 गीता

भगवान् डांटते हुए कहते हैं—यह तेरे हृदय की उदारता नहीं तुच्छ दुर्बलता है, ज्ञान नहीं अज्ञान है, जो न आर्यों के सेवन योग्य है, न ही स्वर्ग को देने वाला है, न ही कीर्ति को देने वाला है। ऐसी विषम स्थिति में यह मोह तुझे कहां से प्राप्त हुआ? भगवान् कृष्ण न दुर्योधन, दुःशासन को बख्शते हैं, न उनके संरक्षक बनकर खड़े हुए भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य को ही बख्शते हैं। भगवान् कृष्ण तो अपने कुल को भी नहीं बख्शते हैं जिसके बल पर जीवनभर धर्मसंस्थापना के लिए संग्राम करते रहे। जब वे भी असुरपन को प्राप्त हो गए तो उन्हें भी नष्ट करवा दिया। धर्मद्रोह, राष्ट्रद्रोह, असुरपना करने वाला चाहे स्वदेशी कौरव पक्ष हो या विदेशी कालयवन या स्वयं अपना ही कुल यादव वंश हो किसी को भगवान् ने क्षमा नहीं किया। अतः देश गीता के अनुसार चलेगा, भगवान् कृष्ण के अनुसार चलेगा तो न कभी धर्माभास का शिकार होगा और न विदेशियों की दाल गलेगी, न उनका चरागाह बनेगा। इसलिए पश्चिम के बहुत से विद्वान् कृष्ण से, शिवाजी

से बड़े नाराज हैं, खफा हैं, उन पर बड़े-बड़े आरोप लगाए। धर्म एवं न्याय की प्रतिष्ठा के लिए किए गए युद्ध में वे हिंसा का ही दर्शन करते हैं जबकि उनका स्वयं का सारा इतिहास कपटाचार, व्यभिचार का है, सारी मानवता का अपने हित में शोषण करने वाले, रक्त से स्नान कराने वाले, ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को नष्ट करने वाले रहे हैं। हमारे राम-कृष्ण को भी देश को आतंक से मुक्त करवाने एवं धर्म-न्याय की प्रतिष्ठा के लिए अन्तिम हथियार के रूप में, आवश्यक बुराई के रूप में युद्ध का सहारा लेना पड़ा और इसके विपरीत सेमिटिक परम्परा (विशेषकर इसलाम-ईसाइयत) ने दुनिया में अपना आतंक थोपने के लिए अपना उपनिवेश स्थापित करने के लिए अपने विदेशी बर्बर पंथ को स्थापित करने के लिए सब पर युद्ध थोपा। ऐसे कपटाचारी भगवान् कृष्ण पर युद्ध-हिंसा का आरोप लगा रहे हैं ताकि हम भ्रमित होकर उस पथ को, आदर्श को न स्वीकारें ताकि उनके स्वार्थ सिद्ध होते रहें। हमारे लिए राम-रावण का युद्ध, कौरव-पाण्डवों का महाभारत युद्ध अधर्म पर धर्म की विजय का प्रतीक है, लेकिन पाश्चात्य लेखक इसमें केवल हिंसा ही ढूंढ़ते हैं। पाश्चात्य लेखक भटकाने का प्रयास करते हैं। अपने निजी लाभ के लिए विवाद उत्पन्न कर प्रसिद्ध होने का उनका यह छिपा हुआ ऐजेंडा है।

आज आवश्यकता तो ऐसी है कि घर-घर से राम-कृष्ण, राणाप्रताप-शिवाजी, आजाद, भगतसिंह प्रकट हों। इस स्थिति का हम सब अनुभव भी करते हैं और हम चाहते भी हैं पुनः राम-कृष्ण प्रकट हों पर अपने घर से नहीं पड़ोस से हो। पर इससे काम नहीं चलेगा। जिनको भी अपने देश-धर्म-संस्कृति के प्रति दर्द है उन सबको कुमारिल भट्ट बनना पड़ेगा। उनके आदर्श 'मेरे रहते मैं देश-धर्म-संस्कृति का नाश नहीं होने दूंगा, देश-धर्म-संस्कृति के प्रति मृत्यु-पर्यन्त अपने दायित्व को निभाऊंगा' को स्वीकारना होगा।

हमारा धार्मिक आदर्श सर्वधर्म समभाव है। मनुष्य अपनी चेतना को विश्व चेतना से जोड़ सके, अपना सर्वोच्च विकास कर सके और उसे पूर्णता तक ले जा सके; इसके लिए अनेकों उपासना पद्धतियों, पूजा पद्धतियों, अनेकों देव विग्रहों, अनेकों देवी विग्रहों को स्वीकारा गया है। मानव अनन्त पथ का यात्री है। सबके स्वभाव, अभिरुचि भिन्न-भिन्न हैं। सबके शारीरिक, ऐंद्रियक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक व आध्यात्मिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न हैं। अतः सबके लिए एक ही उपासना पद्धति, एक ही विश्वास पद्धति उपयुक्त नहीं हो सकती। अतः नाना प्रकार की उपासना पद्धति अपने देश में और सारे विश्व में प्रचलित रही है, सेमिटिक परम्परा के पूर्व तक। इनमें परस्पर में सामंजस्य था, परस्पर में पूरकता थी। सहअस्तित्व था, जीओ और जीने दो का भाव था। जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानती थी, धरती को माँ मानती थी, जिनमें भगवान् पुलिंग भी था, स्त्रीलिंग भी था, वह पुरुष

रूप में भी था, स्त्री रूप में भी था। ईसाइयत के पूर्व यूरोप में, इसलाम के पूर्व अरब में अनेक देव विग्रहों का अस्तित्व था। सारे यूरोप में अनेक देवी-देवताओं के साथ सूर्य पूजा प्रचलित थी। इसलाम के पूर्व अरब में, मक्का में 360 (तीन सौ साठ) विग्रह थे। देव एवं देवी विग्रह प्रतिष्ठित थे और परस्पर में सामंजस्य था।

इसमें समस्या उत्पन्न हुई सेमिटिक परम्परा के उदय से जो एक ही विश्वास, एक ही ग्रंथ, एक ही इकलौते पुत्र, अन्तिम पैगम्बर, एक ही पुरुष देवविग्रह और एक ही पूजा पद्धति को स्वीकारता है। इसके अलावा सब झूठे हैं, शैतान से प्रेरित हैं, कुफ्र हैं, काफिर हैं, हिडेन, पैगन हैं जिसका एक ही उचित प्रायश्चित्त है कि इहलोक में निर्मम ढंग से वध और परलोक में अनन्त नरक की आग में जलना। यही उनकी नियति है। ये मानव समाज को दो भागों में बांट देते हैं—विश्वासी और अविश्वासी। अविश्वासी को जीने का कोई अधिकार नहीं है। अविश्वासी के जान-माल-स्त्री सब पर विश्वासी का अधिकार है। इस प्रकार सेमिटिक परम्परा अविश्वासियों के प्रति जहर उगलती है, द्वेष फैलाती है। उनके जान-माल को छीन लेने की चेष्टा करती है। तो क्या इसे धर्म या उपासना पद्धति या पूजा पद्धति कहा जा सकता है? जो व्यक्ति की चेतना को शुद्ध करे, परिष्कृत और व्यापक बनाये, उसमें सद्गुणों का विकास करे, चरित्र का विकास करे, उसे ही धर्म, मत, पंथ या उपासना पद्धति कहा जा सकता है पर जो चेतना को कलुषित करे, संकुचित करे, तुच्छता में, पशुता में, बर्बरता में, हिंसा में, बलात्कार में, व्यभिचार में, असुरता में, पैशाचिकता में ले जाए क्या उसे धर्म या मत-पंथ कहा जा सकता है? जिनकी जीव, जगत्, ईश्वर आदि की अवधारणा ही विकृतियों को लिए हुए हैं, जिनका स्वयं ईश्वर ही ईर्ष्या विदग्ध है, जो दूसरे के उपास्यों को सहन नहीं कर सकता, जिसकी मुंह लगी जातियां—उम्मा है, चर्च है, देश हैं और—अन्यों के प्रति गजब का कोप बरसाने वाला है। जो स्वयं एक देशीय ऊपर सातवें आसमान में रहने वाला है जो घट-घट व्यापी नहीं है। तो क्या इसको ईश्वर कहा जा सकता है? जो मानव को, अपने हित में सारे जगत् को तहस-नहस करने का अधिकार देती है। जो प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति शत्रुता का भाव सिखाती है। उस पर विजय प्राप्त करने का, उसको भोगने का अधिकार देती है—यह सेमिटिक परम्परा। इसी भाव ने आज पर्यावरण की समस्या को जन्म दिया है। जो वैर करना सिखाती है क्या उसे धर्म, पंथ या उपासना पद्धति कहा जा सकता है? अगर यह किसी का धर्म है तो असुरों, पापियों, बलात्कारियों, व्यभिचारियों का धर्म हो सकता है, देवों-मानवों का नहीं और ऐसे असुर-धर्मों के विनाश के लिए भगवान् का अवतार होता है।

कुछ समय पूर्व अमरीका, अफ्रीका, अरब व दक्षिण-पूर्व एशिया के 118 चिंतक-मनीषी एकत्रित हुए। उनमें बहस चली कि आतंकवाद की जड़ कहां है।

इसमें से निकलने का रास्ता क्या है? मानव जाति बचेगी कैसे? उसका मार्ग क्या है? अन्त में निष्कर्ष निकला कि 'Only one God, Only one Path.' मेरा भगवान् और मेरा मार्ग। यही एकमेव मार्ग है। इसलिए दूसरे को समाप्त करना, युनिटी नहीं यूनिफॉर्मिटि, एकत्व नहीं एकरूपता। जैसा मैं हूं वैसे ही हो जाओ—यह है आतंकवाद की जड़ में पैठी सोच। इसमें उन 118 चिन्तकों का सर्वसम्मत प्रस्ताव था कि इसमें से बाहर निकलना है हमें। प्लुअॅरल गॉड और प्लुअॅरल पॉथ—भगवान् के अनेक रूप हैं और अनेक मार्ग हैं जो सब समान हैं। सब एक ही दिशा में ले जाते हैं। इस बात की ओर दुनिया को ले जाना पड़ेगा और इसलिए हमें ओरिएण्टल दर्शन—पूर्व के दर्शन की ओर लौटने की आवश्यकता है। यही आने वाले समय में मानव-जाति को बचा सकती है।

जब हम हिन्दुत्व के उत्थान की बात करते हैं तब कहा जाता है कि हिन्दू शब्द बहुत प्राचीन नहीं है। न यह वेद में मिलता है न उपनिषद् में, न ब्राह्मणों में, न पुराणों में, न रामायण और न ही महाभारत में। वेदों में तो संस्कृति को विश्ववारा संस्कृति कहा गया है। जब भी धर्म का वर्णन हुआ 'एष मानव धर्म' के रूप में उल्लेख हुआ है। बाद में जो सेमिटिक मजहब दुनिया में आए उनके पूर्व की संस्कृतियां एक जैसी थी। भारत में जो प्राचीन विश्व धर्म, विश्व संस्कृति, विश्व जीवनमूल्य थे, उनको सेमिटिक मजहबों के जीवनमूल्यों से भिन्न दिखाने के लिए हिन्दू शब्द भारत में रूढ़ हो गया। यह इसी प्रकार की बात है—घी का अर्थ ही होता है गाय का घी। पर जब से बाजार में अन्य नकली घी भी आए तब उनसे पृथक्ता बतलाने के लिए शुद्ध गाय का घी लिखा जाने लगा।

ऐसे ही सेकुलर शब्द भारत की नहीं ईसाइयत की देन है। वहीं इसकी आवश्यकता हुई और वहीं यह शब्द अस्तित्व में आया। सारे यूरोप के इतिहास में चर्च और स्टेट का, धार्मिक शासन और राज्य शासन में परस्पर स्पर्धा, संघर्ष चलता रहा। राज्य शासन की चेष्टा रही धर्म शासन उसके अधीन रहे और धर्म शासन राज्य को अपने अधीन रखकर चलना चाहता था। इसलिए चर्च और सरकार में परस्पर संघर्ष चलते रहते थे और चर्च खुलकर राजनीतिक शक्ति संतुलन, स्पर्धा, संघर्ष, षड्यंत्र, हत्या, रक्तपात, सामूहिक हत्याकांड, अग्नि होम आदि का सहारा लेता था। इन खूनी संघर्षों से उपराम होने के लिए सैक्यूलर शब्द अस्तित्व में आया कि राज्य सत्ता और धर्म सत्ता (चर्च) दोनों एक-दूसरे में दखलंदाजी, हस्तक्षेप नहीं करेगा और राज्य किसी एक पंथ को नहीं सभी पंथों को समान मान्यता, सम्मान, सुरक्षा और सुविधा देगा। पंथ की भिन्नता के आधार पर राज्य उनसे कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसी दृष्टि से सैक्यूलर शब्द की उत्पत्ति हुई और यही इसका भाव था।

भारत में कभी भी धर्म शासन और राज्य शासन में संघर्ष नहीं हुआ और न ही राज्य ने पंथों के आधार पर कभी भेदभाव किया। हमारे यहां प्रारम्भ से ही सर्वधर्म समभाव का आदर्श रहा है। यह तो सेमिटिक परम्परा की देन रही है कि वे अपने से किंचित् भिन्न मत को सहते नहीं। न उनके God को ही न उनके अनुयायी को। वे उसको नष्ट कर देते हैं। इसलाम एवं ईसाइयत के प्रवेश से पूर्व भारत में धार्मिक अत्याचार की कोई कल्पना भी नहीं थी। इसलिए सेकुलर शब्द की यहां कोई आवश्यकता भी नहीं हुई। महारात्रि के गहन अंधकार में सेकुलर शब्द को संविधान में प्रवेश करवाया गया श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल के समय जब सब विरोधी पक्ष के नेता जेल के शिकंजों में जकड़े हुए थे। इमर्जेन्सी के समय हमारे संविधान का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा था। उसे प्रमाणित करने के लिए संविधान विशेषज्ञ विद्वान् लक्ष्मीमल सिंघवी के पास भेजा गया। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर नहीं किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने उन्हें बुलाया और पूछा, उन्हें किस बात की आपत्ति है। उन्होंने सेकुलर (Secular) शब्द का अनुवाद 'धर्मनिरपेक्ष' किया गया है जो सर्वथा अनुचित है। शासन-सरकार को सेकुलर Non-religious होना है, पर धर्मनिरपेक्ष नहीं। वह रिलिजन के आधार पर पक्षपात न करे यह तो उचित है, पर वह धर्म की अपेक्षा छोड़ दे, यह सर्वथा अनुचित है। इन्दिराजी ने पूछा रिलिजन और धर्म में क्या अन्तर है? उन्होंने पूछा, किसी दरिद्र प्रजा की सहायता करना आप अपना धर्म मानती हैं या नहीं? उत्तर मिला, 'हां, यह तो मेरा धर्म है।' 'परन्तु क्या यह आपका रिलिजन है?' 'नहीं, ऐसा तो नहीं है।' अर्थात् आपका धर्म और रिलिजन एक नहीं है। तब उन्होंने कहा कि शासक अपने इस धर्म को छोड़ देगा तो उसे शासन करने का कोई अधिकार नहीं होगा। शासन, रिलिजन निरपेक्ष हो, पर धर्मनिरपेक्ष नहीं। इन्दिराजी ने पूछा, फिर सेक्यूलर शब्द का अनुवाद क्या होना चाहिए? उन्होंने सुझाया कि इसे आप पंथनिरपेक्षता कह सकती हैं। इन्दिराजी ने तत्काल धर्मनिरपेक्षता शब्द को काटकर पंथनिरपेक्षता लिखा और उनसे हस्ताक्षर करवाए। उस विशेषज्ञ ने कहा कि संविधान के हिन्दी अनुवाद की जिस प्रामाणिक मूल लिपि को अभिलेखागार में रखा गया है, उसमें कहीं भी धर्मनिरपेक्षता शब्द नहीं है। पर अन्य प्रतियां जो छपीं उसमें धर्मनिरपेक्ष शब्द है। क्योंकि हिन्दू राजनेता हिन्दुओं के प्रति कपटाचार में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। वास्तव में सेकुलर शब्द का अर्थ है पंथनिरपेक्षता। राज्य किसी भी एक मत-पंथ का विशेष पक्ष न लेकर सभी पंथों को समान महत्त्व और सुविधा देगा। पर अपने देश में 'धर्म निरपेक्ष' का अर्थ हिन्दू धर्म के विरोध के रूप में किया गया। जबकि हिन्दू धर्म तर्क, विज्ञान, समाज, मनोविज्ञान से सुसंगत है, मानव स्वभाव के अनुकूल,

नारी पूजक, पर्यावरण पूजक, प्रकृति पूजक, सत्य-अहिंसा परायण, चराचर जगत् को अपने हृदय में स्थान देने वाला मानव धर्म है। देव धर्म है। विश्व धर्म है। सारे विश्व के भविष्य का आशा केन्द्र है। ऐसे मानवतावादी व्यापक उदार हिन्दू धर्म को ही धर्म निरपेक्षता की श्रेणी में रखा गया है। और विदेशी, स्थायी शत्रु भावापन्न मुसलमान-ईसाई इन्हें धर्मनिरपेक्ष के अन्तर्गत न रख करके ये धर्म (पंथ) सापेक्ष हैं। जबकि ये दोनों ही पंथ अराष्ट्रीय, अमानवीय, घोर हिंसा परायण, पर्यावरण विरोधी, प्रकृति विरोधी, नारी लोलुप, अवैज्ञानिक, अतार्किक, समाज मनोविज्ञान व मानव स्वभाव विरोधी, आसुरी पंथ हैं। यह हमारे देश-धर्म-संस्कृति के साथ घोर विडम्बना है। आत्मवंचना की स्थिति है और सारे विश्व में हास्यास्पद-सी स्थिति है जिससे पता नहीं हम कब मुक्त होंगे।

पारसी समाज जब पुनः भारत की शरण में आया तब हम सजग थे। यद्यपि ये भी हमारे ही, आर्यों के ही अंशज-वंशज थे जो एक समय में आर्यान (ईरान) में जाकर बस गए। अतः दो भाइयों का ही पुनर्मिलन था। फिर भी सजग थे। हमारे राजा ने दूध का गिलास भेजा कि इसमें कुछ भी विजातीय द्रव्य डालेंगे तो फट जाएगा। तो उन्होंने शक्कर डालकर भेजी जो दूध के साथ घुल-मिलकर दूध को और भी स्वादिष्ट, मीठा बना देती है और आज तक पारसी समाज दूध में शक्कर की तरह है, इन्हें कभी पहचान का संकट नहीं खड़ा हुआ। सुख-दुःख, स्वाधीनता-पराधीनता सब समय कंधे से कंधा मिलाते हुए देश-धर्म-संस्कृति के विकास में अपना यशस्वी योगदान भी देते आ रहे हैं। कभी भी समस्या बनकर नहीं रहे हैं। आज भी पारसी समाज में विवाह के अवसर पर प्रत्येक पिता पुत्र से प्रतिज्ञा करवाता है। हमने वचन दिया है—हम हिन्दू समाज के साथ घुल-मिलकर रहेंगे, दूध में शक्कर की तरह और आज तक इसका वे निर्वाह करते आए हैं।

पर इसलाम एवं ईसाइयत को प्रवेश देते समय यह सजगता नहीं रही। हमने विचार ही नहीं किया कि यह धर्म है भी या नहीं, इसका अपने संदर्भ में और विश्व के सन्दर्भ में क्या अवदान है, क्या इतिहास है। हम अपनी बेटी को दूसरे परिवार में देते समय सजग, पूरी छानबीन के बाद देते हैं, ऐसे ही पार्टनरशिप में व्यवसाय करने में सजगता बरतते हैं। पर राष्ट्र के संदर्भ में इसलाम व ईसाइयत को प्रवेश देते समय कोई विचार न कर धर्म के नाम पर प्रवेश देकर उन्हें सब प्रकार का संरक्षण एवं सुविधा प्रदान की और आज भी इन दोनों के द्वारा इतने गुल खिलाने के बाद भी हम यह विचार करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं कर रहे हैं कि ये धर्म नहीं साम्राज्य विस्तार के रूप हैं। विगत 1200 वर्षों से हम धर्माभास के शिकार हैं और आज हिन्दुओं की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई है कि सर्वधर्म समभाव के नाम पर उन्हें किसी भी छल-प्रपंच का शिकार बनाया जा

सकता है। इसी तरह किसी महापुरुष अथवा किसी संत, सूफी या नबी का नाम लेकर कोई भी कबाड़ उनके गले उतारा जा सकता है। यह एक गंभीर, मानसिक-वैचारिक विकृति तथा संकट का सूचक है। इसे किसी सद्भावना के नाम पर अनदेखा करना अपने आपको ही भुलावा देना है। यह जो धर्माभास की स्थिति है, भ्रम की स्थिति है, इसे गीता और भगवान् कृष्ण को अपनाकर ही दूर किया जा सकता है। स्वयं अर्जुन धर्माभास का शिकार होकर पहले अध्याय में जो धर्म का चित्र खींचता है उसे भगवान् कृष्ण पूर्णतया अस्वीकृत कर धर्म का वास्तविक चित्रण दूसरे अध्याय के 11वें श्लोक से गीता के 18वें अध्याय के अन्त तक करते हैं।

असुर धर्म का उदाहरण तो पहले ही अध्याय में पाते हैं। दुर्योधन, दुःशासन, धृतराष्ट्र असुर धर्म के उदाहरण हैं और इसका सैद्धान्तिक चित्रण भगवान् गीता के 16वें अध्याय में करते हुए कहते हैं इनका जन्म ही 'क्षयाय जगतोऽहिताः' (16/9, गीता) अर्थात् जगत् के विनाश के लिए होता है। भगवान् 16वें अध्याय के 19वें एवं 20वें श्लोक में कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।। 16/19, गीता

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।। 16/20, गीता

उन द्वेष करने वाले, अमंगल और क्रूर नराधमों को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही डालता रहता हूं।

हे कौन्तेय! वे मूढ़ लोग जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हुए मुझको प्राप्त न होकर फिर उससे भी अधम गति को प्राप्त होते हैं।

चौथे अध्याय में भगवान् स्वयं अपने अवतरण का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4/7, गीता

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।। 4/8, गीता

हे भरतवंशी! जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं का सृजन करता हूं (अर्थात् शरीर धारण करके प्रकट होता हूं)।

साधुओं की रक्षा करने के लिए, पापकर्म करने वालों का नाश करने के लिए और धर्म की भली-भांति स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूं।

इसमें शक्ति और शील का समन्वय है। शील द्वारा साधुओं की रक्षा और शक्ति द्वारा दुष्टों का नाश। सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए दोनों बातें आवश्यक है। इसमें से एक के अभाव में समाज लड़खड़ा जाता है और समाज टिक नहीं सकता। अगर सिर्फ शील द्वारा साधुओं की रक्षा कर दी जाए और दुष्टों को छोड़ दिया जाए तो वे पुनः समय पाकर आतंक मचाने लगेंगे। इतिहास इसका साक्षी है। हमने देश विभाजन भी स्वीकार कर लिया और मुसलमानों को भी रख लिया। फलतः पुनः अपना संख्याबल बढ़ाकर पुनः देश विभाजन जैसी स्थिति निर्माण कर दी है। अतः समाज को संतुलित रखने के लिए शील और शक्ति, दोनों आवश्यक हैं।

भगवान् विभूतियोग में पुनः कहते हैं—दमन करने वालों में मैं दण्ड हूं। '**दण्डो दमयतामस्मि**'। 10/38, गीता

विराट् रूप दर्शनयोग में अर्जुन जिज्ञासा करता है—हे भगवन्! आपने विभूति योग में अपना प्रथम परिचय आत्मा के रूप में दिया। इस विराट् रूप दर्शन में आपका भयानक रूप देखकर मैं कांप गया हूं। आपके अनेक मुखों से अग्नि ज्वालाएं निकल रही हैं और आपके अनन्त फैले हुए मुखों में सभी कौरव वीर भी भस्म हो रहे हैं। यह रहस्य समझ में नहीं आता। आप कौन हैं? मैं आश्चर्यचकित होकर पूछता हूं!

उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! ईश्वरीय न्याय में इनके पापों का फल मिलना प्रारम्भ हो चुका है। स्थूल दृष्टि से कर्म के फल का प्रभाव तुरन्त दिखाई नहीं देता। किन्तु सूक्ष्म विश्लेषण से कर्म का प्रभाव कर्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। जैसे औषधि खाते ही उसका प्रभाव शरीर में शुरू हो जाता है किन्तु स्थूल दृष्टि से उसका प्रभाव तब दिखता है जब बुखार टूट जाता है। पापियों के पाप का प्रभाव तुरन्त शुरू हो गया है। यह दुनिया स्थूल दृष्टि से बाद में देखेगी। डॉक्टर को सूक्ष्म लक्षणों से स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पहले ही दिख जाता है, रोगी को बाद में। दिव्य दृष्टि वालों को कर्म का प्रभाव पहले ही दिख जाता है और चर्म दृष्टि वालों को बाद में।

अर्जुन! मेरे दो रूप हैं—अन्तःप्रकृति में आत्मरूप और बाह्य प्रकृति में काल-रूप हूं। मैं आत्म रूप से अन्तर्जगत् पर शासन करता हूं और काल-रूप से बाह्य जगत् पर। भक्तों को मैं आत्मरूप से दर्शन देकर मोक्ष प्रदान करता हूं किन्तु अभक्तों को कालरूप से वश में रखता हूं और काल बन मृत्युचक्र में घुमाता हूं—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।

11/32 गीता

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।

11/33 गीता

मैं लोकों का क्षय करने वाला अत्यधिक बढ़ा हुआ काल हूं। यहां लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूं। प्रतिपक्षियों की सेनाओं में जो योद्धागण स्थित हैं वे सब तेरे मारे बिना भी नहीं रहेंगे (अर्थात् तेरे युद्ध न करने पर भी उनका नाश होगा ही)।

इसलिए तू उठ, यश को प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर समृद्धि सम्पन्न राज्य को भोग। ये (सब वीर) मेरे द्वारा पहले ही मारे गए हैं। हे सव्यसाचिन्! तू केवल निमित्त मात्र है। व्यक्ति को ईश्वरीय संकल्प पूरा करने में निमित्त मात्र बन जाना चाहिए।

ईश्वरीय संकल्प तो पूरा होकर रहेगा, यदि हम उसके अनुकूल संकल्प करें तो हमें ईश्वरीय शक्ति एवं ईश्वरीय आशीर्वाद मिलेगा, कर्म में भी सफलता मिलेगी, कर्म में दिव्यता भी आएगी और मुफ्त में लोकयश भी मिल जाएगा। इसके विपरीत चलने से भागवत संकल्प हमें कुचल डालेगा। वह काल-रूप बनकर खा जाएगा। स्वधर्म पालन न करने से लोक में अपयश भी मिलेगा। अतः हमें उस महान् यंत्री का यंत्र, ईश्वरीय न्याय का निमित्त और भागवत संकल्प का सेनानी बनकर अपना कर्तव्य पालन प्रभु की प्रीति के लिए करके कर्मों का फल भी भगवान् के चरणों पर नैवेद्य के रूप में चढ़ा देना चाहिए।

स्पष्ट है गीता के दर्शन को अपनाकर ही असुरधर्मी सेमिटिक परम्परा से मुक्त हो सकते हैं।

सेमिटिक परम्परा विशेषकर ईसाइयत ने पर्यावरण का शोषण करने की प्रेरणा दी है और आधुनिक विज्ञान ने पर्यावरण के शोषण को शक्ति दी है जिससे ग्लोबल वार्मिंग जैसे संकट खड़े हो गए जिससे स्वयं मानव के अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है। इसके समाधान के लिए अनेक सम्मेलन हुए लेकिन कहीं से इस समस्या का समाधान नहीं निकल पाया। समाधान के लिए आखिरकार सबने भारतीय चिन्तन दर्शन की ओर देखा और इससे मुक्ति अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त एवं गीता के यज्ञ चक्र को स्वीकार करके ही हो सकते हैं। यज्ञ चक्र का प्रतिपादन गीता के तीसरे अध्याय के 10वें से लेकर 16वें श्लोक तक हुआ है।

आज देश में भ्रष्टाचार की सबसे बड़ी समस्या है। सर्वोच्च सत्ता भ्रष्ट है तो सारा देश नष्ट है। स्वाधीन भारत में भ्रष्टता की कथा स्वयं पंडित नेहरू से प्रारम्भ होती है, पक्षपात (सदैव मुसलमानों व ईसाइयों का पक्ष लिया, हिन्दुओं

को दबाने का प्रयास), भाई-भतीजावाद (अपने परिवार व इष्ट-मित्रों के अलावा किसी को बढ़ने नहीं दिया, उठने नहीं दिया)। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सन् 1945 में अकस्मात् लुप्त हो जाने के पश्चात् जापान सरकार ने स्वाधीन भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र द्वारा सूचित किया था कि नेताजी की अमानत स्वर्णालंकारों एवं मणिरत्नों से भरे हुए दो बड़े ट्रक उनके पास सुरक्षित हैं, जो भारत में मंगवा लिए जाने चाहिए। पं. नेहरू ने अपना एक विशेष दूत भेजकर वे दोनों ट्रक भारत की राजधानी में मंगवा लिए थे, किन्तु बाद में वह अपार रत्न भण्डार किस खाते में या किसकी जेब में गया उसका आज तक समाधान नहीं हो सका है, आदि-आदि। यह भ्रष्टता ऊपर से नीचे की ओर व्यापती है। भ्रष्टाचार झरना है जो ऊपर से नीचे फैलता जाता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। 3/21, गीता

श्रेष्ठ (पुरुष) जो-जो आचरण करता है, अन्य मनुष्य भी वैसा ही (आचरण) करते हैं। वह जिसे (श्रेष्ठ कहकर) प्रमाणित कर देता है, लोग उसी के अनुसार बरतने लगते हैं।

इस भ्रष्टता से मुक्ति हम गीता दर्शन को अपनाकर ही पा सकते हैं। इसी दृष्टि से 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' लेख इसमें शामिल है।

विगत 1200 वर्षों से धर्माभास का शिकार होकर, देश के शत्रु और मित्र की पहचान भुलाकर हमने अपना राष्ट्रीय चरित्र दुर्बल किया। अंग्रेजों ने हमारे राष्ट्रीय चरित्र को दुर्बल करने और व्यक्तिगत चरित्र को भी नष्ट करने और जिन आस्थाओं आधारों पर हम खड़े थे उससे भी च्युत करने के लिए हमारी शिक्षा व्यवस्था एवं अन्यान्य सभी व्यवस्था को बदल दिया। उससे हम मात्र एक क्लर्क की भूमिका निभा सके और व्यवसाय जगत्, उद्योग जगत् में अनेकों टैक्स लगाये। ऐसे कानून बनाए जिससे व्यापारी या उद्योगपति बेईमान, चोरी करने वाला बन जाए या फिर वह मजदूर बन जाए। हमारी संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटे। इसके अनुकूल कानून बनाने की शृंखला प्रारम्भ हुई जिससे हमारा व्यक्तिगत चरित्र भी दुर्बल हुआ और हमारे आधारों यथा—वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत और हमारे ऋषि-मुनियों पर अनास्था का निर्माण कर शून्य की स्थिति निर्माण हुई। उसकी भरपाई के लिए हम पश्चिम की जूठी (उच्छिष्ठ) नकल करने वाले, जूठी पत्तल चाटने वाले बन गए। उनके कचरे को, अपसंस्कृति को स्वीकारने वाले बनते जा रहे हैं। हममें अच्छाई किसी की नहीं। न अपनी न अंग्रेजों की (पश्चिम की, उनमें श्रम के प्रति, अपने कर्तव्य के विषय में जो महत्त्व बुद्धि है। अपनी भाषा,

वेशभूषा, खान-पान देश इतिहास के प्रति जो गौरव बुद्धि है) और बुराई, दोनों की है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्व से च्युत व्यक्ति श्रेष्ठ बातों को, प्रेरणा को ग्रहण करने में अक्षम होता है।

नकल से हम नकली बनते हैं। सफलता की सम्भावना कम होती है। प्रेरणा में हम नये बने रहते हैं क्योंकि हम देखते हैं वह बात हमारी परम्परा में है या नहीं। अगर नहीं तो भारतीयकरण कर उसे अपनी आवश्यकता और अपनी प्रकृति के अनुसार स्वीकारते। इससे दोनों ही नवीन बने रहते हैं—जहां से प्रेरणा ली वह भी और हम भी। सफलता की पूरी सम्भावना रहती है। फिर नकल और प्रेरणा में और भी कई बातों का अन्तर होता है। नकल में हलकी बातों को, निकृष्ट बातें ग्रहण की जाती हैं। प्रेरणा में श्रेष्ठ बातें ग्रहण करते हैं। नकल में तो सिर्फ बहना होता है, जो सहज होता है। प्रेरणा ग्रहण करना कष्टसाध्य होता है क्योंकि इसमें अपने को तपाना पड़ता है, गलाना पड़ता है। अतः नकल किसी की नहीं, प्रेरणा हर कहीं से। तभी हम देखते हैं कि भगवान् दत्तात्रेय जो 24 गुरु स्वीकारते हैं, उन्होंने पृथ्वी से गाम्भीर्य की, आकाश से उदारता की, सूर्य से दिव्यता की, चन्द्रमा से शीतलता की, अग्नि से ऊर्जा की, शिक्षा ली जो सभी विषयों को भस्मसात् करके प्रकाश उत्पन्न करता है। उन्होंने कीट, पतंग, हरिण, मकड़ी, कुंवारी कन्या, पिंगला नाम की वेश्या तक से जीवनोपयोगी और वैराग्यनिष्ठ शिक्षाएं ग्रहण कीं। काशी में यह नियम है कि ब्राह्ममुहूर्त में संन्यासी गंगा-स्नान करके विश्वनाथजी का गंगाजल से अभिषेक करते हैं, तो आद्य शंकराचार्यजी भी गंगा-स्नान करके काशी विश्वनाथजी का अभिषेक करने जा रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा सामने से एक चाण्डाल सपत्नीक चार कुत्तों के साथ बढ़ा चला आ रहा है। अपने मार्ग को अवरुद्ध होता देखकर आचार्यश्री ने कहा, 'अरे! हटो, हटो। यह सुनकर चाण्डाल ने पूछा, 'हे द्विजवर! आपने अन्नमय शरीर को अन्नमय शरीर से दूर होने के लिए कहा है अथवा चैतन्य को चैतन्य से अलग करने के लिए 'हटो-हटो' कहा है? क्या गंगाजल में या चाण्डाल-गृह के पिछवाड़े के कीचड़ में प्रतिबिम्बित होने से अम्बरमणि सूर्य में कुछ अन्तर आ जाता है? अथवा स्वर्ण कलश या मिट्टी के घड़े में प्रतिबद्ध आकाश में क्या कुछ भेद है? जैसे सूर्य व आकाश प्रतिबिम्बन व उपाधि-ग्रहण से असंग हैं—उसी प्रकार निस्तरंगित सहजानन्दसागररूप प्रत्यागात्मा द्विज, चाण्डाल आदि भेदों से नितरां अस्पृष्ट है, ये भेद महान् भ्रम मात्र हैं।'

यह सुनते ही आचार्य श्रीशंकर तत्क्षण कहते हैं जिसकी ऐसी मति है वह मेरा गुरु है। ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। अतः नकल किसी की नहीं प्रेरणा हर कहीं से। इसी आधार पर हमने ज्ञान के द्वार सदा खुले रखे। जहां से भी श्रेष्ठ बातें

प्राप्त हों, उसे ग्रहण करें। पर हम स्वयं 'स्व' से च्युत हों, मतिभ्रम के शिकार हों तो उससे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं कूड़ा-कचरा ही आएगा और स्वाधीनता के बाद से यही सब हो रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वयं गीता दर्शन को अपनाकर 'स्व' में स्थित हों, तभी हम अन्यत्र से श्रेष्ठज्ञान ग्रहण करने के पात्र बनेंगे।

आज गीता विश्व की मांग बनती जा रही है। इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। विदेशों में विविध क्षेत्रों में गीता का उपयोग हो रहा है। पर दुर्भाग्य है हमारे अपने देश की सरकार का, क्योंकि वह कोर्ट के निर्णय को भी मान्य नहीं कर रही है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति शम्भूनाथ श्रीवास्तव ने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय 'श्यामल रंजन मुखर्जी बनाम निर्मल रंजन मुखर्जी, ए.आई.आर. 2007 में केन्द्र सरकार से कहा कि वह संविधान के अनुच्छेद 51 (क) मूल कर्तव्य के अन्तर्गत भगवद्गीता को राष्ट्रीय धर्मग्रंथ घोषित करे। जब इस कार्य के लिए सरकार आगे नहीं आती तब समाज व शिक्षण संस्थाओं का दायित्व है कि वे गीता के कार्य को आगे बढ़ावें। इस दृष्टि से गीता के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार करने का प्रयास किया है। डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी की कार्यव्यस्तता तथा अचानक दुर्घटना में शरीर शांत हो जाने से कार्य अधूरा रह गया और कई पाठ अधूरे रह गए।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—वे देश भाग्यवान है जो चिरन्तन स्वदेश को देश के इतिहास में खोज लेते हैं। बाल्यकाल में इतिहास ही देश के साथ परिचय करा देता है। किन्तु हमारे यहां बिल्कुल उलटा है। देश का इतिहास ही हमारे स्वदेश को आच्छन्न किये हुए हैं। अंग्रेजों के लड़के यह जानते हैं कि उनके बाप-दादों ने अनेक युद्ध जीते, अनेक देशों पर अधिकार किया। और वाणिज्य-व्यवसाय बढ़ाया। वे स्वयं भी रणगौरव, धनगौरव और वाणिज्यगौरव के अधिकारी बनना चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वजों ने देश अधिकार और वाणिज्य-व्यवसाय नहीं किया। यही जानने के लिए है भारतवर्ष का इतिहास। उन्होंने क्या किया हम नहीं जानते।

यह कैसी विडम्बना और दुर्भाग्य की स्थिति है। जबकि इसके विपरीत जितना श्रेष्ठ सात्त्विक देश उज्ज्वल इतिहास, सत्शास्त्र एवं सत्महापुरुषों की अखण्ड परम्परा हमें प्राप्त हुई वह शायद ही विश्व के अन्य देश को प्राप्त हुई हो?

यह ओबराय समग्र खण्ड पांच में सम्पूर्ण हो रही है। इन पांचों खण्डों में हमारे वास्तविक, गौरवपूर्ण व तेजस्वी देश, इतिहास, शास्त्र, परम्परा, महापुरुषों की अखण्ड परम्परा को उजागर करने का प्रयास किया है। इसमें भारत को भारत की आंख से, वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, जैन-बौद्ध, गुरुग्रंथ साहब की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। आज भी हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भारत को इसलाम एवं ईसाइयत तथा कम्यूनिस्ट की दृष्टि से

देखने की दृष्टि प्रभावी है। विश्व के किसी भी देश के इतिहास को आक्रान्ताओं के नाम से न विभाजित किया जाता है और न ही पढ़ाया जाता है। और न ही विदेशी आक्रान्ताओं के नाम से देश में कस्बों-मुहल्लों, सड़कों, नगरों का नामकरण ही होता है। स्वाधीनता के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन आना चाहिए था। पर पंडित नेहरू इन्हीं परम्पराओं में शिक्षित थे और इन्हीं के प्रति गौरवबोध (उनके अनुसार राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह भ्रमित हिन्दू देशभक्त थे) होने के कारण परिवर्तन तो दूर की बात रही उसमें और अधिक विकार आया। इसलाम, ईसाइयत एवं कम्यूनिज्म की धारा जिस-जिस देश में गयी वहां पूर्व की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास एवं धर्म-पंथ को समूल नष्ट करके अपनी विदेशी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास एवं पंथ को थोप दिया। भारत इसका अपवाद नहीं है। हमारी पड़ोसी से नहीं पटती तो वह भी हमारी अच्छाई को देख नहीं पाता। वह अच्छाई को भी बुराई के रूप में पेश करता है, प्रसारित करता है। ये तीनों विदेशी शत्रुभावापन्न धारायें जो हमारी संस्कृति को समूल नष्ट करके अपनी विदेशी संस्कृति को थोपना, हमको सदा गुलाम बनाये रखना चाहती है वे हममें अच्छाई को कहां से देखेंगी?

अतः भारत को यथार्थ रूप से समझने के लिए भारत को भारत की आंख से ही देखना होगा। ये पांचों खण्ड भारत को भारत की आंख से देखने की दृष्टि प्रदान करते हैं भारत की समस्याओं के मूल में जाने का और उससे उबरने का मार्ग भी बताते हैं।

पश्चिम में और सारे विश्व में दो प्रकार की शक्तियां हैं। एक तो आसुरी शक्ति है जो अपने देश के हित में अन्यों का, सारी दुनिया का शोषण करना चाहती है। और दूसरी देवी शक्ति, सज्जन शक्ति है जिन्हें अपने देश के साथ-साथ सारी दुनिया की हित चिंता है, उनकी दृष्टि भारत पर है, नवीन नहीं प्राचीन भारत पर है, वैदिक, औपनिषदिक, वैदान्तिक, गीतोक्त भारत पर है, उनको भी सामने लाने का प्रयास किया है। आज की नयी पीढ़ी को अखण्ड भारत और वृहत्तर भारत की जानकारी नहीं है अतः उनके लिए तड़प भी नहीं है। अतः उसको प्रकट करने का प्रयास किया है। वेद भगवान् ने भारतवासियों को लक्ष्य दिया था जिसे 1000-1200 वर्षों से हमने खो सा दिया है उसे पुनः उजागर करने का प्रयास किया है, वह है—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। और सचमुच प्रायः सारा विश्व भारत से शिक्षा ग्रहण करना चाह रहा है। इसके लिए आवश्यक है हम इसका सजीव उदाहरण प्रस्तुत करें।

एक ही विषय पर कई प्रवचन थे उनको एक ही प्रवचन में समाविष्ट करने का प्रयास किया है। पंचम खंड में गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा, गीता का प्रभाव भारतीय मनीषा पर, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में गीता की भूमिका, वैज्ञानिक

जगत् और गीता, गीता के विविध क्षेत्रों में अवदान को विस्तृत और अद्यतन (Up to date) करने का प्रयास किया है। गीता का ध्यान, कबीर के दर्शन पर गीता का प्रभाव, गीता का मनोविज्ञान एवं वर्तमान चारित्रिक संकट के निरसन में गीता का मार्गदर्शन अधूरे थे उसे उनसे प्राप्त दृष्टि (प्रज्ञा) के द्वारा मैंने पूर्ण करने का प्रयास किया है। रामायण की जो सामग्री तीसरे खण्ड में जाने से रह गयी थी, और एक लेख प्रेस की भूल से अधूरा छपा था, उन सबको परिशिष्ट में संग्रहित किया है। पुनरावृत्ति को हटाने का प्रयास किया पर कतिपय लेखों में विषय खण्डित होने के भय से हटाया नहीं जा सका। पुरुलिया में विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना डॉ. हरवंशलाल ओबराय के कर कमलों से तथा महामण्डलेश्वर परमपूज्य स्वामी विष्णुपुरीजी महाराज और विश्व हिन्दू परिषद् के प्रदेश सचिव श्री बालकृष्ण नायकजी द्वारा जन्माष्टमी-पर्व के दिन हुई और लगातार तीन वर्षों तक डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का जन्माष्टमी पर प्रवचन हुआ था। प्रथम वर्ष का प्रवचन टेप नहीं किया जा सका। बाद के दोनों प्रवचन इसमें शामिल हैं।

पुस्तक प्रकाशन के निमित्त आर्थिक सहयोग श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय देहरादून से 21 हजार, पुरुलिया के श्री विमल शाहजी से 30 हजार, श्री रमेश टीबड़ेवाल से 5 हजार और परिचित एवं मित्रों से 40 हजार रुपये की अग्रिम राशि, श्री बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय कोलकाता से अग्रिम 11 हजार, राजस्थान परिषद् कोलकाता से 11 हजार की अग्रिम राशि प्राप्त हुई। इन सबका हृदय से कृतज्ञ हूं। प्रूफ रीडिंग में श्रद्धेय स्वामी उत्तमानन्दजी, श्री तोलाराम लाठ, श्री अशोक परिहार, श्री विनोद शर्मा, प्रो. मनोहरलाल ओहरी एवं अखिलेश प्रतापसिंह से मदद मिली। इन सबका हृदय से आभारी हूं। हमेशा की तरह सांखला प्रिंटर्स ने पूर्ण सहयोग करते हुए, श्रेष्ठ सुझाव देते हुए तत्परता से मुद्रण कार्य को सुन्दरता से सम्पन्न किया। उनके प्रति विशेष आभार है।

यह पुस्तक पांच खण्डों में पूर्ण हो रही है। मैं इस कार्य में 18 वर्ष की उम्र में जब I.A. में था तब से प्रवृत्त हुआ था। आज 55 वर्ष की अवस्था में ईश्वर की कृपा तथा परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से पूर्ण हो रहा है। मेरे इस लक्ष्य को साकार होता देखकर अपार संतोष एवं आनन्द की अनुभूति हो रही है। इस पांचवे खण्ड में मेरा स्वयं का भी एक लेख 'भारतीय संस्कृति' शामिल है।

इन पांचों खण्डों में कोई त्रुटि या कमी है तो मनीषीवृन्दों के सुझावों का स्वागत है जिससे अगले संस्करण में उनका यथायोग्य समावेश किया जा सके। मुझे प्रथम तीन खण्डों पर बहुतों से प्रत्यक्ष एवं फोन पर बधाई और शुभकामना प्राप्त हुई और चार पत्र प्राप्त हुए जिसमें दो आशीर्वाद एवं दो बधाई व शुभकामना के पत्र हैं, जो इसी खण्ड में समाविष्ट हैं।

संस्मरण

प्रो. ओबराय द्वारा मंत्र-सिद्धि

मेरा भतीजा मधुसूदन लाठ, बाल्यावस्था में हृदय-रोग से पीड़ित हो गया। उसके हृदय के दो वॉल्व एओर्टिक (Aortic) एवं माइट्रल (Mitral) अपना स्वाभाविक कार्य करने में आंशिक अक्षम हो गए। यह कोई सन् 1977-78 की बात रही होगी। अनेकों बार उसे दौरे-पड़ते एवं हम लोग उसकी चिकित्सा हेतु उसे लेकर रांची जाते रहते। इसी प्रकार वर्षों बीत गए। मधु के बड़े भाई 'सन्तोष' (अब स्वामी सुबोधगिरि महाराज) रांची में दर्शनशास्त्र के स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए रांची गए तब उनका सम्पर्क मेसरा अभियान्त्रिकी महाविद्यालय के व्याख्याता प्रो. डॉ. हरवंशलाल ओबराय से हुआ।

एक समय की बात है कि मधु को अचानक भीषण दौरा पड़ा। हम लोगों ने तत्काल उसे रांची के एक सामाजिक सेवा सदन में भरती कर चिकित्सा करवाने की व्यवस्था की। दौरा गंभीर था। मधु के चिकित्सक डा. बरमेश्वर प्रसाद, जो रांची आयुर्विज्ञान महाविद्यालय के औषध विभागाध्यक्ष थे, ने बताया कि अवस्था चिन्ताजनक है। वॉल्व बदलने आवश्यक हैं, वह काम रांची में होना संभव नहीं है। रोगी की अवस्था गंभीर है एवं इस अवस्था में रोगी को कहीं भी ले जाना संभव नहीं है। ईश्वर पर भरोसा रखते हुए हमें दवाओं के भरोसे रोगी के एक बार ठीक होने की प्रतीक्षा करने के अलावा कोई चारा नहीं है। दौरा इतना गंभीर था कि ईश्वर पर भरोसा करने के अलावा कुछ भी किया जाना संभव नहीं था। ऐसी स्थिति में हम सब निराश एवं उदास थे। अचानक प्रो. ओबराय शाम को पधारे। हम लोगों को ढाढ़स बंधाया एवं मधु के बिस्तर के पास बैठकर कई बार 'राम रक्षा-स्तोत्र' का पाठ किया। मधु को भी सुबह-शाम उस स्तोत्र का पाठ करने के लिए कहा एवं हम लोगों को ईश्वर पर भरोसा रखते हुए इस स्तोत्र का पाठ समय-समय पर करने की हिदायत दी।

प्रायः हर शाम प्रो. ओबराय अस्पताल आ जाते एवं राम रक्षा-स्तोत्र का पाठ करते। ईश्वर कृपा, चिकित्सकों के प्रयास एवं प्रो. ओबराय के मंत्र पाठ ने चमत्कार दिखाया और मधु धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया। तत्पश्चात् मुंबई ले जाकर मधु का वॉल्व प्रत्यारोपित किया गया। आज उस घटना को घटे करीब 30 साल बीत चुके हैं। मधु अब दो सुन्दर कन्याओं का जनक, एक सफल रेलवे कान्ट्रेक्टर, अपने सम्पूर्ण परिवार के सुख-दुख में हर प्रकार से सहायक व्यक्ति है।

प्रो. ओबराय की मंत्र-सिद्धि का चमत्कार हो या ईश्वरीय कृपा किन्तु हमारा सारा परिवार प्रो. ओबराय के प्रति चिरऋणी है एवं रहेगा।

अयोध्या पहाड़ के वनवासियों के बीच प्रो. ओबराय

पश्चिम बंगाल के दक्षिण क्षेत्र का अन्तिम जिला पुरुलिया। पुरुलिया जिले की अधिकांश सीमा वर्तमान झारखण्ड प्रान्त से लगती है। इस जिले के बाघमुन्डी ब्लॉक में अवस्थित अयोध्या पहाड़ अत्यन्त रमणीक एवं पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ के अधिवासी अधिकांश संथाल जाति के हैं। यह एक स्वीकृत जन-जाति है।

इस पहाड़ का नाम अयोध्या क्यों पड़ा, इससे जुड़ी एक अत्यन्त रोचक कथा एवं जन विश्वास है। उस क्षेत्र के वनवासियों का विश्वास है कि रामायण काल में भगवान राम, माता सीता एवं लक्ष्मण वनवास के दौरान इस क्षेत्र में आये थे। इस पहाड़ की एक चट्टान पर माता सीता ने अपना केश-विन्यास किया था। जिस क्षेत्र में यह चट्टान अवस्थित है वहाँ कुछ इस प्रकार के वृक्ष हैं जो केशनुमा रेशे समय-समय पर बिखेरते रहते हैं। उस क्षेत्र से कोई भी वनवासी यदि गुजरता है तो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक एक छोटा-सा पत्थर उस चट्टान के नीचे रख कर, इस चट्टान को प्रणाम करके ही आगे बढ़ता है। संभवतः इन्हीं कारणों से वहाँ के वनवासियों ने इस स्थान का नाम 'अयोध्या' रख दिया होगा।

भारतीय वनवासी 'कल्याण आश्रम' नामक संस्था देश के वनवासी समाज एवं वनवासी क्षेत्रों के उन्नयन के प्रति समर्पित एक सामाजिक संस्था है। 'कल्याण आश्रम' ने उस क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण कर पाया कि अयोध्या पहाड़ के वनवासी अत्यन्त निर्धन, अशिक्षित एवं विवश है। कल्याण आश्रम ने पहाड़ के नीचे बाघमुन्डी ग्राम में सन् 1978 में एक छात्रावास की स्थापना की और अयोध्या पहाड़ पर बसे विभिन्न ग्रामों से बच्चों को संग्रहित कर छात्रावास में निःशुल्क भोजन, आवास आदि की व्यवस्था की। साथ ही उन छात्रों को स्थानीय राजकीय विद्यालय में प्रवेश दिलवाकर उनके समुचित अध्ययन का दायित्व स्वीकार किया। सेवाव्रती कार्यकर्ताओं ने उन्हें हर प्रकार से योग्य बनाने का बीड़ा उठाया एवं उनमें राष्ट्रीयता एवं हिन्दुत्व के भावों को प्रतिष्ठापित करने के दायित्व का निर्वहन किया। यह प्रशंसनीय कार्य अभी भी किया जा रहा है।

अयोध्या पहाड़ के वनवासियों के मन में भगवान् राम एवं माता सीता के प्रति अगाध श्रद्धा को देखते हुए कल्याण आश्रम ने अयोध्या पहाड़ के प्रमुख ग्राम 'अयोध्या' में भगवान् राम का एक सुन्दर-सा मन्दिर बनवाया। हर वर्ष रामनवमी का उत्सव मनाना प्रारंभ किया एवं पहाड़ पर अवस्थित 36 ग्रामों के वनवासियों को आमंत्रित कर भगवान् राम के प्रसाद स्वरूप एक सहभोज का आयोजन प्रतिवर्ष करना प्रारंभ किया। इस कार्यक्रम में संथाली भाषा में रामायण के विभिन्न प्रसंगों का प्रवचन एवं बांग्ला भाषा में अन्य भक्तिमूलक गीत, भाषण आदि का आयोजन आज भी किया जाता है।

ऐसे ही एक कार्यक्रम (संभवतः सन् 1981) में, भारतीय मनीषा एवं दर्शन के उद्भट विद्वान, रांची के संस्कृति विहार के निदेशक, बी.आई.टी. मेसरा के

व्याख्याता प्रो. डॉ. हरवंशलाल ओबराय मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। उन्होंने 'कल्याण आश्रम' के कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सहभोज के दौरान स्वयं ही वनवासी बंधुओं को प्रसाद परिवेशन किया। उनके साथ बैठकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण किया। कार्यक्रम के दौरान होने वाले लोक-नृत्य में भी सहभागी बने एवं पूरे कार्यक्रम को एक अद्‌भुत श्रेष्ठता प्रदान की।

कार्यक्रम में, अपने भाषण के अन्तर्गत, मैंने सीता-चट्टान, सीता माता के केश-विन्यास आदि की चर्चा की। यद्यपि मेरा भाषण बांग्ला भाषा में हुआ, तथापि प्रो. ओबराय ने, बांग्ला भाषा का साधारण ज्ञान होने के बावजूद, मेरी बातों को पकड़ लिया और उस स्थान के दर्शन करवाने का आग्रह किया। स्थान, यद्यपि डेढ़ कि.मी. की दूरी पर ही था किन्तु मार्ग दुर्गम था। इन सब बातों की परवाह किए बिना प्रो. ओबराय उस स्थान पर गए। अतीव भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक उस चट्टान का पूजन किया। वृक्षों से झरने वाले माता सीता के केशों का संग्रह किया एवं भविष्य में इस क्षेत्र एवं विषय पर व्यापक शोध करने हेतु, समुचित समय लेकर आने का वचन दिया।

विधाता को कुछ और ही स्वीकार था। सन् 1983 में रायपुर (छत्तीसगढ़) स्टेशन पर रेल दुर्घटना में भारतीय दर्शन का यह महान् पंडित, हिन्दू संस्कृति का यह महान् पुजारी, भारत का यह महान् देशभक्त हम से बिछुड़ गया। आज भी 'सीता-चट्टान' किसी अन्य 'ओबराय' की प्रतीक्षा कर रही है।

सन् 1983 में थाईदेश (श्यामदेश) के बैंकॉक शहर में आयोजित 'विश्व गीता सम्मेलन' का एक अविस्मरणीय संस्मरण

परम श्रद्धेय प्रो. डॉ. हरवंशलाल ओबराय के साथ हम अन्य 12 लोगों को भी उपरोक्त सम्मेलन में सहभागिता करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। रांची के 'संस्कृति विहार' से श्रीमद्‌भागवत गीता संबंधित एक चित्र प्रदर्शनी लेकर हम बैंकॉक हवाई अड्डे पर उतरे। सारी औपचारिकताएं पूरी होने के पश्चात् जब हमें पता चला कि हमारे सारे सामान (लगेज) एवं प्रदर्शनी के चित्र आदि भूलवश विमान से उतारे नहीं गए और सिंगापुर के लिए उड़ान भर चुके हैं। एयर इंडिया के अधिकारियों ने हमें क्षतिपूर्ति स्वरूप प्रति व्यक्ति 70 डालर (उस समय 1 डालर का मूल्य भारतीय मुद्रा में 9 रुपये था) देने की पेशकश की जिसे प्रो. ओबराय ने, शालीनता पूर्वक, लेने में असमर्थता प्रकट कर दी। कारण, एयर इंडिया के अधिकारियों ने हमें आश्वासन दिया था कि सारा सामान आगामी दिन प्रातः 9 बजे तक हमारे होटल में पहुँचा दिया जाएगा। ओबरायजी का कहना था कि उस वक्त तक हमें केवल टूथ ब्रश, टंग क्लीनर एवं टूथ पेस्ट की आवश्यकता होगी। टॉवेल, साबुन आदि होटल से मिल ही जाएंगे। अतः किसी प्रकार की क्षति जब नहीं हो रही है तो क्षतिपूर्ति स्वीकार करना अनुचित होगा। ऐसे थे प्रो. ओबराय।

—श्री तोलाराम लाठ

डॉ. हरवंशलाल ओबराय के संस्मरण

ऋषि दधीचि का पावन बलिदान दिवस था। शाम का समय था। इस पावन प्रसंग की चर्चा प्रो. ओबरायजी कर रहे थे। वहां मैं भी कुछ बन्धुओं के साथ उपस्थित था। तब एक सज्जन जो कभी-कभी संस्कृति विहार आया करते थे, कहने लगे—यह प्रसंग आज के सन्दर्भ में सत्य नहीं है। तब डॉ. ओबराय ने कहा—सत्य तो मल से भरे हुए गुदे भी हैं। पर जब आप किसी साक्षात्कार में जाते हैं तब अपना सजा-धजा चेहरा ही दिखाते हैं, मल से भरे हुए गुदे तो नहीं। उसे तो अच्छी तरह ढककर रखते हैं। उसी प्रकार अपनी संस्कृति, सभ्यता, देश, इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को ही अपने सामने एवं अन्यों के सामने रखना चाहिए, Dark portion को नहीं। त्रिगुणों के कारण कुछ गन्दगी आ ही जाती है, उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। और आदर्श तो हमेशा ऊंचा होना चाहिये। हां, यह अलग बात है कि हम किस स्तर तक उसका पालन कर पाते हैं।

मानव सेवासंघ के प्रतिष्ठाता परमश्रद्धेय स्वामी शरणानन्दजी से डॉ. ओबरायजी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। स्वामीजी जब रांची आते थे, तब अवश्य संस्कृति विहार में भी पधारते थे। उनके सत्संग का आयोजन भी वहां रहता था। एक बार ऐसे ही चर्चा प्रसंग में कहने लगे—आप क्या हिन्दू-हिन्दू कहते रहते हो, मानव की बात किया करो। तब डॉ. ओबराय ने बड़ी विनम्रता से धीरे से कहा—चूंकि आप हिन्दू हैं इसलिए आप मानवता की बात कर रहे हैं। अगर आप मुसलमान या ईसाई होते तो मानवता की बात नहीं करते। मुसलमान या ईसाई की बात ही करते।

तब स्वामीजी डॉ. ओबराय की बात स्वीकार कर मौन होकर मुसकराने लगे। तब डॉ. ओबराय ने कहा—आदर्श तो हमेशा ही ऊंचा रखना चाहिये। जैसे—सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः—पर दृष्टिकोण हमेशा व्यावहारिक होना चाहिये।

हिन्दू इतना उदार और सहिष्णु है कि उदारता जो इसका भूषण है, वही दूषण हो गया है। वरदान अभिशाप हो गया है। स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने इसे सद्‌गुण विकृति कहा है। स्वामी रामतीर्थ ने यथार्थ व्यावहारिकता का अभाव कहा है। अतः हमें यह तो प्रयास करना चाहिये कि सद्‌गुण दुर्गुण न हो जाए और उसका यथार्थ व्यावहारिकता के साथ उचित सामंजस्य हो।

हिन्दी साहित्य से एम.ए. पास एक छात्रा तुलसीकृत मानस और वाल्मीकि रामायण पर अनर्गल आरोप लगाने लगी। तब डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी ने कहा—तुलसी के मानस की चार चौपाई और वाल्मीकि रामायण का एक श्लोक सुनाओ, पर वह सुना नहीं पाई। जब श्रीमान् जी ने डांट लगाई तो उसने कहा—मैं एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास हूं। क्या मैं रामायण नहीं जानती? तब श्रीमान्जी ने कहा—जिस प्रकार मक्खी 56 प्रकार के पकवानों पर बैठती है पर वह भोजन से रस ग्रहण करने के लिये या भोजन करने के लिये नहीं वरन् विष्ठा करने के लिये बैठती है। वैसे ही कुछ आधुनिक या नास्तिक लोग धर्मग्रंथों (रामायण, महाभारत आदि) से कुछ पाने के लिये अध्ययन नहीं करते वरन् उस पर विष्ठा करने के लिए बैठते हैं।

एक बार पटना एयरपोर्ट पर श्री आनन्दमूर्तिजी उतरे। संयोग से डॉ. ओबराय को वहीं से कहीं की फ्लाइट पकड़नी थी। अत: दोनों का आमना-सामना हो गया। श्रीआनन्दमूर्तिजी अपने संन्यासी शिष्यों से घिरे हुए थे। तब डॉ. ओबरायजी ने एक जिज्ञासा का समाधान चाहा। वे टालमटोल करने लगे, तब भी उन्होंने अपनी जिज्ञासा रख ही दी। आप तो गृहस्थ हैं। माताजी भी आपके साथ हैं और आप दोनों रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हैं। आप शिष्यों को संन्यास की दीक्षा कैसे दे रहे हैं? तो उन्होंने कहा—इसका उत्तर तो मेरा कोई भी शिष्य दे देगा। फिर कहने लगे—रामकृष्ण परमहंसजी ने गृहस्थ होते हुए भी विवेकानन्दादि को संन्यास की दीक्षा दी। तब डॉ. ओबराय ने बताया कि रामकृष्णदेवजी ने तोतापुरीजी से विधिवत संन्यास की दीक्षा ली थी। स्वयं का विरजा होम किया था। अत: संन्यास दीक्षा देने के अधिकारी होते हुए भी उन्होंने संन्यास की दीक्षा नहीं दी थी। अपने कुछ शिष्यों को गेरिक वस्त्र में भिक्षा मांगने का अधिकार अवश्य दिया था। उनके शिष्यों ने उनके जाने के बाद संन्यास की दीक्षा ली थी।

डॉ. ओबराय को प्लेन पकड़ना था। उनके साथ में श्री गंगाप्रसाद बुधियाजी (संस्कृति विहार के अध्यक्ष) थे, कहने लगे कि इनसे विवाद के चक्कर में हमारा प्लेन छूट जायेगा। तब डॉ. ओबराय आनन्दमूर्ति के मुंह पर यह कहते हुए—'शिष्य तो गेरुआ, गुरु है ठगवा' चल पड़े।

डॉ. ओबराय अक्सर कहा करते थे हिन्दुओं के पास तत्त्वज्ञान तो सर्वश्रेष्ठ है। पर हमारी पैकिंग रद्दी है और हमारे सेल्समैन हैं घटिया। जो हिन्दुओं में तेजस्वी हैं वे सरकारी, गैर-सरकारी प्रतिष्ठित पदों पर चले जाते हैं और जिन्हें कुछ नहीं आता वे पुजारी बन जाते हैं। ईसाइयों के पास तत्त्वज्ञान कुछ नहीं। सबसे घटिया है पर उनकी पैकिंग सबसे बढ़िया है, टिप-टोप है और उनके सेल्समैन एक से बढ़कर एक हैं। डॉक्टरेट, पीएच-डी. से नीचे कोई नहीं है।

इसलिए मेरा यह प्रयास है, पैकिंग अच्छी हो और श्रेष्ठ लोगों के पास यह पुस्तक पहुंचे।

डॉ. ओबराय अक्सर पादरियों और सिस्टरों के विषय में कहा करते—प्रायः सभी पादरी अविवाहित पिता हैं और प्रायः सभी सिस्टर अविवाहित मदर हैं। पादरी थोटंकल, जो स्वामी नरेन्द्रानन्द बनकर ब्राह्मणों के गरीब बच्चों को पढ़ाने के नाम पर लाकर, ईसाई बना रहा था। उसका जब भण्डाफोड़ हुआ, पकड़ा गया तब उसके पास से एक बक्सा निरोध सामग्री पकड़ी गई। अब तो आये दिन पादरियों के यौनाचार के अपराध प्रकाश में आ रहे हैं।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ने भक्त दम्पतियों (पति-पत्नी) में एक शहर विशेष में परस्पर राखी बंधवा दी और कहा—आज से आप भाई-बहिन हैं, उन्हीं की तरह रहें। आज से परस्पर में पति-पत्नी का व्यवहार वर्जित है। इससे बड़ी अव्यवस्था फैली, और विवाद का रूप ले लिया। संयोग से उस समय डॉ. हरवंशलाल ओबराय उस शहर विशेष में किसी कार्यक्रम से गये हुए थे। उनके सामने भी यह समस्या आयी। तब उन्होंने उन सब दम्पतियों को और समाज के प्रतिष्ठित लोगों को एक साथ बुलाकर कहा कि आपने कुल देवता, अग्निदेव, वेदमंत्रों तथा सारे कुटुम्ब व समाज को साक्षी रखकर वैदिक पद्धति से पाणिग्रहण संस्कार किया, वह सही है या किन्हीं के भुलावे-बहकावे में आकर परस्पर राखी बांध ली उसे सत्य मानेंगे? सबने एक स्वर से कहा—पाणिग्रहण-संस्कार को।

स्वामी करपात्रीजी महाराज जीवनभर शुद्धि-संस्कार के विरोधी रहे। सोंस के रामरक्षा यज्ञ में डॉ. ओबरायजी ने विलियम नाम के व्यक्ति को बलराम नाम देकर उसका वेदमंत्रों द्वारा शुद्धि-संस्कार किया। इस पर स्वामीजी रुष्ट हो गये और उन्होंने तुरंत डॉ. ओबरायजी को बुलाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार से दूसरों को शुद्ध करते-करते तुम स्वयं अशुद्ध हो जाओगे। कभी भी बीज का नाश नहीं होता। एक भी हिन्दू बचा रहेगा तो हिन्दू धर्म की रक्षा हो जायेगी। ये कूड़ा-करकट है इसे जाने दो। प्रो. ओबरायजी ने कहा, सबकी आस्था आप जैसी दृढ़ नहीं है। आप तो सरोवर में खिले कमल के समान हमारे आदर्श हैं। पर जन साधारण की आस्था दुर्बल होती है। वे भय-प्रलोभन के आगे झुक जाते हैं। फिर वनवासी समाज लम्बे समय से अशिक्षा और भुखमरी का शिकार हो दुर्बल और भोले-भाले होने से बहुत जल्दी पादरियों के बहकावे में आकर हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेते हैं उन्हें वापस लाना आवश्यक है। क्योंकि प्रजातंत्र में सिर गिने जाते हैं, तौले नहीं जाते। फिर हिन्दू समाज के संख्याबल में क्षीण होते ही हिन्दुस्तान आर्यावर्त्त से म्लेच्छावर्त्त बन जायेगा—पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान बन जायेगा। अतः भारत आर्यावर्त्त बना रहे इसके लिए हिन्दू समाज का बहुसंख्यक बने रहना आवश्यक है। अतः शुद्धि-संस्कार अनिवार्य है। इससे स्वामीजी ने सहमत होकर उस रात्रि को सभा में शुद्धि-संस्कार का समर्थन किया।

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

जेल जीवन व अन्य संस्मरण

हरवंशलाल ओबराय की मृत्यु से भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का एक प्रकांड विद्वान्, एक प्रखर वक्ता एवं प्राचीन व संस्कृत ग्रंथों का विशेषज्ञ एवं शोधकर्ता हमारे बीच से उठ गया। सक्रिय राजनीति में अन्तर्लिप्त न रहते हुए भी जब जहां कहीं भी राष्ट्र संकट दृष्टिगोचर हुआ श्री ओबराय ने आगे की पंक्ति में आकर भारतीय दर्शन एवं शास्त्र की ढाल लेते हुए एक योद्धा की तरह उसका सामना किया। इसका उदाहरण था सन् 1974-75 का जयप्रकाश आन्दोलन।

मेरे अभिन्न मित्र

1975 की आपातस्थिति के समय तो हम दोनों अति निकट आ गए। मैं 4 जुलाई की रात को ही गिरफ्तार कर लिया गया और 5 जुलाई की रात में जब जेल में ले जाया गया तो वहां ओबरायजी पहले से ही विद्यमान मिले। मुझे देखते ही उन्होंने आलिंगन में भर लिया। हम दिल खोलकर मिले। उस दिन जेल का 5 नम्बर का वार्ड कैदियों से भरा था। सोने की जगह नहीं थी फिर भी उन्होंने उसी में जगह बनाई और हम लोग एक करवट में ही सो गए।

मैं उन्हीं दिनों के अपने संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूं जिससे स्व. ओबराय के अनोखे व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

जेल की एक ही कोठरी में जिसमें मुश्किल से 40 कैदी समा सकते थे, करीब 150 कैदियों को ठूंस दिया गया। सोते समय करवट बदलना तक कठिन हो जाता था। ओबरायजी, श्री आगाशे, श्री प्यारेलाल चोपड़ा एवं मैं जेलर के पास गए और वार्ड बदलने को कहा। उन्होंने वार्ड बदलने का वादा किया और शाम को एक छोटा वार्ड दिया जो 'दरी वार्ड' के नाम से जाना जाता था। उसमें पहले से ही 20 कैदी विद्यमान थे। किसी तरह हम लोग उसमें सात दिन रहे। लेकिन इसी बीच हम सबों के कुछ न कुछ सामान चोरी चले गए। 11 जुलाई को हम सभी जेलर के पास गए और दूसरे वार्ड की मांग की। जेलर ने जब देने से इनकार किया तब उस दिन ओबरायजी ने, जो शांत प्रकृति के माने जाते थे, ऐसा उग्र रूप धारण किया कि दूसरे दिन सवेरे ही हम गया केन्द्रीय जेल भेज दिए गए।

रांची जेल में उन्होंने रामायण का पाठ प्रारम्भ किया। मैं रामायण का सस्वर पाठ करता था और ओबरायजी अपने सरस शब्दों में उसका अर्थ बड़ी ही तन्मयता से बतलाते थे। उस दिन एक पंक्ति थी—'धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद्काल परखिये चारी।।' इस पर उन्होंने ऐसे लोगों को, जो जेल जीवन एवं आपातकाल से घबरा गए थे, काफी हिम्मत बंधाई और अपने एक घंटे के प्रवचन में केवल इसी का विशद् वर्णन किया।

जेल में गीता गोष्ठी

गया केन्द्रीय जेल में गीता गोष्ठी होती। ओबरायजी प्रतिदिन गीता पाठ करते और गीता की मीमांसा के दौरान आपातकाल की खामियों एवं प्रशासन की तीखी आलोचना करते। लेकिन गीता की पंक्तियां ही उसका माध्यम हुआ करती थीं। इस पर जेलर ने ओबरायजी को गीता पाठ बंद कर देने को कहा। ओबरायजी उखड़ गए एवं साफ शब्दों में कहा कि 'गीता पाठ बंद नहीं होगा। आप अपने उच्च अधिकारी को लिख दें। मैं सभी सजा भुगतूंगा किन्तु धर्म करने में रुकावट को नहीं सहूंगा।' अंत में हार कर जेलर स्वयं कभी-कभी आकर गीता पाठ में बैठने लगा लेकिन इनकी प्रशासकीय आलोचना जारी रही।

संस्मरणांजलि

मुझे याद है, ओबरायजी दूसरी श्रेणी में रखे गए और हम लोग साधारण कैदी थे। अत: उन्हें 8 बजे बंद किया जाता था जबकि हम लोगों को 6 बजे शाम को ही वार्ड में बंद कर दिया जाता था। उन्हें द्वितीय श्रेणी का भोजन मिलता था। उन्हें खाने में जो नीबू दिया जाता था वह उसका अचार बनाते थे और प्रतिदिन शाम को खिड़की से दे जाते थे। इतना ही नहीं, जब कभी भी खीर या कोई बढ़िया भोजन या पकवान बनता वह खिड़की से जरूर दे जाते।

पुस्तकों से असीम प्यार

गया जेल के पुस्तकालय की हालत दयनीय थी। वहां की कोई भी पुस्तक पूर्ण दशा में नहीं थी। ओबरायजी पुस्तकों का अध्ययन करते और उन्हें कूटों से बांध कर उनकी सूची तैयार कर लेते। जो कोई उनसे मिलने जाता वह फल या मिठाई वगैरह लेकर जाता था। वह उन्हें यह सब लाने से मना कर कपड़ा और कूट मांगते थे। जेल में भोजन के लिए आटा मिलता था, उसमें से थोड़ा लेकर लेई बनाते और उसी से वहां की सभी पुस्तकों की मरम्मत कर पुस्तकों का एक सूची-पत्र बना दिया। गया जेल उनको इसके लिए बराबर ही याद करेगा।

जेल में कोई भी बीमार हो या किसी तरह की किसी को तकलीफ हो, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सबकी सेवा मानव मात्र की सेवा समझ कर करते

थे। रोगी को डॉक्टर के पास ले जाकर उनसे चाहे शांति से हो चाहे संघर्ष से, दूध, दवाई, नीबू इत्यादि आवश्यक चीजें जरूर दिलवा देते थे और जब तक वह रोगी चंगा नहीं हो जाता था बराबर उनको देखने जाते।

वीर माता

जेल जाने के बाद पहली बार उनकी 87 वर्षीया वृद्ध माता गया केन्द्रीय जेल में उनसे मिलने गई। ओबरायजी मां से मिलने आए। पहले उन्होंने माता के चरण छूकर प्रणाम किया और बातें करने लगे। भावावेश में ओबरायजी की आंखें भर आईं। इस पर उनकी माताजी ने कहा- बेटा! तुम प्रतिदिन गीता का पाठ करते हो और दूसरों को गीता का ज्ञान देते हो। आज तुम्हारी आंखों में आंसू! उसके बाद से जब भी उनकी माता मिलने आतीं, ओबरायजी उनके चरण छूकर खुशी से मिलते।

जेल में मिलने आने वालों से उनकी मांग रहती थी गुटका रामायण एवं छोटी 20 पैसे वाली गीता की। जेल के सभी हिन्दू-मुस्लिम कैदियों एवं वहां के सभी कर्मचारियों को भी उन्होंने गीता और रामायण की प्रतियां बांटी।

ओबरायजी कहा करते थे 'परोपकारपुण्याय पापाय परपीडनम्।' और उन्होंने इस तत्त्व को अपने जीवन में ढाला था। जेल का हरेक व्यक्ति, चाहे वह उम्र कैद प्राप्त कैदी हो या चोरी-डकैती में सजा प्राप्त या राजनीतिक कैदी हो, सबसे मिलते और सबको धर्म का उपदेश देते। एक बार मुस्लिम कैदियों ने हम सबों को ईद-मिलन समारोह में अपने वार्ड में बुलाया। हम सभी गए और वहां भी उनका भाषण हुआ। वहीं पर गया के किसी कालेज के प्रिंसिपल थे—नसीरुद्दीन साहब। उन्होंने कहा था कि अगर संघ वाले ऐसे हैं तो हम लोगों को संघ मान्य है।

ऐसे थे स्व. ओबरायजी। आज वे नहीं रहे पर उनकी स्मृति रह गई है जो हमें बराबर प्रेरणा देती रहेगी।

—प्रभासचन्द्र दुबे, रांची

एक कर्मठ योगी

हरवंशलाल ओबरायजी के प्रति मेरी श्रद्धा अटूट थी। स्वजाति भाई होने के कारण नहीं अपितु उनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता के लिए। हम दोनों में प्रेम की निरन्तर वृद्धि होती रही और प्रेमवश ही वह मुझे भीष्म पितामह कहकर सम्बोधन करते थे तो मैं उनको 'कलि का कृष्ण' कह दिया करता था। मेरी दृढ़ मान्यता है कि परमपिता परमात्मा परम दयालु है, पर उनकी लीला अगम्य है। उन अपरम्पार की

लीला को समझ नहीं पाने के कारण कभी-कभी अज्ञानतावश ही अनायास क्रोध उत्पन्न हो जाता है। हम दोनों के सहज प्रेम के प्रति उनको विद्वेष हो गया और आज हम दोनों के बीच इतनी दूरी आ गई कि पुनः उनके दर्शन हेतु मुझे भी अपनी जीवन लीला को समाप्त करना पड़ जाएगा। वह संसार से चल बसे, पर अन्तिम क्षणों तक 'राम-कृष्ण' और 'हरि ॐ' का उच्चारण करते रहे। उनके लिए असंख्य लोगों की आंखों से आंसू बहे। उनकी दाह-क्रिया राजशाही सम्मान के साथ की गई। श्राद्ध भी बड़ी श्रद्धा के साथ सम्पन्न हुआ। सब मिलाकर देखता हूं तो मन में पूर्ण विश्वास कर लेता हूं कि ओबरायजी एक कर्मठ योगी थे। वह इस नश्वर शरीर से जुदा हो गए पर उनकी कीर्त्ति सदा अक्षुण्ण और अमर रहेगी। आज हम सभी का महान् कर्तव्य हो जाता है कि उनके स्वप्नों को साकार रूप दें। उनको अंतर्दृष्टि प्राप्त थी। उनको पूर्वाभास हो गया था कि निकट भविष्य में ही उन्हें अप्रत्याशित दुर्घटना का शिकार होना है। जब इनका इंदौर सम्मेलन में जाना निश्चित हो गया तो मैंने भी उनके साथ जाने की तैयारी कर ली। परन्तु दुर्भाग्य ने मुझे रोक लिया। ओबरायजी की दुर्मति हुई और मुझ वृद्ध के कष्टों का अनुमान कर मुझे अपने साथ ले जाने में उन्होंने अपनी पूर्ण अनिच्छा व्यक्त की। मुझे जो शंका हुई थी उसका प्रत्यक्ष रूप तुरन्त दिख गया जब दूसरी ही शाम को रेडियो प्रसारण से श्रीओबराय के निधन का समाचार प्राप्त हुआ।

धीरेन्द्र लाल खन्ना
ग्राम-खतरीखटंगा

ओबरायजी की पावन स्मृतियां : बहन के संस्मरण

आदरणीय ओबरायजी इस समय हमारे बीच में नहीं हैं। हमारा और उनका लौकिक सम्बन्ध टूट गया, परन्तु उनकी स्मृतियां तो सदा ही हमारे मानस पटल पर अंकित रहेंगी। वैसे तो उनकी सद्भावनापूर्ण स्मृतियों का कोई अन्त ही नहीं है परन्तु मैं तो पिछले तीन वर्ष के दो-चार संस्मरण ही लिख रही हूं।

एक बार मुझे उनके घर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं अपने स्वभावानुसार घर को खूब साफ-सुथरा रखती। मैं अपना अधिकांश समय घर को धोने-पोंछने और सजाने-संवारने में ही लगा देती। एक दिन ओबरायजी कहने लगे, हे निर्मला बहन! तुम अपना सारा समय ही घर के कामों में न लगा दिया करो। शीघ्रता से गृह-कार्यों से निबट कर राम नाम जपा करो। घर-बार तो सब यहां रह जाना है, साथ जाने वाला है केवल राम नाम। न तो तुम्हारा रावलपिंडी वाला घर रहा है और न ही रहेगा मेरा यह घर। सब घर नश्वर हैं। सदा सत्य, अनश्वर, स्थिर, अमर

तो राम नाम ही है। उन्होंने संसार की नश्वरता को और राम नाम की अमरता को कितना अधिक अनुभव किया था, वह तो उनकी स्वाभाविक ढंग से कही हुई बातों से ही पता चल सकता है।

गीता के उपदेशों का मनन करने वाले ओबरायजी उन दिनों बहुत ही अन्तर्मुखी हो रहे थे। वह सांसारिक बन्धनों के प्रति निर्लिप्त से दीखते थे। एक दिन जबकि वह अपने बी.आई.टी. वाले घर में अपने भाई-बहनों के बीच में बैठे हुए उनको प्रातःस्मरण करा रहे थे, प्रातःस्मरण के बाद वह कहने लगे—'कौन किसका भाई और कौन किसकी बहन। न तो पिछले जन्म में कोई भाई-बहन थे और न ही अगले जन्म में होंगे। यह तो इस जन्म के क्षणिक सम्बन्ध हैं। यद्यपि मां की ममता भी नश्वर है। न तो वह पहले जन्म में हमारी माता थी और न ही अगले जन्म में होगी, वह तो इस जन्म में हमारी जननी है। तथापि आज हम संसार में कुछ कर सके हैं और कुछ करने का सामर्थ्य रखते हैं तो यह सब इस माता के संस्कारों का ही प्रभाव है।

कितनी मातृभक्ति थी उनके हृदय में। परन्तु संसार की नश्वरता को तो उन्होंने समझ ही लिया था। आखिर वह समय आ ही गया जबकि वह संसार के सभी क्षणिक सम्बन्धों से मुंह मोड़कर अपने परमधाम को चले गए।

ओबरायजी बहुत ही विद्वान् थे। उन्होंने वेदशास्त्रों के अतिरिक्त कला, विज्ञान, इतिहास, भूगोल और ज्योतिष के सम्बन्ध में भी बहुत अध्ययन किया हुआ था। उन्हें हस्तरेखा का भी बहुत ज्ञान था। उनका हृदय भी तो शुद्ध था इसलिए अपनी मृत्यु का उन्हें पूर्वाभास होने लगा।

यह बात आज से ढाई वर्ष पहले की है। अपने नित-नेम की भांति जब हम सभी भाई-बहन प्रातःस्मरण कर रहे थे और सबने अपने दाएं हाथ का दर्शन किया तो ओबरायजी कहने लगे कि आप दोनों भाई-बहन (बृजभूषण और निर्मला) तो दीर्घायु लेकर आए हो, जबकि मेरी आयु की रेखा तो आधे से थोड़ी ऊपर जाकर एकदम समाप्त हो गई है। ऐसा अनुमान है कि 60 वर्ष की अवस्था से पहले ही मैं भगवान् के घर चला जाऊंगा। किसी दिन अकस्मात् ही मेरी हृदयगति बन्द हो जाएगी या फिर मेरा इतना भयंकर एक्सीडेंट होगा कि फिर तो मेरा संभलना ही असम्भव हो जाएगा। जब हमने कहा कि ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता, तो वह कहने लगे, 'मृत्यु का तो जन्म के साथ चोली-दामन का सम्बन्ध है।' संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं वे अपने प्यारे प्रभु के बुलाने पर तत्क्षण उसके पास चले जाते हैं। इसके बाद वह कहने लगे—'न तिल बढ़े न राई घटे, जो लिखया करतार।

—निर्मला बहन

अपने मित्रों के प्रति

लायन्स क्लब का लायनवाद जड़ता की स्थिति को पार कर, शुभारम्भ की गतिशीलता से आगे बढ़कर अब प्रगतिशीलता के अनन्त पथ पर बढ़ रहा है। किन्तु यह लायनवाद जीवन से दूर ले जाने वाला कोई पलायनवाद नहीं है। वर्तमान काल में लायनवाद तथा लायन क्लब की कार्य पद्धति में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा यदि हम रांची के लायन बन्धु विकास की गति के साथ कदम मिलाकर नहीं चलते तो हम निश्चय ही पिछड़ जाएंगे।

मैं यह विश्वास करता हूं कि हमारे क्लब के सदस्य उत्साह एवं संस्था के प्रति प्रेम भावना में पीछे नहीं है। किन्तु हमें अभी भी इस संस्था की कार्य पद्धति का विकास करना है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।

एक समय था जब भारत उसी सेवाव्रत का महानतम आदर्श प्रस्तुत करता था, जो कि लायन क्लब का भी आदर्श मंत्र है—

थी दूसरों की आपदा, हरणार्थ अपनी सम्पदा।
कहते नहीं थे किन्तु हम, करके दिखाते थे सदा।।
नीचे गिरे को प्रेम से, ऊंचा उठाते थे हमीं।
पीछे रहे को घूमकर, आगे बढ़ाते थे हमीं।।

यह इतिहास की विडम्बना ही है कि ऐसे महान् सेवाव्रती देश में आज अभाव एवं भुखमरी का नृत्य हो रहा है।

इस देशव्यापी जड़ता तथा क्लब की गतिहीनता से मुक्त होने के लिए जब हम क्लब के भूतपूर्व नेतृत्ववृन्द की ओर आशा की दृष्टि से देखते हैं, तब हमें सहसा स्मरण आता है—

पथ से भटके यात्री दलों की चर्चा न हो,
जो पथदर्शक साथ चले उसका सम्बल हो।
पतझड़ हुई पुरानी, कूच कर गया माली,
बसंत में नूतन माली की जय हो।

हमारे क्लब का सौभाग्य था कि इसमें बड़े महत्त्वपूर्ण सज्जन सदस्य के रूप में आए किन्तु हमारी अकर्मण्यता से वे आज हमसे कुछ दूर हो गए हैं, उनके प्रति मुझे निवेदन करना है—

ओ इस बगिया के फूलों, क्यों मित्रों से तुम रूठ गए?
आओ, जग उद्यान बीच, अब पुनः रंग और गंध भरें।

मुझे आशा है कि हमारे पुराने लायन बन्धु पुनः अपनी इस मातृ संस्था में आएंगे। बैठकों में भाग लेंगे तथा संस्था में सजीव रुचि प्रदर्शित करेंगे।

हृदय द्वार पर आशाएं आहट देती हैं,
छूटे बंधु पुनः मिलेंगे यात्रा पथ पर।

लायन बंधुओं के समान मैं लायन भगिनीवृंद से भी अपील करता हूं कि भारत की महान् परम्परा के अनुसार अपने लायन पतियों के इस समाजसेवा के कार्य में पूरा सहयोग करें, तभी वे अर्द्धांगिनी कहलाने योग्य होंगी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

निज स्वामियों के कार्य में सम भाग जो लेतीं न वे।
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे।
तो फिर कहातीं किस तरह अर्द्धांगिनी सुकुमारियां।
तात्पर्य यह अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियां।

व्यक्ति में सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए एक सच्चा कर्मठ मानव क्या नहीं कर सकता?

बिन्दु, सिन्धु को जन्माता है, उर्मि बनती है तूफान।
पुष्प बनाते हैं बगिया को, सब कुछ कर सकता इनसान।।

अन्त में मैं पुनः कहना चाहता हूं कि हमारा उद्देश्य है—व्यक्ति के गुणों का विकास करना तथा नर-नारी की संयुक्त चेष्टाओं को इस प्रकार प्रेरित करना कि मानवता का आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मंगल सम्पन्न हो सके। एतदर्थ हमारे चतुर्सूत्री साधन हैं—

(1) नागरिकता की चेतना तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूकता।

(2) योजना कार्यों में क्रियात्मक भाग तथा व्यक्ति और समाज के विकास के लिए कार्यक्रम।

(3) आर्थिक विकास में प्रगति।

(4) सभी लोगों में परस्पर परिचय, सद्भाव एवं सहयोग को बढ़ावा देना।

दृढ़संकल्प समर्पित जीवन, अनुशासनमय जीवन गीत।
यही हमारा ध्येयवाक्य हो, मंगल पुण्य पंथ के मीत।।

लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े का पत्र डॉ. ओबराय के नाम

दीनदयाल शोध संस्थान

7-ई, स्वामी रामतीर्थ नगर, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली 110055

दूरभाष : 526792, 526715 तार : मंथन

ख्यातनाम श्रद्धेय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी से परिचित होने का सुअवसर जब वे बिहार में बी.आई.टी. में कार्यरत थे, उस समय मेरे प्रवास के समय प्राप्त हुआ। यह मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं। उनकी अपने उपेक्षित बंधुओं के उत्पीड़न को देखने पर उभरी हुई तड़पन मुझे आज भी स्मरण आती है। उसी में से भारत की विश्व संचार की गौरवगाथा को प्रकाशित एवं प्रसारित करने की प्रेरणा ग्रहण कर देश-विदेश में जाकर सम्पूर्ण विश्व की एकात्मता का दर्शन वे अपनी दुर्लभ चित्रकला तथा अभिलेख संग्रह के कार्य द्वारा कराते रहे। वह एक बेजोड़ कार्य था।

इसी लगन को लेकर जब वे ब्रह्मदेश (आज का म्यांमार) गए थे उस समय मेरा भी प्रवास माननीय श्री भाऊराव देवरसजी के प्रवास के निमित्त से हो रहा था। एक ही स्थान पर कार्यक्रम हुआ। मा. श्री भाऊरावजी भी डॉ. ओबरायजी के अध्ययन को देखकर स्तम्भित थे। वे पहले से ही उनसे परिचित थे व उनके गुणों के पारखी थे। डॉ. ओबरायजी की प्रगति में मा. श्री भाऊरावजी का स्नेह व आशीर्वाद सदैव साथ था। ऐसे विद्वान् राष्ट्र व संस्कृति भक्त मनीषी के कार्यों का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हो व उसमें सभी समानशील बंधु-भगिनी सहायक होकर अपना योगदान दें यही विनती है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे इस सत्प्रयास को सफलता प्रदान करने का अनुग्रह करें।

शुभेच्छु,

लक्ष्मण श्रीकृष्ण भिड़े

Shree Babasaheb Apte Smarak Samiti, Pune

309, Shaniwar Peth, Pune 411030

फाल्गुन शुक्ला 9, संवत् 5084

दिनांक : 23.3.83

परममित्र हरवंशलालजी को सप्रेम प्रणाम।

दि. 17 को आप नागपुर छोड़े और दि. 18 को मैं वहां से निकलकर यहां आ गया। दि. 5 अप्रैल तक यहीं रहूंगा। दि. 14 अप्रैल वर्षप्रतिपदा को बम्बई में इतिहास दिन मनाने वाले हैं। उससे पहले बम्बई की भिन्न-भिन्न 6-7 बस्तियों में इस योजना में काम कर सकने योग्य व्यक्तियों की बैठकें मैं संबोधित करूं ऐसी योजना दि. 6 से 11 अप्रैल तक के लिए बनी है। दि. 12 से 15 अप्रैल नागपुर में रहूंगा और दि. 17 को विशाखापट्टनम में मनाए जाने वाले इतिहास दिन के लिए वहां पहुंचूंगा। तब से 20-25 दिन तक आंध्र प्रांत में रहूंगा। केन्द्र स्थान हैदराबाद रहेगा जहां का पता—केशव निलयम, बरकतपुरा, हैदराबाद-500027 है।

सात वार तथा बारह माहों के विषय में जो जानकारी आप हैदराबाद में लिख कर दिये थे उसकी एक प्रति आप चाहते हैं ऐसा नागपुर में बताये थे। संभव है उसको ठीक प्रकार तैयार करने की आपकी योजना होगी। नागपुर की बैठक में हुए विचार के अनुसार ऐसे लेख पत्र-पत्रिकाओं में आना ठीक रहेगा। इसलिए इस विषय को योग्य स्वरूप देकर आप वह मेरे पास भेजिये यह प्रार्थना। आवश्यक होने पर हम यहां मराठी व तेलुगु अनुवाद करा लेंगे। केवल यह ही लेख नहीं, आपसे मैंने इसलाम पूर्व अरब व कोलंबस पूर्व अमेरीका ये दो लेख भी मांगे थे। ये तथा इस प्रकार के जो भी लेख होंगे उनकी एक-एक प्रति यहां अवश्य भेजिये। वह लेख आपके नाम से हम छपवा सकेंगे। वृहत्तर भारत की प्रदर्शनी के चित्र भी आप भेज सकोगे क्या? उसका प्रचार व प्रदर्शन उत्तम होने की दृष्टि से तथा अनेक स्थानों पर होने की दृष्टि से यहां अवश्य प्रयत्न होगा।

गत वर्ष सितम्बर में तथा इस वर्ष जनवरी में महाराष्ट्र प्रांत के जिलाप्रमुखों की दो बैठकें सम्पन्न हुई थी। इस मई में तीसरी बैठक होगी।

पंजाब के विषय में लेख तैयार हो गया क्या?

शेष कुशल। तत्रस्थ सभी बन्धु मित्रों को नमस्कार!

आपका,

राम साठे

भारतीय संस्कृति के महान् सपूत

प्रो. हरवंशलाल ओबराय

का

चाईबासा की जनता की ओर से सादर

—: अभिनन्दन :—

धर्मप्राण भारत की प्राण-वायु, धर्म और संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में सस्वर निनादित करने वाले, राजनीति की लोह-शृंखला में बंधुत्व के फूलों से एकता की माला के बजाय संस्कृति के रेशमी धागों से सम्पूर्ण मानवता को एकसूत्र में बांधने के महान् पक्षधर एवं पशु-शक्ति सम्पन्न राजनीति पर धर्म-चक्र के नियंत्रण के महान् हिमायती! हम आपके अभिनन्दन से प्रेरणा पूरित हो रहे हैं।

विश्व में भारतीय संस्कृति के व्याख्याता! स्वार्थ और ईर्ष्या की केंचुली में भारतीयता का ढोंग भरने वाले, विदेशी राजनीतिक षड्यंत्र से अनुप्रेरित होकर भारत की गौरवपूर्ण स्वर्णिम परम्परा को अपने विषदन्त से रक्त हीन करने के दु:संकल्पी कुछ लोग जब हमारे वेद के ऋषियों की महान् आध्यात्मिक उपलब्धियों, वेद की ऋचाओं को मात्र प्रलाप कहकर टालने लगे और मानवता का उत्स बिन्दु होने का श्रेय पाश्चात्य देशों के गले मढ़ा जाने लगा तभी भारत ने पश्चिम की कुण्ठाग्रस्त मानसिक गांठ खोलकर प्राची के महान् आलोक से विश्व को बोधत्व प्रदान कराने हेतु स्वामी विवेकानन्द, अभेदानन्द, रामतीर्थ, योगानन्द और आपके समान संस्कृति के महान् व्याख्याताओं को भेजा। भारत को अपने प्राचीन पर सचमुच बड़ा गर्व है। क्योंकि वृहत्तर भारत की सीमाओं की गोद में हमारा महान् भारत हमेशा अपने सांस्कृतिक महापुरुषों के पदचिह्नों पर चल कर उनके आदर्शों से अनुप्राणित होता रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ (UNESCO) के आह्वान पर आपने विश्व के अनेक देशों की यात्रा की और राजनीति के चक्रव्यूह में फंसकर गंदे मस्तिष्क के गंदले नालों से जो जल प्रवाह निकल

कर विश्व के चेतना सम्पन्न राष्ट्रों की नाक तक चढ़ गया था, आपने भारतीय संस्कृति की उच्छल तरंगों से उसे स्पन्दित करके ज्ञान के महान् रसायन को विश्व को छक कर पिलाया।

राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है—आपने अपने जीवन के सारे के सारे मुस्कराते बसन्त की छौंक देकर राजनीति में धर्मनीति के समन्वय का महान् प्रयास किया है। आपकी आस्था है कि राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। भाषा तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। धर्म तोड़ता है, संस्कृति जोड़ती है। इसलिए आपने प्रत्येक व्यक्ति को भारत की संस्कृति में माला के मनकों की तरह अनुस्यूत करने का महान् संकल्प किया है। संस्कृति विहार के माध्यम से आपकी इन अमूर्त भावनाओं को देश के कोने-कोने में मूर्त होता देख हमारे स्वाभिमान को बड़ा बल मिला है। हम आपके इस महान् संकल्प में सहयोगी बन कर अनुप्रेरित हो रहे हैं।

हमारी प्रार्थना है—

भगवान् भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती

गुरुनानक पूर्णिमा,   हम हैं—

सं. 2023   **चाईबासा के नागरिक**

राष्ट्रीय मुस्लिमों के संदर्भ में कुछ विचार

प्रत्येक देश का एक प्राण बिन्दु होता है, एक केन्द्र बिन्दु होता है जिसके द्वारा उसका समस्त व्यक्तिगत जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन प्रचालित होता है। भारत का प्राण बिन्दु, केन्द्र बिन्दु धर्म है जिससे रहित होकर हमारे जीवन का कोई क्षण और कोई कण नहीं है। इस धर्म रूपी केन्द्र बिन्दु पर हमारा सारा जीवन गुंथा हुआ है—गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक का।

इसलिए देश की पहचान राम और कृष्ण से है, सीता और सावित्री से है, वाल्मीकि और वेदव्यास से है, महर्षि अगस्त्य और विश्वामित्र से है, कबीर और तुलसी से है, रहीम, रसखान और जायसी से है। समर्थ स्वामी रामदास और शिवाजी से है। रामप्रसाद बिस्मिल और अश्फाक उल्ला खां से है।

सृष्टि में, प्रकृति में विविधता है। यह सृष्टि का शृंगार है, सृष्टि का वैभव है। सृष्टि की हर चीज में विविधता है, पेड़ के हर पत्ते में विविधता है। सृष्टि तो विविधता में, विषमता में, प्रकट होती है। जब तीन गुणों में समता स्थापित हो जाती है तब प्रलय होता है। तीन गुणों में वैषम्य होता है तभी सृष्टि प्रकट होती है। अतः विविधता जीवन का स्वाभाविक अंग है।

सृष्टि में विविधता, अनेकता, विषमता—यह जीवन जगत् का स्वाभाविक अंग है, वह उसकी विभूति है, वैभव है। उस विविधता में आत्मा की एकता है। हम सबका सृजनहार एक परमेश्वर है उस दृष्टि से एकता है। वह सृजनहार परमेश्वर ही अपने आपको विविध रूपों में, जीव-जगत् के रूप में नानाविध देवशक्तियों के रूप में विलसित करता है। इसलिए सभी जीवों की, मनुष्यों की, शरीर की आकृति-प्रकृति में भेद है। सबका शारीरिक, मानसिक-बौद्धिक, नैतिक-आध्यात्मिक चेतना का स्तर भी भिन्न-भिन्न है।

व्यक्ति की चेतना सीमित है, ईश्वर की चेतना असीम है। हम अपनी सीमित चेतना को ईश्वर की चेतना से जोड़ना चाहते हैं। अपने-अपने स्वभाव, अपनी क्षमता, अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक-आध्यात्मिक स्तर की भिन्नता के आधार पर नाना पंथ हैं, उपासना पद्धतियां हैं, नाना मजहब हैं जिन

पर चलकर हम देर-सबेर अपनी व्यक्तिगत चेतना को ईश्वरीय चेतना से, असीम चेतना से जोड़ सकते हैं।

प्रत्येक देश की संस्कृति, उसका इतिहास उसके पूर्वज, उसके मानबिन्दु एक होते हैं, पर उपासना पद्धतियां अनेक होती हैं, वेद काल से लेकर आज तक अनेकों नई-नई उपासना पद्धतियां जन्म लेती रही हैं। और विविधता मानव की प्रकृति भेद के आधार पर, अधिकार एवं पात्रता भेद के आधार पर हमारे देश में सदा से मान्य रही हैं। इसलिए हमारे परिवारों में कोई राम का भक्त है तो कोई कृष्ण का, कोई गणेश का, कोई सनातनी है तो कोई आर्य समाजी, तो कोई नास्तिक। इसके आधार पर परिवार, देश, समाज में कभी कोई संघर्ष नहीं रहा है।

यही कारण है कि रहीम और रसखान, जायसी भारतीयता को, भारत की संस्कृति को, राम और कृष्ण को मानते हुए भी मुसलमान थे। उनसे किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई। रामप्रसाद बिस्मिल और अश्फाक उल्ला खां परस्पर में मित्र थे। दोनों एक साथ उठते-बैठते, खाते-पीते, देश भक्ति का तराने गाते हुए फांसी के फन्दे पर झूल गये। अश्फाल उल्ला खां बिस्मिल को अपना बड़ा भाई राम मानते थे और स्वयं को छोटा भाई लक्ष्मण कहते। एक बार अश्फाक उल्ला खां बीमार पड़े और बेहोशी की हालत में राम-राम पुकारते रहे। घर वालों ने कहा—अल्लाह-अल्लाह कहो। पर, वे राम-राम ही बड़बड़ाते रहे। और जब रामप्रसाद बिस्मिल को पता लगा और दौड़े-दौड़े मिलने आये तो उन्हें देखते ही अश्फाक उल्ला खां खड़े होकर उनसे लिपट गये। तब सबको बेहोशी के बाद राम-लक्ष्मण मिलन की बात याद आयी और सबकी आंखें नम हो गयी।

इंडोनेशिया के मुसलमान मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति को अपनाये हुए हैं। वे राम को अपना National Hero मानते हैं, रामायण के कथानक पर नाटक खेलते हैं। इंडोनेशिया में राम लीला के अवसर पर पाकिस्तानी राजदूत ने कहा कि कुरान में राम लीला का आदेश कहां है? इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our History. We cannot change our blood. Ramayan and Mahabharat are in my blood. यदि भारत का मुसलमान इंडोनेशिया की तरह होता तो आज हम सिंध और पंजाब में होते। 99 प्रतिशत मुस्लिम में हिन्दू रक्त है। यदि भारत की संस्कृति को मानते, उसके प्रति वफादार होते, उदार होते तो देश की हत्या न होती। अतः मुसलमानों को भारतीय संस्कृति को मानना चाहिए।

जब 1400 साल बाद यहूदी अपनी मातृभूमि वापस पा सकता है तो हम पुनः एक क्यों नहीं हो सकते। अवश्य एक होंगे। गयी भूमि को प्राप्त करने का सबको स्वप्न अवश्य देखना चाहिए।

आज प्रश्न उठता है कि भारत के मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या रहीम और रसखान ने मार्गदर्शन नहीं किया, अश्फाक उल्ला खां ने मार्गदर्शन नहीं किया, दाराशिकोह ने मार्ग नहीं दिखाया। यदि मुसलमान रहते हुए भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारत माता खंडित हो पाती? अभी भी चेत जाएं तो क्या खंडित रह पायेगी?

तो संस्कृति हमें जोड़ती है, पर क्षुद्र-स्वार्थी राजनीति हमें तोड़ती है। तोड़ने का कार्य अंग्रेजों ने किया—फूट डालो और शासन करो के तहत। फिर बाद के राजनेताओं ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए। अब तक जो हो गया अब इसे समझना है।

आप 100-200, 500-1000 या 1500 वर्ष पूर्व में जाएं तो आप देखेंगे कि आप कौन हैं? आपके पूर्वज भी वही राम-कृष्ण हैं, आपका वही रक्त है, वही इतिहास है। वही संस्कृति है। आपने उपासना पद्धति बदल ली तो क्या हुआ? हमारे यहां तो प्रथम से ही अनेकों उपासना पद्धतियां रही हैं और नित्य नयी जन्म लेती रहती है।

रेजीमेंटेशन को समाज नहीं कहते। एक साथ उठना-बैठना या एक सा पहनावा आदि को समाज नहीं कहते। गिरोह को भी समाज नहीं कहते। दस्यु के, डकैतों के गिरोह होते हैं। सम्यक् अजति इति समाजः। जो सम्यक् रूप से चलता है, एक महान् लक्ष्य को लेकर चलता है उसको समाज कहते हैं।

इस प्रकार समाज की दृष्टि से, संस्कृति की दृष्टि से, इतिहास एवं पूर्वजों की दृष्टि से हम सब एक हैं। तभी 1916 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में मुस्लिम छात्रों को सम्बोधित करते हुए जिन्ना ने कहा था—'रामायण और महाभारत, दोनों भारत के राष्ट्रीय ग्रंथ हैं। रामायण और महाभारत को बिना पढ़े हम भारत को समझ नहीं सकते, भारत को बिना समझे हम भारत के साथ एकात्म नहीं हो सकते। इसलिए स्व. राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आजाद कुरान के साथ-साथ गीता भी पढ़ते थे। रामायण, महाभारत-गीता केवल हिन्दुओं के ग्रंथ नहीं हैं, ये सारे राष्ट्र की धरोहर, सारी मानवता की धरोहर हैं।

जब डॉ. सैयद महमूद जो कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य थे, जर्मन विश्वविद्यालय में पढ़ने गये तो वहां जीव वैज्ञानिक वर्गसा ने उनसे मूल भाषा संस्कृत में गीता सुननी चाही। यह सुनकर वे हक्के-बक्के रह गए। झेंपते हुए लज्जा के साथ कहा—'मुसलमान होने के नाते मैंने गीता कभी पढ़ी नहीं।' उन्होंने कहा—मैं भी तो ईसाई हूं। पर, गीता पढ़ता हूं। यह आपकी राष्ट्रीय धरोहर है, इसको बिना जाने बिना पढ़े आप भारतीय कैसे हो सकते हैं? उन्होंने कहा—'मैं

आपको अनुवाद पढ़कर सुनाता हूं।' तब वर्गसा अपने पुस्तकालय में ले गये और दिखाया कि अनुवादों से तो मेरा पुस्तकालय भरा पड़ा है। मैं मूल संस्कृत में सुनना चाहता था। अब समझ में आया भारत गुलाम क्यों हुआ। नहीं तो गीता को पढ़ने-समझने वाला देश गुलाम नहीं हो सकता। इससे उन्होंने बड़ी शर्मिंदगी अनुभव की। फिर भारत देश में वापस आने पर गीता का अभ्यास किया।

अतः रामायण-महाभारत और गीता को जाने बिना, पढ़े बिना, भारतीयता को स्वीकार किये बिना अपनाये बिना हम भारतीय, हम हिन्दुस्तानी कैसे हो सकते हैं। चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई, जो भारतीयता को नहीं स्वीकार करता है वह अपने-आपको इस देश का नागरिक कैसे कह सकता और नागरिक सुविधाओं और अधिकारों का कैसे अधिकारी हो सकता है?

हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास, हमारे पूर्वज, हमारे मानबिन्दु एक हैं। केवल उपासना पद्धति की भिन्नता के आधार पर हमें अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक कहना, इसके आधार पर विशेष सुविधाएं, संरक्षण की मांग करना या देना हमको परस्पर बांटने की, बांटे रखने की बहुत बड़ी राजनीतिक साजिश है, जो हमें अलग बनाए रखकर परस्पर को लड़वाना, बंटवाना चाहती है। आपको वोट बैंक के रूप में उपयोग करके देश को भी तोड़ रही हैं। आपके विकास में अवरोध खड़ा कर रही है और देश के विकास में भी।

ये अपने कुछ समय की गद्दी के स्वार्थ के लिए हमें हमेशा-हमेशा के लिए पीछे धकेल रहे हैं। इसे समझना आवश्यक है। ऐसे लोग जो अलगाव पैदा कर रहे हैं एक उपासना पद्धति को विशेष सुविधा और संरक्षण देकर वे हमारे देश को भी तोड़ रहे हैं। संस्कृति को भी तोड़ रहे हैं। ऐसे नेताओं को देश के सिंहासन पर, अपने हृदय के सिंहासन में न बिठाकर कूड़ेदान में फेंकने की आवश्यकता है। तभी देश की सुरक्षा और हमारा विकास सम्भव है।

हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अन्य मुस्लिम राष्ट्रों में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। जो हिन्दुस्तानी मुसलमान देश बंटवारे के समय पाकिस्तान चले गये थे, उन्हें आज तक भी वहां की नागरिकता एवं नागरिक सुविधाएं प्राप्त नहीं है। उन्हें मुहाजिर कहा जाता है। जो आज भी रिफुजी कैम्प में अपना जीवन यापन कर रहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदीजी समग्र (साहित्य) के तीसरे खण्ड में पढ़ रहा था विदेशों में वन्देमातरम् का महत्त्व। विदेशों में विदेशी मुसलमान हिन्दुस्तानी मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनका सामाजिक बहिष्कार कर रखा है। तो वहां के हिन्दुस्तानी मुसलमान वन्देमातरम् चिल्लाकर अपनी

हीनता को दूर करके अपना मनोबल गिरने नहीं देते। उन्होंने सारे उद्धरण भारतीय मुसलमानों के दिये हैं।

अतः सारे देश में पथ की विभेदता को अलगाव का आधार न बनाकर अपनी विशेषता का आधार बनाना चाहिए। जिसे हम सदा से भारत में देखते आए हैं। कुछ समय से जो यह विकृति प्रवेश कर गयी है उसे दूर करना चाहिए।

सारे देश में एक कानून, एक व्यवस्था होनी चाहिए तभी मनों में जो भेद प्रवेश हो गया है वह दूर होगा। और, हम एक अखंड शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विश्व में प्रतिष्ठित हो सकेंगे। अब वह दिन दूर नहीं है।

6 जून 1986 को श्री अज्ञेयजी और नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री राजेन्द्र माथुर दीनदयाल शोध संस्थान के मंच से बोले। उनका निष्कर्ष यह था—राष्ट्रीयताबोध और राष्ट्र की मुख्यधारा की स्वीकृति-अस्वीकृति और पहचान का प्रश्न यदि अल्पसंख्यकों की स्वीकृति-अस्वीकृति और उनके प्रमाण पर छोड़ दिया जायेगा तो भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्र के व्यक्तित्व और उसकी मुख्यधारा को कभी परिभाषित और रूपायित नहीं किया जा सकेगा। यह इतिहास का एक सर्वकालिक सत्य है कि भारत का अस्सी प्रतिशत बहुमत वाला समाज हिन्दू समाज है उसने ही देश का व्यक्तित्व बनाया है।

× × ×

पठान एवं मुस्लिम बन्धु! पाणिनि और यास्क का वंशज है, पर चूंकि वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं है। इनके पूर्वजों ने वैदिक साहित्य के अनमोल अंशों का सम्पादन किया था, परन्तु चूंकि वह मुसलमान है इसलिये उसके लिये वह साहित्य कुफ्र है।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रो. ओबराय और अब्दुल लतीफ

एक बार प्रो. ओबरायजी इस्लामिया कॉलेज में इतिहास के विद्वान् प्रो. अब्दुल लतीफ से मिलने गये। वे मकान में थे। उनके बाहर आने तक उन्हें (प्रो. ओबराय) कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उन्होंने विस्मित होकर सुना कि उनके घर के भीतर से रामायण की चौपाइयों के गानें की आवाज आ रही थी। उनके बाहर आने पर उन्होंने पूछा—लतीफ साहब! आप क्या गा रहे थे? उन्होंने हंसकर उत्तर दिया, अरे यार! तुम्हारी ही किताब पढ़ रहा था। ओबरायजी ने कहा— रामायण के ग्रंथ पर मेरा ही ठेका है क्या? वे बोले—मेरा मतलब है कि मैं हिंदुओं का पवित्र ग्रंथ पढ़ रहा था। उन्होंने पुनः पूछा—क्या रामायण हिन्दुओं का ही धर्मग्रंथ है या भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी। वे बोले—'आप सच कहते हैं, रामायण भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी है और विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊँचे नैतिक और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जायेगा। इसलिये फुर्सत निकालकर कुछ समय के लिये परिवार के सब सदस्यों को बैठाकर रामायण सुनाता हूँ। इससे मुझे बड़ा सुख मिलता है।' ओबरायजी सुनकर बड़े आनंदित हुए।

प्रो. ओबराय ने कहा—सम्राट् औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु के साथ बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरितमानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूवान को वेदसम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंदोनिजीया आदि देशों के मुसलमान आज तक चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं।

इस पर प्रो. लतीफ ने कहा—यह सच बात है। यह हमारा हिन्दुस्तानी तमुददम है जिसे दुनिया के लोग भी इज्जत से सर पर चढ़ाते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि रामायण और महाभारत हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता और न ही भारत के साथ एकात्म हो सकता है। मैंने कहा—यदि सचमुच हिन्दुस्तान के बंधु इस नसीहत को मानते तो देश के विभाजन की मांग की कल्पना भी नहीं आ सकती थी। बेशक देश की संस्कृति ही देश की एकता का सबसे बड़ा आधार है।

तब प्रो. ओबरायजी ने बताया—प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह रामलखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फांसी पर चढ़ गये। एक बार अश्फाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम ही चिल्लाते रहे। रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारे नस-नस में है इसने सबके दिल को जोड़ा है। अशफाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से सारा देश एक हो सकता है।

फिर उन्होंने थोड़ा विषय बदलकर पूछा—लतीफ साहब! इतिहास में आपका सम्राट औरंगजेब के बारे में क्या मत है? उन्होंने कहा—औरंगजेब ने हिन्दुओं में इसलाम फैलाने का सबसे बड़ा काम किया, लोग उसे जिन्दापीर कहते थे लेकिन व्यवहार में उसकी अतियों के कारण मुगलिया सल्तनत की इति हो गयी। मैंने पूछा—क्या आप खुदा से दुआ मांगोगे कि खुदा आपको औरंगजेब जैसा बेटा दे। वे कानों को छूकर बोले—लाहोलावल्लाह कुव्वत तोबा-तोबा। औरंगजेब ने अपने जिंदा बाप को कैद करके पानी तक के लिये तरसा-तरसा कर मारा। अगर मेरे घर औरंगजेब जैसा बेटा होगा तो मुझे भी मार डालेगा। मैंने पुनः कहा—औरंगजेब जैसा भाई मांग लीजिये। वे कानों को छूते हुए बोले—खुदा रहम करे, अपने तीन-तीन भाइयों का खून करने वाला औरंगजेब जैसा भाई कौन मांगेगा। मैंने हंसकर कहा—औरंगजेब जैसा दोस्त मांग लो? उन्होंने मजाक से कहा—औरंगजेब दोस्त हुआ ही किसका। अपने-पराये सबके साथ दगा ही किया है।

मैंने पूछा—लतीफ साहब! आप खुदा से क्या मांगते हैं कुछ भी तो मांगिये। वे बोले 'या खुदा या दो तो राम जैसा बेटा दो, राम जैसा भाई दो, राम जैसा दोस्त

दो, राम जैसा दुश्मन भी दो, राम जैसा गुरु भी दो। राजा भी दो तो राम जैसा। वे मेरी ओर देखकर मुसकराकर बोले—मैं इसलिये लीगियों की नजर से बचकर रामायण पढ़ा करता हूँ।

अतः भारत को भारत बनाये रखना है तो राम का पथ चुनना पड़ेगा और राम विरोधियों को भारत छोड़ना पड़ेगा।

महमूद गजनवी ने जो हीन, जंगली और असंस्कृत कृत्य किये क्या उनके बारे में यहां के मुस्लिम गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसा है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए भी यह हानिकारक है। गजनवी ने जो किया था, बहुत बुरा किया था। इसलामी राज में जो बुराइयां हुई हैं उन्हें मुसलमानों को समझना और कबूल करना चाहिए। गुनाह कबूल करने से हलका होता है। भारत में बैठकर मुसलमान अगर अपने लड़कों को सिखायें कि गजनवी को आना है तो उसका मतलब यह हुआ कि वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को खा जाओ। इसे कोई बर्दाश्त करने वाला नहीं है।

—महात्मा गांधी

× × ×

हमीद दलवाई ने अपनी पुस्तक Muslim politics in secular India में लिखा है—मुसलमान, जो उन पर अत्याचार हो रहा है ऐसा नारा लगाते हैं उनमें से बहुतों से मिला कि आप पर कौन-सा अत्याचार होता है, चूंकि हमीद दलवाई मुसलमान थे अतः स्पष्ट रूप से बताया कि हिन्दुओं का बहुसंख्यक होना ही मुसलमानों पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है जिसके कारण देश का इतना बड़ा हिस्सा मुस्लिम राष्ट्र नहीं बन सका। जब तक हिन्दू समाज बहुसंख्यक रहेगा तब तक हम इस देश को मुस्लिम राष्ट्र नहीं बना सकते। यही हम पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है।

रामायण : साम्प्रदायिक या धार्मिक

मई, 1993 ई. की एक सायं हमारे निवास स्थान पर हमारे एक मुस्लिम ग्राहक मुम्बई से पधारे। गृह आंगन में तम्बू, कनातें, शामियाने तथा प्रकाश प्रबंधों को देखकर गिला-शिकवा के स्वर में बोले कि मित्तलजी क्या जश्न (उत्सव) मनाया जा रहा है, हमें आप ने निमन्त्रित ही नहीं किया? तो मैंने बताया कि शेख साहब रामायण की कथा चल रही है। इससे उनकी तसल्ली हुई परन्तु उन्होंने फौरन पूछा कि मित्तलजी रामायण में क्या है? मैंने कहा कि शेख साहब आप स्नानादि से निवृत्त होकर आराम से दत्त-चित्त हो कर मेरे पास बैठें—मैं आपको सारी रामायण तो नहीं सुना सकता परन्तु एक-दो प्रसंग अवश्य सुना दूंगा। उसी अनुसार वह स्नान इत्यादि करके नाश्ता लेकर मेरे पास आ बैठे और रामायण का प्रसंग सुनाने का आग्रह किया—तो मैंने श्री रामजी के राज्याभिषेक का निर्णय तथा वनवास का प्रसंग लेकर बताना आरम्भ किया कि रघुकुल तथा भारत की परम्परा थी कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होता था। आगे मैंने बताया कि रघुकुल में एक महान् प्रतापी राजा दशरथ हुए हैं—उनकी तीन रानियां थीं—कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी। किसी युद्ध में कैकेयी ने महाराजा के प्राण बचाने के लिए अपने जीवन पर बड़ा भारी खतरा मोल लेकर ऐसा पराक्रम किया जिससे महाराजा का जीवन ही नहीं बचा अपितु वे विजयी भी हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर रानी को कोई भी दो वर मांगने को कहा। रानी ने कहा कि उसे तो महाराजा का जीवन बचने तथा विजयी होने की ही अत्यन्त प्रसन्नता है और वरदान लेकर क्या करेगी। राजा के जोर देने पर भी जब रानी ने कुछ भी मांगने से इनकार कर दिया तो राजा ने कहा कि अच्छा, मैं वचन देता हूँ कि जीवन भर में तू जब चाहे दो वरदान मांग लेना मैं पूरे करूंगा।

इस घटना के काफी साल पश्चात् तीनों रानियों के सन्तान हुई। कौशल्या से श्री रामजी प्रकटे, सुमित्रा से श्री लक्ष्मण और श्री शत्रुघ्न तथा कैकेयी से श्री भरतजी। जब यह बेटे जवान हो गए तो महाराज श्री दशरथजी ने अपनी राज्य सभा में प्रस्ताव रखा कि वह अब राज्य से निवृत्त होना चाहते हैं तथा परम्परा अनुसार राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को देना चाहते हैं—तो सारी राज सभा ने इस प्रस्ताव की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

राजगुरु वशिष्ठजी ने कहा कि ज्योतिष के अनुसार अगले ही दिन राज्याभिषेक हो जाना चाहिए नहीं तो फिर 14 साल की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। कठिनाई यह आ गई कि श्री भरतजी अपने भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर ननिहाल गये हुए थे। तो भी 14 साल प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। इस कारण सारी राज्यसभा ने बल दिया कि भरतजी तथा शत्रुघ्नजी की प्रतीक्षा किये बिना ही अगले ही दिन रामजी का राज्याभिषेक हो जाना चाहिए। अतः सर्वसम्मति से अगले ही दिन के लिए रामजी के राज्याभिषेक का निश्चय हो गया। सारी अयोध्या में प्रजा ने आनन्दोत्सव आरम्भ कर दिये। राम का राज्याभिषेक होगा, कितने आनन्द की बात है। घर-घर बधाइयां दी जाने लगीं। परन्तु इस अवसर पर एक दासी के बहकावे में आकर रानी कैकेयी ने रोष प्रकट किया तथा श्री दशरथ को याद दिलाया कि उन्होंने दो वर दे रखे हैं और वह अब दो वर मांगना चाहती है। इस पर राजा दशरथ ने कहा कि वह वर मांगे—रानी ने वचन मांगा कि दशरथजी मांगे हुए वरदान अवश्य पूर्ण करेंगे, जिस पर श्री दशरथजी ने वचन दिया कि रानी जो भी वर मांगेगी वह पूरा करेंगे। इस पर रानी ने मांगा कि राम के स्थान पर भरत को राज्य दिया जाए और रामचन्द्रजी को 14 साल का वनवास दिया जाए। यह सुनते ही दशरथजी व्याकुल हो गए और रानी को समझाने लगे कि वह ऐसा वर न मांगे, परन्तु वह नहीं मानी। दशरथजी मूर्च्छित हो गए। माता कैकेयी ने रामजी को बुलाकर सारी बात बताई जिस पर श्री रामचन्द्रजी फौरन वन जाने के लिए तैयार हो गए और उन्होंने माता कैकेयी को कहा कि इतनी सी बात तो आप मुझे सीधी ही कह देतीं तो मैं फौरन वनवास ग्रहण कर लेता, आप ने पिताजी को अनावश्यक कष्ट दिया—जब मैं यहाँ तक प्रसंग सुना चुका तो शेख साहब बोले कि क्या राम अपने हकूक (अधिकारों) के लिए लड़े नहीं वैसे ही मान गए। इतने बड़े देश का राज कोई इन्सान ऐसे ही छोड़ दे यह कैसे मुमकिन (सम्भव) हो सकता है—आप एक असम्भव तथा काल्पनिक बात सुना रहे हैं। तो मैंने उत्तर में कहा कि यह हकीकत (वास्तविकता) है या तुखैयल (काल्पनिक) इस प्रश्न का उत्तर मैं बाद में दूंगा वह पहले सारा प्रसंग सुन लें और मैंने बताया कि श्री रामचन्द्रजी वन की ओर जाने को तैयार हो गए, उनकी धर्मपत्नी सीताजी तथा अनुज (छोटे भाई) लक्ष्मणजी भी साथ जाने को तैयार हो गए तथा तीनों वनवास के लिए चले गए। पिता के रोकने पर भी रामचन्द्रजी नहीं रुके। उन्होंने कहा कि पिताश्री के धर्म का पालन करने हेतु मैं वन में जाऊँगा ही। अतः वह तीनों, वन को चले गए। इसी बिछोह के दुःख में कि उनके वचन के कारण राम, लक्ष्मण तथा सीताजी को वन को जाना पड़ा। श्री दशरथजी ने प्राण त्याग दिए। श्री भरतजी को ननिहाल से बुलाना पड़ा। मैंने आगे बताया कि अब अयोध्या पहुँचने पर श्री भरतजी को

इस सारे घटनाचक्र का पता चला तो वह बहुत दुःखी हुए और इस सारे कांड के लिए माता कैकेयी को बहुत फटकारा। पिता का अन्तिम संस्कार करने के बाद राज सभा बुलाई, सभी मंत्रियों ने तथा राज सभा के सदस्यों ने भी भरतजी को राजा बनने तथा राज्य सम्भालने की प्रार्थना की, परन्तु भरतजी ने प्रस्ताव रखा कि राज्य तो ज्येष्ठ पुत्र का है। इसलिए वह राजा नहीं बनेंगे तथा वन में जाकर श्रीराम को मना कर वापस लाएँगे तथा राज्याभिषेक श्रीराम का ही होगा—मंत्रिगण तथा राजगुरु को साथ चलने को निमन्त्रित किया।

यहाँ पर फिर शेख साहिब बोले कि भरतजी ने भी राज्य लेने से इनकार कर दिया और मिला हुआ राज्य छोड़कर पुनः राज्य के दूसरे प्रतिद्वन्द्वी रामजी को जंगल से वापस लाने की बात की हो यह मेरी समझ में नहीं आता कि क्या ऐसा हो सकता है। मुझे तो इस पर विश्वास नहीं। हमारे तो हज़रत मुहम्मद साहिब के सगे नवासों हसन तथा हुसैन को हजरत मुहम्मद साहिब के ही पैरोकार (अनुयायी) यज़ीद ने जंगे करबला में पानी से भी प्यासा तड़फाया। हुसैन को उसी की बीवी ने यज़ीद से मिलकर जहर दे कर मार डाला। हुसैन को यज़ीद ने प्यासा ही नहीं तड़फाया, बाद में कत्ल भी करवा दिया। यह सब राज्य के लिए हुआ। औरंगजेब ने अपने ही भाइयों को मरवा दिया, पिता को जेल में डाल दिया। राज्य का मोह कौन छोड़ सकता है? आप कहते हैं कि पहले राम ने राज्य छोड़ दिया फिर भरत ने भी झगड़ा नहीं किया, उलटे राम को जंगल से वापस लेने चल पड़े 'मुझे तो इस पर विश्वास नहीं आता'। इस पर मैंने फिर दोहराया कि इस शंका का निवारण मैं प्रसंग की समाप्ति पर अवश्य करूंगा। आगे मैंने सुनाया कि वन में भरतजी मंत्रिगण, राजसभा सदस्य तथा तीनों माताएं, राजा जनक सहित पधारे तथा श्रीराम से अयोध्या वापस जाकर राज्य सम्भालने की प्रार्थना की—माता कैकेयी ने निवेदन किया कि मैं अपने वचन से आपको मुक्त करती हूँ। आप अयोध्या वापस चलो और अपना राज्य सम्भालो, परंतु श्रीराम ने कहा कि यदि पिताजी जीवित होते तो विचार किया जा सकता था, अब पिताश्री द्वारा दिये गए वचनों को कोई वापस नहीं ले सकता। अतः पिताश्री के वचनधर्म की पूर्ति इसी में है कि मैं 14 वर्ष वनों में रहूँ। इस पर भरतजी ने कहा कि अच्छा ठीक है अपनी चरण पादुकाएं दे दें मैं अयोध्या ले जाऊँगा—तथा उनको अयोध्या ले जाकर स्वयं सिंहासनारूढ़ न होकर इन्हें ही सिंहासन पर सुशोभित करूँगा। ऐसा ही हुआ। सिंहासन पर श्रीराम की खड़ाऊं (चरण पादुकाएँ) विराजित कर दी गईं तथा स्वयं वनवासियों जैसी ही पर्णकुटि बनाकर उसमें 14 साल रहे—वहीं से राज कार्य चलाया। इस महान् देश में 14 वर्ष श्रीराम की खड़ाऊं सिंहासन पर विराजमान रहीं तथा ज्यों ही पन्द्रहवें साल के प्रथम दिन श्रीराम अयोध्या पधारे उनका राज्य

अभिषेक हुआ। सभी ने राम तथा भरत, दोनों की जय-जयकार की, बाजे बजे, देवताओं ने भी पुष्प वर्षा की।

इस पर फिर शेख साहब ने अपनी शँका का निराकरण चाहा तो मैंने कहा कि आप की शंका का निराकरण तो मैं अवश्य ही बाद में करूँगा पहले बताइए कि आप अपने परिवार का मॉडल राम तथा भरत जैसा चाहते हो या यज़ीद तथा हसन-हुसैन जैसा, या फिर औरंगजेब तथा शाहजहां वाला चाहते हो। कुछ देर सोचने के पश्चात् बोले कि इस दुनिया में कौन नहीं चाहेगा कि उसका परिवार श्रीराम तथा भरत जैसा हो। मैंने कहा कि बहुत अच्छा! तब आप के बच्चों पर राम और भरत जैसे संस्कार पड़ें, इसके लिए अपने घरों में बार-बार रामायण की कथा करवाया करो। रामायण कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं। यह तो हमें यह बताता है कि जीवन कैसे जीना चाहिए। भाई का भाई से क्या सम्बन्ध हो, पिता का पुत्र से, राजा का प्रजा से, सेवक का स्वामी से, मित्र का मित्र से क्या सम्बन्ध हो और शत्रु से, शत्रु की पत्नी से तथा शरणागत से क्या सलूक किया जाए। रामायण का किसी भी मज़हब या सम्प्रदाय से न कोई सम्बन्ध है न टकराव। यह तो भारतीयों का धर्मग्रन्थ है—जीवन जीने की पद्धति सिखाता है। इसे पढ़ो, सुनो तथा परिवार में इसकी कथा करवाया करो, आपके बच्चों पर इसके अच्छे संस्कार पड़ेंगे। और आप के परिवार को राम और भरत के मॉडल प्राप्त हो सकें इसकी सम्भावनाएँ बढ़ेंगी। हसन और हुसैन केवल आपके हम मज़हब थे, आप के पूर्वज नहीं थे—आप नहीं चाहते कि आप के घर का वह मॉडल बने, तो घरों में उनका वर्णन बंद करो। आप परिवार को जो बनाना चाहते हो उसके अनुरूप कथा तथा उस कथा के पात्रों में श्रद्धा पैदा करो। जो नहीं चाहते उसे अपना कहना तथा उसका जिक्र बन्द करो।

तब मैंने आगे कहा कि अब मैं आप की शंका का समाधान करता हूँ। हम तो राम कथा को वास्तविक ही मानते हैं और इसे भारत का गौरवमय इतिहास मानते हैं। श्रीराम को भारत का गौरव मानते हैं। परन्तु हमें देखना यह है कि जब हम इस गाथा से अपने परिवार में श्री रामजी तथा भरतजी जैसे संस्कार प्राप्त करना चाहते हैं तो क्या वे इसे काल्पनिक मानकर प्राप्त होंगे या वास्तविक मान कर होंगे। काल्पनिक मानने से वे संस्कार कमजोर रह जाएँगे। इसलिए यदि यह काल्पनिक भी हो तो भी इसे वास्तविक ही मान लेना चाहिए। इसी में हमारा हित है और इस कथा को बार-बार अपने घरों में सुनना चाहिए। बार-बार अच्छा संस्कार मिलने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है तथा बुरा सुनने से मनुष्य राक्षस बन सकता है।

यदि यह काल्पनिक है तो जिस ऋषि ने पारिवारिक जीवन की इतनी महान् कल्पना की परिवार की ही नहीं बल्कि सारे मनुष्य जीवन तथा समाज की ऐसी

महान् कल्पना की वह ऋषि कितना महान होगा। हमें गौरव है उस आदि-कवि पर जिसने इतनी महान् कल्पना की है। हम उस महान् ऋषि वाल्मीकि को भी शत-शत प्रणाम करते हैं और उन श्रीराम तथा श्रीभरत को प्रणाम करते हैं जिनकी कृति के अनुसार हम अपना तथा अपने परिवार का जीवन बनाना चाहते हैं। उस भारत माता को भी सहस्र-सहस्र प्रणाम करते हैं जिसने ऐसे महान् सपूतों को जन्म दिया, जिसने श्री वाल्मीकि जैसे महान् साहित्यकार तथा विश्व के प्रथम कवि को जन्म दिया।

इस पर शेख साहब बोले कि हम तो अब तक रामायण को एक मज़हबी किताब समझते रहे। हमें पता नहीं था कि यह जीवन, परिवार, समाज तथा मनुष्य मात्र के लिए इतना उपयोगी ग्रंथ है। इसे अब मैं (शेख साहब) जरूर पढ़ूँगा। मुम्बई से ही खरीद लूँगा।

हमारा अन्त में इतना कहना है कि रामायण ही नहीं हमारा बहुत-सा साहित्य धार्मिक है, साम्प्रदायिक नहीं। परन्तु धर्म का गलत अर्थ मान लेने से हम उसका लाभ संसार-भर को नहीं दे पाए।

साभार : राष्ट्रीयता, लेखक : चतुर्भुज मित्तल

'मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं हुआ जितना की श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।'

—महात्मा गांधी

× × ×

महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदिकवि होने के नाते सारे विश्व वाङ्मय के पूज्यतम पूर्व पुरुष हैं। उन्होंने जो अमर रामचरित्र दिया उससे न केवल भारत का वरन् सारे विश्व का मुख समुज्ज्वल हुआ तथा साहित्य भण्डार समृद्ध हुआ।

—प्रो. ओबराय

हमारे आदर्श राम या बाबर, आदर्श पुस्तक रामायण या बाबरनामा एवं आदर्श स्थान रामजन्मभूमि मन्दिर या बाबरी मस्जिद

प्रश्न मन्दिर और मस्जिद का नहीं है। प्रश्न भारत की पहचान का है। भारत की अस्मिता का है। प्रश्न है भारत की पहचान राम मन्दिर से बनेगी या बाबरी मस्जिद से। भारत के आदर्श पुरुष कौन होंगे राम या बाबर। आज बाबर की तुलना सिर्फ राम से ही नहीं की जा रही है वरन् बाबर को राम से श्रेष्ठता भी प्रदान की जा रही है। अतएव आज इस पर तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन करने की आवश्यकता है।

राम उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को जोड़ने वाले ऐक्य निर्माता

रामायण काल से पूर्व विन्ध्याचल के नीचे के दक्षिणापथ में आर्यावर्त्त का विस्तार नहीं हुआ था। मनु भगवान् ने आर्यावर्त्त की सीमाएँ गिनाते हुए कहा है कि जिसके उत्तर में हिमालय व दक्षिण में विन्ध्याचल है, पूर्व एवं पश्चिम में समुद्र है वह आर्यावर्त्त है। पुराणों की गाथा के अनुसार विन्ध्याचल का ईर्ष्यावश हिमालय से ऊँचा उठने का प्रयास वस्तुतः विन्ध्यगिरि में वास करने वाली वनवासी जातियों का आर्यावर्त्त के विरुद्ध राक्षसप्रेरित विद्रोह था।

विन्ध्याचल तथा लंका के बीच का क्षेत्र अर्ध-सभ्य, वनवासी, वनचर जातियों का क्षेत्र (वानर देश, दण्डकवन, जनस्थान) आदि कहलाता था। इसी में कोल, किरात, भील, शबर, ऋक्ष, वानर, भल्लूक, गोंड, द्रविड़ आदि जातियाँ बसती थी।

लंका के राक्षस राजा रावण के दूत एवं नरभक्षी राक्षस सारे दक्षिण भारत में अपने आततायी प्रभाव का विस्तार कर फैले हुए थे। वे ऋषि-मुनियों को खा कर उनकी हड्डियों के पर्वताकार ढेर बना देते थे, वे बक्सर (वक्षसर) तक पहुँच कर विश्वामित्र का यज्ञ ध्वंस कर देते थे, वे भोले-भाले वनवासी वानरों को सताते थे। रावण ने किष्किंधा (वर्तमान अनागोंदी, निकट हम्पी, जिला बिल्लारी, तुंगभद्रा के तट पर, आन्ध्रप्रदेश) के वानर राजा बाली से मिल कर यह कूटनीतिक षड्यन्त्र रचा था कि वे दोनों (राक्षस एवं वानर) मिल कर मानव देश आर्यावर्त्त की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

भगवान् राम जब अपने कंधों पर दुष्ट दलन हेतु धनुष-बाण एवं सरलमना, वनवासी-जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर दण्डकवन के कण्टक पथ पर उतरे।

भगवान् राम जब वनवासी बन कर वनवासी-जनों की कुटिया पर प्रेमदान हेतु पहुँचे तो वह मानव इतिहास का अद्वितीय समन्वय प्रयोग था। भगवान् राम का गुह्य को प्रेमदान, केवट से प्रेम ठिठोली, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद पर वात्सल्य, बाली पर कृपा, जटायु पर करुणा, विभीषण को शरणागति, शबरी के जूठे बेरों की स्वीकृति आदि ऐसे अलौकिक आचार थे जो जन-हृदयों को स्नेह सूत्र से ऐसा बाँध देते हैं कि काल के थपेड़े भी उन्हें विलग नहीं कर सकते। उन्होंने नगरवासी को ग्रामवासी एवं वनवासी से जोड़ा। उत्तरापथ और दक्षिणापथ को ऐक्यबद्ध किया। इस प्रकार राम सारे भारत के प्रतिनिधि नायक हैं। रामायण उत्तरापथ और दक्षिणापथ को एकात्म सूत्र में बाँधने वाला ऐक्य मन्त्र है। रामायण भारतीय राष्ट्र के अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रीयता में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है।

इसके विपरीत बाबर ने विदेशी आक्रान्ता बनकर देश की स्वाधीनता लूटी, देश एवं देशवासियों को खण्ड-विखण्डित किया। राम तो राज्य गद्दी छोड़कर वनवासी बने। वनवासियों को प्रेमदान देने के लिये देश व संस्कृति के साथ एकात्म करने के लिये। इसके विपरीत बाबर जो एक बर्बर, नृशंस लुटेरा था हमारे देश की स्वाधीनता छीनकर यहाँ के वासियों को पीड़ित व लांछित किया। भाई-भाई को परस्पर तोड़ा, खण्डित किया। सहस्रों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर मध्य एशिया के काबुल-कंधार आदि स्थानों में ले जाकर बेचा गया।

वीतरागी महान् संत गुरु नानकदेव जिनका प्रत्यक्ष राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके दो शिष्यों बाला एवं मरदाना में से एक मुसलमान था। उस युग में कुछ ऐसी राजनीतिक आपदाएं आई जिनको ब्रह्मज्ञानी गुरु नानकदेव भी आँख से ओझल नहीं कर सके। वे बाबर के विषय में कहते हैं—

पाप की जंझ ले काबलो धाया, जोरी मंगै दान वे लालो।
सरम धरम दोए छप्प खलोए, कूड फिरै परधान वे लालो।।

वह क्रूर आक्रमणकारी बाबर अपने साथ पाप की सेना लेकर काबुल से भारत पर चढ़ आया। वह बलात्कार से धन-सम्पत्ति मांगता है। शर्म (लोक-लज्जा) और धर्म, दोनों भाग कर छिप गए हैं। अर्थात् उस अत्याचारी के सामने शर्म और धर्म को भी शर्म आती है। सब तरफ झूठ एवं पाप ही प्रधान है।

गुरु नानक के थोड़े काल बाद गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा था—'नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहिं।' गुरु नानक ने मुगल

राजाओं को कसाई कहा तो तुलसी ने उन्हें चोर कहा—

वेद धर्म दूरि गये। भूमि भूप चोर भये।

राम तीर्थ संस्थापक और बाबर तीर्थ विध्वंसकारी

यूरोप में राष्ट्र को एक राजनीतिक इकाई माना जाता है। सारे यूरोप की सभ्यता और संस्कृति लगभग एक समान होने पर भी वहाँ 20 राष्ट्र हैं और नये राष्ट्र उभरने की सदा सम्भावना बनी रहती है। भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। इसलिये भारत में सैकड़ों राज्य होने पर भी एक संस्कृति के आधार पर भारत एक राष्ट्र सदा से रहा है। इस सांस्कृतिक एकता को पोषित-संवर्द्धित किया है हमारी तीर्थ परम्परा ने। इसलिये आदि शंकराचार्य ने अपने केरल राज्य से निकलकर देश के चार कोनों में चार मठ स्थापित किये। इस दृष्टि से उत्तरापथ को दक्षिणापथ से जोड़ने के लिये भगवान् श्रीराम ने रामेश्वर तीर्थ की स्थापना की। भारत का प्रत्येक तीर्थ पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करता है। तीर्थ भ्रमण द्वारा सारा देश अपने आपको एकात्म अनुभव करता है। इसलिये हमारे आचार्यों ने, अवतारों ने, महापुरुषों ने भारतीय जनगण हेतु तीर्थों की स्थापना की जिससे देश एक अखण्ड राष्ट्र बना रहा।

इसके विपरीत बाबर सदृश विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं ने कृष्ण जन्मभूमि मथुरा, रामजन्मभूमि अयोध्या व काशी विश्वनाथ के मंदिरों को ध्वस्त किया। पवित्र धाम रामेश्वरम् की मूर्तियों को आगरा और दिल्ली ले जाकर उन्हें उलटा करके अपने महलों की सीढ़ियों में चुनवा दिया। हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलने के लिये पवित्र मन्दिर की मूर्तियों का मल-मूत्रोत्सर्ग करने के स्थान पर फर्श बनाने के लिये उपयोग किया। तो भारत की पहचान इन उन्मत्त धर्मोन्मादों से बनेगी या राम से?

स्त्रीशील रक्षक रामचन्द्र और स्त्रीशील भक्षक बाबर

राम ने स्त्रीशील की रक्षा के लिये त्रिभुवनजयी रावण को कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़कर फेंक दिया। भारत ने मातृ शक्ति, स्त्री जाति को सर्वोच्च सम्मान दिया। स्त्री जाति का अपमान कभी नहीं सहा। महाभारत काल में अपने ही भाई ने जब मातृशक्ति का अपमान किया तो उसको भी कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़कर फेंक दिया।

इसके विपरीत हजारों स्त्रियों के शील को भंग करने वाला था बाबर। स्वयं गुरु नानकदेव ने बाबर द्वारा नारी जाति की जो बड़ी दुर्दशा की गई उसका बड़ा करुण चित्र खींचा है—

जिन सिर सोहन पट्टियां, मांगी पाए सिन्धूर,
से सिर काती मुन्नियन, गल विच आवे धूड़।

जिन भारतीय महिलाओं (हमारी माँ-बहिनों) के सिर में सुन्दर बालों की पट्टियाँ शोभा पाती थीं और उनकी मांग में सौभाग्य सूचक सिन्दूर शोभित होता था, उन्हीं देवियों के शीशों को कृपाण की धार से मूंड डाला गया है तथा उनके गले में धूल झोंक दी गई है।

यह रक्त के आंसू लाने वाला चित्र और भी कितना भयंकर है—

दूतां नूं फरमाया, लै चलै पत गंवाए,
बाबर वाणी फिर गई, कोयर न रोटी खाए।

भारत में मुगलों के अत्याचारी शासन के मूल संस्थापक नर-पिशाच बाबर ने अपने दूतों को कहा कि इन नारियों की पत छीन कर इनका सौभाग्य लूट कर ले जाओ। उस बाबर ने ऐसी घोषणा कर दी। तब किसी कुंवर (राजकुमार) को रोटी नसीब नहीं होती थी।

बाबर के आदर्श पर चलने वाले पाकिस्तान ने हजारों हिन्दू स्त्रियों का नंगा जुलूस निकलवाया। और इसी आदर्श पर चलने के कारण आज भी हिन्दू बहू-बेटियाँ प्रतिदिन चुराई जा रही है, देश-विदेशों में बेची जा रही हैं, और चुराने वाले को उनके समाज में बड़े आदर का स्थान प्राप्त होता है। और हिन्दू बालिकाओं को फंसाने के लिये 'लव जिहाद' के रूप में सुनियोजित आन्दोलन चला हुआ है। जिसमें अनियंत्रित व विकृत काम लिप्सा की पूर्ति और राजनीतिक षड्यंत्र शामिल हैं।

राष्ट्र भक्ति, राष्ट्रमुक्ति एवं लोकतंत्र तथा लोकमंगल की आदर्श स्थापना

भगवान् राम ने जहाँ उत्तरापथ और दक्षिणापथ को, विन्ध्याचल के ऊपर के आर्यावर्त्त और विन्ध्याचल के नीचे वाले दंडक वन, वानर देश गौंड क्षेत्र, द्रविड़ देश को, आर्य एवं अनार्य सभी को एक सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता में बाँधकर एक चमत्कार किया, वहाँ उन्होंने राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रमुक्ति एवं लोकतन्त्र तथा लोकमंगल की ऐसी आदर्श मर्यादाएँ स्थापित की कि आज तक हम राम राज्य के स्वप्न को पुनः साकार करने के लिये तरसते रहे हैं। भगवान् राम ने वानर राजा बाली को मारने के बाद उसका राज्य उसी के भाई सुग्रीव को तथा श्रीवेरपुर राज्य को जीतकर सारा साम्राज्य निषादराज गुह्य को सौंप दिया।

लंका विजय के पश्चात् भगवान राम ने लक्ष्मण के लंका में ही बसकर राज्य चलाने के सुझाव के उत्तर में जो देश भक्ति का सूत्र दिया वह आज तक हमारी राष्ट्रभक्ति का महामंत्र बना हुआ है।

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात्

स्वर्णमयी लंका भी लक्ष्मण, तनिक न मुझको भाती,
जननी जन्मभूमि तो मेरी, सौ स्वर्गों से भी ऊंची।

इसी राष्ट्र प्रेम के मन्त्र से अभिमन्त्रित हुए भारत के देशभक्त बालक आज तक गाते हैं—

स्वर्णमयी लंका न मिले मां, अवधपुरी की धूल मिले।
सोने में कांटे चुभते हैं, मिट्टी में है फूल खिले।।

लंका विजय के पश्चात् भगवान राम ने राज्याभिषेक के प्रसंग पर प्रजाजनों को अत्यन्त उदार लोकतंत्र निष्ठ वाणी में कहा—

जो अनीति कछु भाषौ भाइ, तो मोहि बरजहु भय बिसराइ।।

एक चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुलेआम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीतिपूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय होकर सम्राट को भी वर्जित कर दें—एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है।

श्रीराम प्रजानुरंजन के लिये, लोकमंगल के लिये बड़ा से बड़ा व्यक्तिगत त्याग करने के लिये सदैव तत्पर रहे। प्राणवल्लभा सीता का त्याग भी करने को प्रस्तुत रहे। यही कारण है कि धोबी के विरोध को गलत जानते हुए भी उसको स्वीकार करते हैं, सीता को निष्कलंक जानकर भी। क्योंकि सर्वोच्च पद पर कोई दाग नहीं होना चाहिये। सर्वोच्च पद भ्रष्ट है तो सारा देश नष्ट है उसका भ्रष्ट होना अवश्यम्भावी है। भ्रष्टता ऊपर से नीचे फैलती है झरने की तरह। झरना नीचे फैलता जाता है। नदी का मूल स्रोत संकरा होता है बाद में फैलता जाता है। भ्रष्टता भी ऊपर से प्रारम्भ होती है और नीचे फैलती जाती है।

इसके विपरीत बाबर व बाबरनामा ने या उसके पथानुयायियों ने राष्ट्रभक्ति का कौन-सा कार्य किया था, कौन सा मन्त्र दिया? वरन् बाबर के पथानुयायी बाबरनामा के आदर्शानुसार सारे देश भर में आग एवं हत्या से आतंक मचाकर हमारी सदावत्सला भारत मां के टुकड़े कराकर पाकिस्तान बना दिया और बचे भारत में उनकी वही विभाजन की पुरानी दृष्टि बनी हुई है।

और बाबर के आदर्शों पर चलने वाले इसलामी राज्यों में बर्बर तानाशाही है जहाँ इसलाम के इतर सम्प्रदायों को अपने आदर्शों के साथ, सम्मान व स्वाधीनता के साथ जीने का हक नहीं है। वह अपनी पूजाविधि, संस्कार विधि का पालन नहीं कर सकता, अपने आराध्य देव को श्रद्धासुमन नहीं चढ़ा सकता। अपने आराधना स्थल बनाने की बात तो दूर रही।

नैतिक मूल्यों का सुन्दरतम संग्रह

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतार कर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Well ने महात्मा गांधी को Charter of Human Right (मानवाधिकारों का घोषणापत्र) के लिए प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणापत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र (Charter of Human Duties) बनाना चाहिए। जब वेल्स ने मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि 'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणापत्र है।'

बाबरनामा ने ऐसा कौन-सा नैतिक मूल्यों का प्रारूप प्रस्तुत किया? विश्ववंद्य गांधीजी राम नाम को अपना जीवन मंत्र मानते थे, इसे ही सारी महानता का रहस्य बताते थे। उन्होंने राम-राज्य के आदर्श के लिये सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। वह कहते हैं—राम मंत्र ने ही मेरी रक्षा की है अन्यथा दो स्त्रियाँ को बहन कहने के योग्य नहीं रहता।

राम नाम से पत्थर तो क्या मनुष्य तरते देखे हैं। रत्नाकार डाकू से महर्षि वाल्मीकि बनते देखा है, काम में अन्धे युवक रामबोला को गोस्वामी तुलसीदास बनते देखा है, बिगड़े हुए बनिये के बच्चे को विश्ववंद्य महात्मा गांधी बनते देखा है। राम राज्य धर्मपरायण-नीतिपरायण, न्याय और कानून के सामने सब बराबर है। जहाँ कुत्ते को भी न्याय मिलता है। और बाबर मजहबी उन्मादी। उसके अनुसार जो इसलाम को नहीं मानता है वह काफिर है। इस लोक में नृशंस रूप से वध के योग्य है। उनके स्त्री-पुत्र, धन सम्पत्ति पर उसका अधिकार और परलोक में अनन्त अग्नि में अनन्त काल तक जलाया जायेगा। बाबर काफिरों के नरमुण्डों के पहाड़ पर खड़ा होकर गाजी की उपाधि धारण करने वाला जिसके विषय में वीतरागी संत गुरु नानकदेव स्वयं कहते हैं—

कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिया।
कूड अमावस सच्च चन्द्रमा, दीसे नांहि के चढ़िया।।

अर्थात् कलियुग का यह काल छुरे के समान तीक्ष्ण है, राजा कसाई बन गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् सब ओर अधर्म का ही बोल-बाला है। झूठ की काली अमावस्या की रात है। जिसमें सचाई का चन्द्रमा कहीं भी उदित दिखाई नहीं देता।

हऊ भालि बिकनी होई, अन्धेरे राह न कोई।
बिच हउमैं दुःख रोई, कहू नानक किस विध गति होई।।

गुरु नानक कहते हैं, मैंने बहुत ढूंढ़ा, खोजा किन्तु सब तरफ पाप का अन्धेरा छाया हुआ है, उसमें कोई धर्म की राह दिखाई नहीं देती। अहंकार में सारा जग दुःख पा रहा है। हाय, इस संकट से मुक्ति कैसे होगी?

गुरु नानकदेव ने जनता की दुरवस्था का चित्र बड़ा मार्मिक खींचा है—

राजे शींह, मुकद्दम कुत्ते। जाए जगाइन बैठे सुत्ते।

सोई हुई या निश्चिंत बैठी हुई निरीह, निरपराध जनता पर मुगल राजे भूखे शेर के समान टूट पड़ते थे और उनके मुकद्दम शिकारी कुत्तों के समान शिकार में उनकी मदद करते थे।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में 'रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है।' रामायण में भारत प्रतिष्ठित है तथा भारत में रामायण प्रतिष्ठित है। रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधिग्रंथ है। रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवन मूल्य मुखर हो उठे हैं। विश्वकवि के शब्दों में 'रामायण से भारत वर्ष ने जो कुछ श्रेष्ठ था वही पाया है। रामायण के सरल अनुष्टुप छन्दों के द्वारा भारतवर्ष का हृदय हजारों वर्षों से उछल रहा है।

फ्रांस के महान् इतिहासकार मिचलेट ने रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किये हैं या महान् आकांक्षा संजोयी है, उसे रामायणरूपी अमृत के भरपूर प्याले से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है। यूनान छोटा और तंग है और वहां मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा वहां मैं हांफ जाता हूं। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहां मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण। हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रंथ जिसमें कहीं लयभंग नहीं है। वहां एक अपार शान्ति का राज्य है। कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द है जो सब जीवों पर प्रेम, दया और क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

रामायण विश्व-मैत्री व विश्व ऐक्य का आधार ग्रन्थ

डॉ. लोहिया अनीश्वरवादी थे, फिर भी श्रीराम, कृष्ण आदि की चर्चा करते हैं, क्योंकि ये राष्ट्र की एकता के नायक नहीं विश्व ऐक्य का आधार हैं। ये सारे मानव जाति के आदर्श पुरुष हैं। श्रीराम को वे भारतीय संस्कृति का आधार मानते थे। रामकथा संसार व्यापी है। इसलिये उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की। क्योंकि रामायण मेला विश्व-मैत्री का प्रबल सांस्कृतिक आधार भी है। रामकथा भारत के उत्तर-दक्षिण भाग को ही जोड़ने वाली मात्र नहीं, सिर्फ दक्षिण पूर्व एशिया को मात्र एकात्म सूत्र में बाँधने वाली एशियाई एकता का ही आधार नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय सौहार्द का अनुपम साधन है।

एशिया के विभिन्न देशों में आज तक रामायण को पूज्य दृष्टि से देखा जाता है और उस कथानक के नाटक खेले जाते हैं। रामायण इस दृष्टि से पुरातन होती हुई भी नित्य नवीन है। यह जीवित परम्परा है। इतना ही नहीं कि हिन्दुओं में ही इसे जीवित कहा जा सकता है, जिन देशों में रामायण वहाँ के जनों के जीवन पर छा गयी है, वहाँ की मुस्लिम जनता भी इससे उतनी ही प्रभावित है। दक्षिण-पूर्व एशिया के सब देशों को आपस में एक सूत्र में बाँधने वाली शृंखला, सबकी एक समान धरोहर, एकमात्र रामायण ही है।

इस काव्य की कथा का आधार लेकर भिन्न-भिन्न देशों में भित्ति-चित्र अंकित किये गये हैं, इस काव्य को लेकर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, नाटक खेले गये हैं, रामायण मानव संस्कृति के एक बड़े भाग के लिये बाइबिल बन गई है।

श्रीलंका में सीता एलिया (अशोक वाटिका) है। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम था रामावती, जो बदल कर रम्मनवती, रंगनवती, रंगन होते हुए रंगून हो गया। थाई देश के सभी राजाओं का नाम राम उपाधि से विभूषित है। वहाँ की प्राचीन राजधानी का नाम अयोध्या था। इण्डोनेशिया की प्राचीन राजधानी का नाम था अयोध्याकर्ता जो बदलकर आजकल जकार्ता हो गया है। प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुन्दरतम रामायण-मूर्तिशिल्प तीर्थ है। इण्डोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव का आयोजन किया। कम्बुज, लवदेश, चम्पा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व, अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूनानी महाकाव्य इलियड तो रामायण का ही रूपान्तर मात्र है। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मॉरीशस, फिजी, गिआना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवन-प्राण है।

सर्वधर्म-पंथों का पुण्य महाकाव्य

बौद्धों ने मुग्ध होकर दशरथ-जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रन्थ लिखें। जैनों ने विमलसूरि के पउमचरिय और हेमचन्द्राचार्य की जैन रामायण के द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया। सन् 1585 में अकबर के फरमान से रामायण का फारसी में अनुवाद हुआ। गुरुग्रन्थ साहब में लगभग 30 हजार बार राम का नाम गूँज रहा है। फिलिस्तीन का सूफ़ी फकीर सरमद शहीद भारत में आकर औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह के साथ बैठकर रामायण पढ़ता था। गुरु गोविन्दसिंह ने गोविन्द रामायण लिखी। संस्कृत और हिन्दी साहित्य पर रामायण की छाप तो अमिट ही है। तमिल में कम्ब रामायण, तेलुगु में श्रीपाद-रामायण, मलयालम में रामचरित, कन्नड़ तोरवे रामायण, बंगाली कृतिवास रामायण, हिन्दी रामचरितमानस, उड़िया बलरामदास रामायण, असमिया रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, गुजराती रामबालचरित तथा राजस्थानी रघुनाथ रूपक गीतां रो—ये रामायण की दिग्विजय के प्रमाण हैं।

क्या ऐसी कोई सार्वभौमिक स्वीकृति और सर्वग्राह्यता बाबरनामा ने प्रस्तुत की है?

संसार का विशालतम झण्डा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा-जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी के अवसर पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् के झण्डे फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर एकात्म बना दिया। यही रामायण की सबसे बड़ी देन है। जहाँ श्रीराम फहरते हुए—बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।

अब आप विचार करके देखें कि भारत की पहचान राम से बनेगी या बाबर से। राष्ट्र के नायक राम हैं या बाबर। राम जिसने उत्तर एवं दक्षिण भारत को जोड़ा, नगर के साथ ग्रामवासी व वनवासी को जोड़ा, जाति, उपजातियों को एकबद्ध ही नहीं अपनी सुवास दक्षिण पूर्व एशिया ही नहीं वरन् पूरे संसार में फैलायी। वह या विदेश बर्बर आक्रमणकारी बाबर जो एक हाथ में तलवार और एक हाथ में कुरान लेकर आया और आग और आतंक द्वारा सारे देश को रौंद डाला। देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, विधर्मी निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नर मांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिखकर अपने पंथ का फैलाव किया।

धर्म हमारे राष्ट्र का प्राण है

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म ही इसका प्राण है। यहां के महापुरुष धर्म की रक्षा के लिए हंसते-हंसते प्राण निछावर करते रहे हैं। इसलिए धर्म प्राणों से भी अधिक प्यारा है। किसी के प्राणों का हरण करना हत्या कहलाता है। किन्तु किसी के धर्म को लूटना, उसकी धार्मिक आस्था पर प्रहार करना उसके प्राणहरण से भी अधिक बड़ा अत्याचार है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दुविशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्मस्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र नहीं मर सकता....किन्तु जब उस मूल उद्गम पर जिस पर राष्ट्रीय जीवन का सम्पूर्ण महल टिका है, छोटा-सा आघात भी होगा तो राष्ट्र प्रचण्ड शक्ति से उसका प्रतिरोध करेगा।....धर्म ही हमारे तेज, बल और इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का भी मूलाधार है। यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

अब प्रश्न उठता है भारत देश में कौन-सा धर्म राष्ट्रीय धर्म है और उत्तम है। उत्तम धर्म वह नहीं जिसने आग और तलवार द्वारा दुनिया को रौंद डाला हो, देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, विधर्मी निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नर मांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिख कर अपने पंथ का फैलाव किया है। वह धर्म (इसाई) जिसने क्रूसेड और इनिक्विजीशन द्वारा व्यापक नर संहार किये, भिन्न पंथ वालों को लाखों की संख्या में तेल छिड़क कर जीवित जलाया तथा आलोचकों के दबे हुए शवों को कब्र से निकाल कर टॉवर ऑफ लन्दन पर फांसियाँ दीं। उत्तमता की कसौटी है—विश्वमंगल की निस्वार्थ साधना, बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने तथा किसी माँ-बहिन की मान-मर्यादा को लूटे, परहित के लिए आत्मत्याग एवं आत्म यज्ञ, जो हिन्दू धर्म का आधारभूत संस्कार है। आर्य धर्म की इसी महत्ता के कारण ही महात्मा ईसा हिन्दू आचार्यों के शिष्य बनकर भारत में शिक्षा-दीक्षा हेतु आए तथा हजरत मुहम्मद के पितृव्य अबुल हिक्म हिन्द देश, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवों की स्तुतियाँ गाते थे।'

'हे अल्लाओं के अल्लाह महादेव! कोई पतित से पतित व्यक्ति भी यदि आपकी शरण में आवे तो मुक्त हो जाए।'

हे मेरे प्रभु! मेरा समस्त जीवन एवं सर्वस्व लेकर मुझे मात्र एक दिन के लिये भारत वर्ष का वास दे दो क्योंकि वहाँ पहुँचकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।

रोमां रोलां जो शुरुआती जीवन में मार्क्सवादी था, मार्क्सवाद से मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका, वहाँ भी अपने जीवन की उलझनों का समाधान न पाकर भारत की ओर झुका और वहाँ समाधान पाकर कहता है—मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है...मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा। अन्यत्र कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई ऐसा देश है, जहाँ जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीन काल से स्थान मिला है जब से मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न देखना आरम्भ किया, तो वह देश हिन्दुस्तान है।

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, हिन्दू धर्म ही राष्ट्रीय धर्म है

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, हिन्दू धर्म ही राष्ट्रीय धर्म है इस विषय में हो सकता है हमें भ्रमित किया गया हो, पर विदेशियों यहाँ तक अरब जैसे मुस्लिम राष्ट्रों को भी इसमें कोई भ्रम नहीं है।

भारत और हिन्दुत्व दोनों एक और अभिन्न हैं। और हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करते तो कौन इसे बचायेगा? यदि भारत की अपनी सन्तान ही अपने

धर्म के प्रति निष्ठावान नहीं रहती तो कौन उसकी रक्षा करेगा। हम बाहरी लोग आपकी चाहे जितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु, आपका उद्धार आपके ही हाथ में है। आप किसी भ्रम में नहीं रहें। भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है, जिसमें भारतवर्ष का मूल गड़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गयी तो भारत-रूपी वृक्ष सूख जायेगा। भारत में प्रश्रय पाने वाले अनेक धर्म हैं, अनेक जातियाँ हैं, किन्तु इनमें से किसी की भी शिरा भारत के अतीत तक नहीं पहुँची है। इनमें से किसी में भी यह दम नहीं है कि भारत को वे राष्ट्र के रूप में जीवित रख सकें। इनमें से प्रत्येक भारत से विलोप हो जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। किन्तु यदि हिन्दुत्व विलोप हो गया तो क्या शेष रहेगा? तब शायद इतना याद रहेगा कि भारत नामक कभी कोई भौगोलिक देश था। भारत के इतिहास को देखिये, उसके साहित्य, कला स्मारकों को देखिये सब पर हिन्दुत्व स्पष्ट रूप से खुदा हुआ है।

जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी जब मक्का गये तो वहां के एक निवासी ने पूछा—'आप हिन्दू हैं?' शाही इमाम ने चौंककर कहा—'नहीं-नहीं, मैं मुसलमान हूँ।' बाद में उन्होंने प्रश्नकर्ता से पूछा—'आपने मुझे हिन्दू क्यों कहा?' तो उसका सहज उत्तर था—'इसलिये कि आप हिन्दुस्तान से आये हैं।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दि. 1.5.1977)

एक भारतीय से एक फ्रांसीसी ने पूछा कि 'आपका मजहब क्या है? उसने उत्तर दिया, 'हिन्दू'। फ्रांसीसी ने कहा, वह तो आपकी राष्ट्रीयता है। आपका मजहब क्या है? क्या आप वेदान्त को मानने वाले हैं या इसलाम को।

जवाहरलाल नेहरू ने Discovery of India में नेहरू भारत की खोज की तो क्या खोज की? Discovery of India में जवाहर लाल नेहरू को स्वीकारना पड़ा कि वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, त्रिपिटक, जैन सूत्र ग्रन्थ आदि से निर्मित दृष्टि ही भारतवर्ष की पहचान करने वाली दृष्टि है। भारत की सभ्यता-संस्कृति के निर्माण करने वाले तत्त्व, भारत को भारत बनाने वाली दृष्टि, उसकी पहचान, उसकी अस्मिता, उसकी आइडेन्टिटी यही तो भारत की राष्ट्रीयता के निर्धारक तत्त्व होने चाहिये। कोई यहाँ आकर कुरान शरीफ और हदीस के बारे क्या कुछ जानना चाहेगा? उसको यह विषय जानना होगा तो वह अरब जायेगा, मिस्र जायेगा। कोई यहाँ आकर बाइबिल के बारे में क्रिश्चियनिटी के बारे में नहीं जानना चाहेगा। यदि जानना चाहेगा तो रोम या इंग्लैण्ड जायेगा। इन्दिरा गांधी ने रामकृष्ण मिशन में अपने भाषण के दौरान स्वीकार किया था कि 1939 तक मुसलमान अपने हिन्दू नाम ही रखते थे, गीता का पाठ करते थे। इन्दिरा गांधी ने सन् 1983

के नई दिल्ली में आयोजित रामकृष्ण विवेकानन्द युवा सम्मेलन में स्वीकार किया था, 'बहुत समय तक यूरोप में भारत के सभी धर्मों को हिन्दू में शामिल किया जाता था।' राजीव गाँधी (दिवंगत) जब प्रधानमंत्री बने तो शेष विश्व को भारत से परिचित कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया गया। उसका प्रारम्भ वैदिक गीत, भारतीय नृत्य से हुआ। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ हिन्दू धर्म-संस्कृति से सम्बन्धित थी। राजीव गाँधी ने कहा—ये सब भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि हैं। सन् 1957 में केरल में प्रथम बार वामपंथी सरकार बनी जिसमें मुख्यमंत्री ई. एम. एस. नम्बूद्रिपाद बने। शपथ ग्रहण समारोह में माओ (चीन से) आए तो उन्हें नटराज की मूर्ति भेंट करते हुए नम्बूद्रिपाद ने कहा—'यह भारत का प्रतीक है।' स्पष्ट है सबको भारत से परिचय कराने के लिए हिन्दुत्व का सहारा लेना पड़ता है। अतः इस देश का राष्ट्रीय समाज हिन्दू है, इस देश का राष्ट्रीय धर्म, संस्कृति हिन्दू है।

इस्लामिया कालेज के इतिहास के विद्वान प्रो. अब्दुल लतीफ, फिलस्तीन के सरमद शहीद, औरंगजेब का बड़ा भ्राता दाराशिकोह, रहीम, रसखान, मलाया, इण्डोनिजीया के मुसलमान और मुहम्मद अली जिन्ना जब कांग्रेस में थे तब वे श्रीराम को राष्ट्रीय महापुरुष और रामायण को राष्ट्रीय ग्रन्थ मानते थे।

इस प्रकार इस देश में हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयता है। राम मन्दिर पर आघात हिन्दू राष्ट्रीयता पर आघात है। राष्ट्र के राष्ट्रीय स्वाभिमान पर आघात है। और राष्ट्रीय स्वाभिमान खोकर कोई भी राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। अतः जब भी कोई राष्ट्र स्वाधीन होता है, तब राष्ट्रीय अपमानों का मोचन सर्वप्रथम करता है, राष्ट्रीय स्वाभिमान को पुनः जागृत करता है। प्रत्येक विदेशी आक्रान्ता जनगण के मनोबल को तोड़ने के लिये उनके श्रद्धा बिन्दुओं पर आघात करता है। और स्वाधीन राष्ट्र का उसका मोचन करना प्रथम कर्तव्य होता है। इसमें कोई भी देश अपवाद नहीं है—

साम्यवादी देश रसिया

भारतीय सांसदों का एक प्रतिनिधिमंडल 1968 में रूस गया था। इस प्रतिनिधिमण्डल में भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक दत्तोपंत ठेंगड़ीजी भी थे। रूस यात्रा के दौरान सांसदों को लेनिनग्राद शहर में जार राजा का महल दिखाने ले जाया गया। वह पूरा महल पुराना लगता था, किन्तु कुछ मूर्तियाँ नई दिखाई देती थी। पूछताछ करने पर पता चला कि मूर्तियाँ ग्रीक देवी-देवताओं की है। श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने पूछा, आप लोग तो नास्तिक हैं, धर्म और भगवान के खिलाफ हैं, फिर आपकी सरकार ने देवी-देवताओं की मूर्तियों को फिर से बनाकर यहाँ क्यों रखा है? उत्तर था कि हिटलर ने महायुद्ध के दौरान ये मूर्तियाँ हमें अपमानित करने के

लिये तोड़ दी थी। महायुद्ध में हमारी विजय होने के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मान की पुनर्स्थापना करने के लिये हमने इन देवताओं की मूर्तियाँ को पुनर्निर्माण कर स्थापित किया। इस प्रकार हमने राष्ट्रीय अपमान के कलंक को सदा के लिये धो डाला।

सन् 1914-15 में रूसियो ने पोलैण्ड की राजधानी वार्सा को जीत लिया तो उन्होंने शहर के मुख्य चौक में एक चर्च बनवाया। रूसियो ने यह पौलेण्डवासियों को निरन्तर याद करवाने के लिये बनवाया कि पोलैण्ड में रूस का शासन है। जब पोलैण्ड 1918 में आजाद हुआ तो पोलैण्डवासियों ने पहला काम उस चर्च को ध्वस्त करने का किया, हालाँकि नष्ट करने वाले सभी लोग ईसाईमत को मानने वाले ही थे। चूँकि चर्च राजनीतिक कारणों से पोलैण्ड को अपमानित करने के लिये रूस ने बनवाया था अतः पुनः राष्ट्रीय स्वाभिमान प्रतिष्ठित करने के लिये उसे नष्ट कर दिया।

इसी प्रकार भारत की अंग्रेजों से मुक्ति होते ही देश में सारे अंग्रेजी चिह्नों, नामों, स्मारकों को हटाकर भारतीय चिह्न, नाम, स्मारकों को पुनः प्रतिष्ठित किया गया राष्ट्रीय स्वाभिमान को पुनः स्थापित करने के लिये।

यही दृष्टि सोमनाथ मन्दिर के पुनः निर्माण के पीछे थी। उस समय सरदार पटेल, कन्हैयालाल मुंशी, गांधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को किसी ने साम्प्रदायिक कहने का साहस नहीं किया न मुसलमानों ने आपत्ति का साहस किया पर आज राम मन्दिर के सन्दर्भ में स्थिति बदल गई। नेहरू, कांग्रेस एवं कम्युनिस्ट पार्टी की तोषण नीति के परिणामस्वरूप आज कश्मीर समस्या, मिजोरम समस्या, यानी ईसाई समस्या, असम समस्या मुंह बाये खड़ी है, फिर भी हम समझना नहीं चाहते हैं।

6 जून को श्री अज्ञेयजी और नवभारत टाइम्स के सम्पादक राजेन्द्र माथुर दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान के मंच से बोले। उनका निष्कर्ष यह था, राष्ट्रीय बोध और राष्ट्र की मुख्यधारा की स्वीकृति : अस्वीकृति और पहचान का प्रश्न यदि अल्पसंख्यकों की स्वीकृति, अस्वीकृति और उनके प्रमाण पर छोड़ दिया जायेगा तो भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्र के व्यक्तित्व और उसकी मुख्यधारा को कभी परिभाषित और रूपायित नहीं किया जा सकेगा। यह इतिहास का एक सार्वकालिक सत्य है कि भारत का अस्सी प्रतिशत बहुमत वाला समाज हिन्दू समाज है उसने ही देश का व्यक्तित्व बनाया है।

पर हमारे राजनेता वोट के अलावा कुछ समझना ही नहीं चाहते। राजनेता तो उसे कहा जाता है जिसकी दूर दृष्टि हो पर यहाँ तो सारे परिणाम सामने हैं फिर भी चुनाव के आगे इनका दिमाग जाता ही नहीं। ये हो गये हमारे राष्ट्रीय

नेता जो कहते हैं—मन्दिर था या है नहीं जानता, पर मस्जिद है इसे जानता हूँ, मचान बाबा फचान बाबा को नहीं जानता पर इमाम बुखारी को जानते हैं। नेता जो आरक्षण के नाम पर देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट दिया तो एक शहर एवं गाँव को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटकर कुछ नेता सद्भावना यात्रा पर निकले हैं, पर इन्हें समझ लेना चाहिये कि राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के बावजूद भी यहाँ अल्पसंख्यक सुरक्षित इसलिये नहीं कि उन्हें संविधान में सुरक्षा की गारंटी मिली है या ये हमारे नेता सद्भावना यात्रा कर रहे हैं, वरन् इसलिये कि यहाँ का बहुसंख्यक हिन्दू समाज बड़ा ही उदार, सहिष्णु और उपासना पद्धति के आधार पर कहीं भेदभाव नहीं करता।

यहाँ यहूदी आये। यहाँ पारसी आये। यहाँ ईसाई आये। यहाँ मुसलमान आये। सबका स्वागत हुआ, धर्म पालन एवं प्रसार की छूट मिली। कुछ लोग भ्रान्तिवश कहते हैं मुसलमान और ईसाई लोग तो भारत में विजेता बनकर आये और अपने बाहुबल से फले-फूले। तब हमारी उदारता की क्या भूमिका रह जाती है? पर ऐसे विचार और तर्क इतिहास की अवहेलना करना है। यह एक सर्वविदित तथ्य है, जब भारत के केरल राज्य में ईसाई सर्वप्रथम 50 ए.डी. के लगभग पहुंचे तो वहाँ के हिन्दू शासक और हिन्दू जनता ने उन्हें वहाँ बसने, धर्म प्रचार, गिरजाघर बनाने की छूट ही नहीं दी, वरन् उदारतापूर्वक यथाशक्ति उनकी सहायता भी की। हिन्दू शासकों के सहयोग का ही फल था कि ईसाई केरल में फले-फूले।

भारत में मुसलमानों के साथ भी यही घटित हुआ। केरल में ही 700 ए.डी. के लगभग पहुँचे और उन्हें सरकारी पैसे से मस्जिद बनाकर दी। और आज हम ही जो अखण्ड भारत चाहते हैं छोटे दिल, साम्प्रदायिक हो गये, और ये राजनेता समाज को सहस्रों खण्डों में बाँट रहे हैं, वह राष्ट्रीय हो गये। और कहते हैं हम भी हिन्दू हैं। हिन्दू तो जयचन्द्र, मानसिंह, जयसिंह भी था, रावण और कंस भी था, पर वे इतिहास के कचरादान में फेंक दिये गये। यही अवस्था इनकी होगी।

आज हमारी दुरवस्था, पराजय का कारण अतिशय उदारता, सहिष्णुता है। आज हमने इन राजनेताओं के फेर में पड़कर, शत्रु, मित्र, राष्ट्रीय-अराष्ट्रीय की पहचान ही भुला दी है। सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता जो हमारे सद्गुण थे, स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में यथार्थ व्यावहारिकता के अभाव में सद्गुण विकृति बन गये हैं। हमारे देश, काल, पात्र, परिस्थिति को भुला देने से ये सद्गुण ही हमारे भक्षक बन गये हैं। माँ-बहन के चेहरे सुन्दर हैं यह कोई अपराध नहीं है। सुन्दर बगीचा लगाना अपराध नहीं है। पर उसकी रक्षा के लिये कांटें की झाड़ियां लगाना आवश्यक है। अतः आज आवश्यकता है यथार्थ व्यावहारिक होने की।

हमारी न मुसलमानों को चुनौती है और न मुसलमानों से लड़ाई है। राजनेता तो मुसलमानों को सिर्फ वोट के कारण चाहते हैं पर हम मनुष्य के नाते चाहते हैं। हम मानते हैं ये हमारे ही हैं। हमसे पिछड़ गये हिन्दू भाई हैं जिन्होंने भय या प्रलोभन से अन्य उपासना पद्धति अपना ली है, पर इतिहास, पूर्वज परम्परा, संस्कृति-सभ्यता के साझे अधिकारी है। वे अपनी पूजा पद्धति की रक्षा करते हुए मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान, ऊशाउल्लाखान की तरह भारतीय रह सकते हैं।

पहले भी हमारी संस्कृति के आधार एक थे और आज भी। तभी तो भारत के सभी अंचल से शिलापूजित होकर आ रही है। यही नहीं 36 देशों से भी शिलापूजित होकर आई।

यदि जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है, यदि इण्डोनेशिया का राष्ट्रपति अपने देश में सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन कराता है, यदि तिब्बत के दलाईलामा अपना राज्य व धन खोकर भी भारत के बौद्ध तीर्थों में शान्ति पाते हैं, यदि मारिशस के प्रधानमंत्री सर्वप्रथम 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' अपने देश में आयोजित करते हैं, यदि सात हजार मील पूर्व का फिजी और बारह हजार मील दूर पश्चिम का सूरीनाम 'रामचरितमानस' गाते तथा 'हिन्दी भाषा' को राजभाषा का सम्मान देते हैं, यदि संसार के 85 देशों के हिन्दू आज भी कुंभ मेले पर गंगा-स्नान के लिए तरसते हैं तो यह सब सांस्कृतिक एकात्मता का ही चमत्कार है।

और सांस्कृतिक एकता में राम और रामायण का बड़ा योगदान है। क्या ऐसा कोई योगदान बाबर और बाबरनामा का है?

आज भी देश की इस जर्जरावस्था में भारत का विश्व को कुछ संदेश हो सकता है तो यहाँ की संस्कृति ही। पाश्चात्य विचारक भी इस आशा से भारत की ओर निहार रहे हैं।

अरनाल्ड टोयनबी के अनुसार

विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा और तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

अन्यत्र अरनाल्ड टोयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्मविनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह

दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश का यह एकमात्र विकल्प है।

प्राच्य एवं पाश्चात्य अमेरिकन विद्या विशारद विल डूरेन्ट कहता है—

हे भारत! इसके पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शान्ति के लिए तरसता हुआ अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे, कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए तू अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपना घर मत फूंक डालना।

स्पष्ट है भारत की पहचान प्रभु श्रीराम से है, रामायण से है, रामजन्मभूमि से है, न कि विदेशी विधर्मी नृशंस आक्रान्ता बाबर से, न बाबरनामा से और न बाबरी मस्जिद से है। अतः भगवान् राम की पुनः प्रतिष्ठा के लिये वहां भव्य राम मन्दिर का निर्माण एक राष्ट्रीय आवश्यकता है, मानवता के हित को सही दिशा देने के लिये भी परम आवश्यक है जिससे मानव मात्र लौकिक अभ्युदय और पारमार्थिक निःश्रेयस सिद्ध कर अपने मानव जीवन को सार्थक कर सके।

मानवता को यदि सचमुच महानतम जीवनमूल्य चाहिए, जिसके आधार पर मानवता का त्राण हो सकता है, तो वे जीवनमूल्य जगद्‌गुरु भारत की महान् मृत्युंजय संस्कृति ही प्रदान कर सकती है। संसार के दुःखी प्राणियों को संस्कृति की सुधा पिला कर अमरत्व का वरदान भारत ही दे सकता है।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

हिन्दू दार्शनिकों का राष्ट्र था। इतिहास में अन्य कोई उदाहरण नहीं है जहां आध्यात्मिक जीवन ने इस प्रकार सारे राष्ट्र के समस्त व्यावहारिक पक्ष को समाहित कर लिया है।

—मैक्समूलर

गीता राष्ट्रीय ग्रंथ है

भगवद्गीता एक दिव्य आध्यात्मिक संगीत है। इसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्य मात्र के दुःख विमोचन एवं परम श्रेय की प्राप्ति के लिए गाया है। इसके श्रोता और वक्ता, दोनों दिव्य हैं। स्वयं परात्पर पुरुषोत्तम नारायण भगवान् के अवतार भगवान् श्रीकृष्ण इसके वक्ता हैं। और श्रोता हैं नर ऋषि के अवतार अर्जुन। भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं। पूर्ण से पूर्ण की निष्पत्ति होती है, हम नित्य शांति मंत्र में गाते हैं—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

जो पूर्ण होता है उससे पूर्ण की ही अभिव्यक्ति होती है और भगवद्गीता स्वयं भगवान् के मुख से निःसृत वाणी होने के कारण पूर्ण है। पूर्ण में देश-काल का बंधन नहीं होता। अतः यह सर्व देश और काल के लिए होने से सार्वभौमिक है। गीता किसी वर्ग, जाति, वर्ण, लिंग, आश्रम विशेष का नहीं अतः मानव मात्र का ग्रंथ है। मानव के जितने वर्ग हो सकते हैं उन सभी के लिए इसमें पाथेय है। और सबके सर्वांगीण विकास का यह ग्रंथ है। यह धर्मविशेष सम्प्रदायविशेष का नहीं होकर सभी धर्मों और सम्प्रदायों का ग्रंथ है। यह सिर्फ धर्म सिद्धि का ग्रंथ न होकर चारों पुरुषार्थ यथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्धि का ग्रंथ है—लौकिक अभ्युदय और पारमार्थिक निःश्रेयस सिद्धि का यह ग्रंथ है।

गीता में कोई कर्मकाण्डी तत्त्व नहीं है। गीता अद्वैत सूत्र में पिरोयी हुई है—सारे चराचर में एक ही आत्मा का वास है अतः सब परस्पर जुड़े हुए हैं, परस्पर पूरक परस्पर अवलम्बित हैं। इस भाव के कारण भारत के लाखों वर्षों के इतिहास में कभी पर्यावरण की समस्या खड़ी नहीं हुई।

गीता की इस महत्ता के कारण ही वेदव्यासजी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।।

इस वचन को स्वीकारते हुए प्रारम्भ से आज तक न केवल भारतीय मनीषा वरन् विश्व मनीषा गीता के प्रति आकृष्ट है। चाहे प्राचीनतम सभ्यता मिस्र को लेवें, चाहे यूनान के दर्शन जिसे पश्चिम अपने विचारों का जनक मानता है। यूनानी दार्शनिक पाइथोगोरस हो या सुकरात, प्लेटो, अरस्तू हो या ईसाइयत को जन्म देने वाले स्वयं ईसा मसीह हों या इसलाम को जन्म देने वाले मुहम्मद साहब के पूर्व के कवि हों या स्वयं मुहम्मद साहब द्वारा प्रतिपादित कुरान हो, हदीस हो। चाहे सूफी सन्त हो उसमें संत सरमद शहीद हो, उनका शिष्य दाराशिकोह हो जो औरंगजेब का बड़ा भ्राता था, चाहे औरंगजेब की पुत्री जैबुनिसा हो, चाहे फैजी हो या अलबरूनी जो मुहम्मद गजनवी के साथ भारत आया था, चाहे अन्तिम मुगल बादशाह जफर हो, जिन्ना हो, इकबाल हो चाहे टर्की के मुसलमान प्रधानमंत्री हो या भारत के मुख्य न्यायाधीश आरिफबेग हो या भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम हों, चाहे इण्डोनेशिया राष्ट्रपति सुकर्ण और वहाँ की मुस्लिम जनता हो चाहे आधुनिक काल के यूरोपीय लोग हों जो विलकिन्स के माध्यम से गीता से परिचित होते हैं। 1776 में जिसकी भूमिका ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स लिखते हैं—ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त होने के बाद भी भारतीय संस्कृति के गायक सदैव पूजे जाते रहेंगे। जिससे भोगवाद से पीड़ित यूरोप को बड़ी शांति मिली। इसके दो वर्ष बाद डूपरो ने इसका अनुवाद लैटिन में किया जिसे देखकर जर्मन दार्शनिक श्लेगल स्तम्भित हो गया। और वह कहता है कि भारतीय दर्शन मध्याह्न सूर्य की प्रखर दीप्ति के साथ चमक रहा है जिसके सामने पश्चिमी दर्शन जो यूनान से प्रारम्भ होता है टिमटिमाते हुए दीपक के समान हैं जो कभी भी बुझ सकता है। मृत्युशय्या पर पड़े हुए मृत्यु के दिन गिनने वाले शोपेनहावर को गीता और उपनिषदों का लैटिन अनुवाद मिला तो वह चमत्कृत हो गया और उसे इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया और वह कहता है—जीवन और मृत्यु की सांत्वना है गीता और उपनिषद्। काण्ट गीता से इतना प्रभावित हुआ कि वह अपना विषय भूगोल और नक्षत्र विज्ञान छोड़कर दार्शनिक बन गया। दोनों का दर्शन गीता का कर्तव्यवाद एवं निष्काम कर्मयोग पर आधारित है। अमेरीकी दार्शनिक हेनरी थोरो जो बोस्टन शहर छोड़कर जंगल में वाल्डेन सरोवर के पास कुटिया बनाकर रहता था वह कहता है–गीता के अमृत जल से नित्य प्रातःकाल अपने दिल दिमाग को धोता हूं। वह कहता—दुनिया ने बहुत स्मारक बनवाये जिसमें मिस्र के पिरामिड हैं—दुनिया के सारे स्मारक मिलकर भी गीता का मुकाबला नहीं कर सकते। वे गीता के सामने तुच्छ हैं। गीता दुनिया का सबसे महान् स्मारक—ज्ञान-स्मारक है। आज दुनिया ने शिक्षा के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए वह सब गीता के सामने तुच्छ हैं। उनका

शिष्य इमर्सन अपने गुरु थोरो के पास गीता पढ़ने बोस्टन से 25 किलोमीटर दूर प्रातःकाल नित्य जाता था। भू-लोक में थोरो मात्र 32-33 साल रहा फिर अपने गुरु की पावन स्मृति लेकर यूरोप में गीता प्रचार प्रारम्भ किया। एक बार वह इंग्लैण्ड के दार्शनिक कार्लाइल से मिलने गया। दोनों की भेंट होने पर एक-दूसरे को गीता भेंट करते हैं। जिसका प्रभाव डॉ. राधाकृष्णन् और भाई परमानन्द पर पड़ता है। अमेरीका का पत्रकार क्रिस्टोफर ईशरवुड की बाइबिल से अनास्था हो गई जब उसे बताया गया God सातवें आसमान में रहता। उसका न्यायालय अभी बन्द है जो कयामत पर खुलेगा जो दस हजार वर्ष के 10 हजार युग बीतने पर यानी एक अरब वर्ष बाद आयेगा—ऐसे ईश्वर के प्रति अनास्था हो गयी। वह कहता है इससे तो माननीय मजिस्ट्रेट अच्छा है जो कुछ दिन, माह या वर्ष में न्याय दे देता है। और वह अपनी प्राण रक्षा और अपनी आस्था की रक्षा गीता के आधार पर कर सका।

रूस का स्टालिन भारतीय दर्शन से प्रभावित हुआ। डॉ. राधाकृष्णन् जब वे रूस के दौरे पर थे उनको बुलाकर गीता का ज्ञान सुना करता था। टाल्सटाय ने गीता को रूस में विशेष प्रसिद्ध किया।

अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों वड्र्सवर्थ, शैली, कीट्स, बायरन और वाल्टर स्काट जैसे प्रमुख कवि गीता से प्रभावित हैं। उनकी कविताओं के बहुत से अंश अत्यन्त दुर्बोध और मन-बुद्धि की समझ से परे हैं। क्योंकि उनकी परम्परा में यानी यूरोपीय दर्शन, बाइबिल आदि में इसका कोई उत्तर नहीं है, समाधान नहीं है। उन्हें गीता के प्रकाश में ही समझा जा सकता है सहजता से। अन्यथा समझना अत्यन्त कठिन है।

लन्दन म्यूजियम में दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तकालय है जहां मुख्यद्वार पर एक Show Case में गीता की पुस्तक सजी है।

जापान के शिन्तो धर्म पर, चीन के कन्फ्यूशियस धर्म, ताओ धर्म पर गीता का प्रभाव है।

अमेरीका के आणविक वैज्ञानिक ओपेनहाइमर ने गीता का श्लोक पाठ करके लब्ध आणविक गवेषणा की घोषणा की। नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीव विज्ञानी आल्डुअस हक्सले ने गीता का अनुवाद किया और उसने गीता को सच्चे अर्थ में शाश्वत दर्शन की संज्ञा दी है। स्वदेशी गणितज्ञ नारलीकर ने गीता कंठस्थ की। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुम्बोल्ट, जीव वैज्ञानिक वर्गसा, ब्रिटिश वैज्ञानिक डॉ. जॉन बर्डन सेंटरसन हाल्डेन, आइंस्टाइन को बाइबिल से अनास्था हो गई थी। उसे पूरी तरह बचकानी मानते थे पर वे गीता से पूरी तौर पर प्रभावित थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व. अबुल कलाम गीता का अध्ययन कर अपना समाधान प्राप्त करते थे। सुनीता

विलियम्स जब अन्तरिक्ष में वैज्ञानिक शोध के लिए 155 दिन की यात्रा पर थी तो अपने साथ गीता ले गयी थी। उससे उन्हें बल मिलता रहा।

देश-विदेश विशेषकर भारत के स्वाधीनता संग्राम में गीता का अविस्मरणीय योगदान है। आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मयोग, आत्म समर्पण योग और स्थितप्रज्ञ दर्शन ने पूरे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को प्रभावित किया है। चाहे अहिंसा के पथ से चलने वाले आन्दोलनकारी हों चाहे हिंसा के मार्ग से चलने वाले क्रान्तिकारी हों, दोनों का लक्ष्य भारत की स्वाधीनता था अतः दोनों का पाथेय भी एक था—भगवद्गीता। इसलिए गांधी, विनोबा के हाथ में गीता, लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, खुदीराम बोस, विनय बादल दीनेश, रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह आदि के हाथ में गीता। इण्डोनेशिया का स्वाधीनता संग्राम, चेकोस्लोवाकिया-जापान, वियतनाम आदि के स्वाधीनता संग्राम को गीता ने बल प्रदान किया। अपराध शमन जगत् में, औद्योगिक जगत् में, प्रबंधन जगत् में गीता का अनूठा योगदान है।

विश्व शांति एवं विश्व कल्याण की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) की प्रतिष्ठा, उसके उद्देश्य को लेकर प्राकतन् सेक्रेटरी जनरल स्वर्गत दयास हयामार शिल्ड बोलते हैं—फलाकांक्षा करके कर्म करने की अपेक्षा फलाशा त्याग कर कर्म करना बहुत अच्छा है। यह उपदेश सभी युग में सभी दर्शन की चूड़ान्त कथा है। राष्ट्र संघ की प्रबल चेष्टा से हम लोग यदि गीता का यह उपदेश अनुसरण कर चल सके तभी हम लोग सुखी हो सकेंगे। सम्भवतः 1988-89 में U.N.O. ने गीता की महत्ता को स्वीकार करते हुए गीता को विश्व के सभी प्रचलित धर्मशास्त्रों में श्रेष्ठ, ज्यादा वैज्ञानिक तथ्यों और सत्य पर आधारित और विश्व धरोहर ग्रंथ माना था। गीता को विश्व के 140 विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर उस पर शोध कार्य कर रहे हैं। अनेकों शोध कार्य हो चुके हैं और अनेकों शोधकार्य जारी हैं। महात्मा गांधीजी भी चाहते थे गीता न केवल राष्ट्रीय शालाओं में वरन् सभी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाई जाए।

सुप्रीम कोर्ट के मुस्लिम न्यायाधीश महामहिम आरिफ बेग साहब ने गीता का अध्ययन कर अपने विचार तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को एक विशेष नोट लिख, प्रेषित कर राय दी थी कि यह एक ऐसी अनमोल पुस्तक है जो सभी मजहब तो क्या मनुष्य मात्र के पढ़ने की जरूरी किताब है। इसका अध्ययन शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से लेकर कॉलेज तक अनिवार्य होना चाहिए। हकीकत तो यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता भारत की सही पहचान है।

ईरान के मुस्लिम संत मेहरबान शहरयार (मेहर बाबा) ने कहा था कि गीता केवल हिन्दुओं के लिए नहीं है, यह तो मनुष्य मात्र के लिए है। धरती पर बसने

वाली सभी जातियां गीता को जीवन में उतार लें तो सम्पूर्ण संसार प्रेममय बन जाए तथा सभी झगड़े-फसाद समूल नष्ट हो जाए। आचार्य हनीफ खां कहते हैं कि मेरा पंथ इसलाम है किन्तु मेरा जीवन जीने का मार्ग गीता है।

टर्की के मुस्लिम प्रधानमंत्री स्वयं गीता पढ़ते हैं। वे कहते हैं—यह मुझे जीवन की समस्याओं का समाधान देती है। और इसलिए उन्होंने गीता के कुछ श्लोकों को To Develop and Control the Morality, आज टर्की के अन्दर वह उनकी शिक्षा का हिस्सा है।

अनेक भारतीयों विशेषकर देश की युवा पीढ़ी को यह ज्ञात ही नहीं होगा कि 1950 में जब भारत का संविधान बना तब इसमें भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के 22 उद्बोधक चित्र भी थे। इसमें एक चित्र संविधान के नीति निर्देशक तत्त्वों के चौथे अध्याय के पहले गाण्डीवधारी अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का है।

इन सब आधारों पर ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 10 सितम्बर 2007 को दिये गए एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में केन्द्र सरकार से कहा है कि वह संविधान के अनुच्छेद 51(क) के अन्तर्गत भगवद्गीता को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र घोषित करे। संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय पशु तथा राष्ट्रीय गीत की भांति राष्ट्रीय धर्मग्रंथ भी घोषित किया जाना चाहिए। क्योंकि देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन में प्रेरणास्रोत रही भगवद्गीता भारतीय जीवन पद्धति है। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह इस राष्ट्रीय धरोहर की रक्षा करे और इसके आदर्शों का अनुसरण करे।

यह महत्त्वपूर्ण फैसला देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा है कि नैतिक और सामाजिक मूल्यों की संवाहक तथा हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय की प्रतिनिधि गीता भारत का धर्मशास्त्र है। संविधान के मूल कर्तव्यों के तहत राज्य का दायित्व है कि वह 'भगवद्गीता' को राष्ट्रीय धर्मशास्त्र की मान्यता दे। भारत का प्रत्येक विद्वान जानता है कि 'धर्म' और 'रिलिजन' अलग-अलग है। धर्म का पर्याय रिलिजन या मजहब नहीं। धर्म सारे मानव समुदाय का एक है, पर रिलिजन या मजहब अनेक होते हैं। न्यायालय ने यह भी महत्त्वपूर्ण बात कही कि इस देश में जो ईसाई, पारसी, मुस्लिम या यहूदी नहीं हैं वे सब हिन्दू हैं। भारत में जन्मे सभी सम्प्रदाय—बौद्ध, जैन, सिख आदि हिन्दुत्व का हिस्सा हैं और संविधान के अनुच्छेद 25 व 26 के अन्तर्गत हिन्दुओं को भी अपने सम्प्रदाय के संरक्षण का अधिकार प्राप्त है।

केन्द्र सरकार को न्यायालय ने भी ध्यान दिलाया है कि गीता भारत की आत्मा है। गीता सभी सम्प्रदायों की 'मार्गदर्शक शक्ति' है। गीता सनातन सत्य

को उजागर करती है। इसलिए वह किसी सम्प्रदायविशेष का ग्रंथ न होकर पूरी मानवता का सद्‌ग्रंथ है, पूरे मानव समाज को एकसूत्र में बांधने वाला ग्रंथ है और पूरे मानव समाज को अपने-अपने कर्तव्यों का बोध कराने वाला है।

परन्तु विश्वगुरु कहलाने वाले भारत का दुर्भाग्य है कि उच्च न्यायालय की टिप्पणी को छोड़िये देश के बड़बोले राजनीतिज्ञों ने अपनी पार्टी, अपने चुनावी वोट बैंक तथा क्षुद्र राजनीतिक हितों और स्वार्थों के लिए राष्ट्रहित तथा विश्व कल्याण को भुला दिया। और उच्च न्यायालय की उक्त टिप्पणी के साथ सेकुलर प्रलाप शुरू हो गया। कानून मंत्री श्री हंसराज भारद्वाज ने कुरान और बाइबिल को भी भारत का धर्मशास्त्र बताया। सम्भवतः वे जानबूझ कर भूल गए कि गीता किसी सम्प्रदाय का ग्रंथ नहीं है। पूरी मानवता का महानतम, आध्यात्मिक ग्रंथ है। मुस्लिम पर्सनल बोर्ड और ईसाई पादरियों को तो विरोध करना ही था।

मध्यप्रदेश में स्कूलों में गीता-सार पढ़ाने के विरुद्ध सन् 2012 में एक ईसाई द्वारा याचिका दायर की गई। मगर हमारे राष्ट्रीय नेताओं और बड़े बुद्धिजीवियों ने तब कोई वक्तव्य नहीं दिया।

मध्यप्रदेश हाईकोर्ट ने उस याचिका को खारिज करते हुए कहा कि गीता कोई मजहबी नहीं, दार्शनिक पुस्तक है। यह बात हमारे उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय पहले ही कह चुके हैं। फिर भी ईसाई और इसलामी नेता भारतीय दर्शन चिंतन के महान् ग्रंथों के प्रति सक्रिय विरोध नहीं छोड़ते। न्यायालयों की सुचिंतित सम्मति के बावजूद ईसाई, इसलामी रणनीतिकार ताक में रहते हैं। मुहम्मद गोरी की तरह बार-बार चढ़ाई करते हैं। मगर भारत का हिन्दू बौद्धिक वर्ग इससे कुछ सीख नहीं लेता यह अत्यन्त चिंताजनक है। एक हिन्दू देश में बल्कि मूल हिन्दू देश में ही हिन्दू ग्रंथों की शिक्षा का विरोध किया जाता है और हिन्दू बौद्धिक समाज को कुछ समझ में नहीं आता। वे मौन रहते हैं।

कर्नाटक और मध्यप्रदेश दोनों जगह गीता पढ़ाने के विरुद्ध इसलामी और ईसाई प्रतिनिधियों की दलील एक ही थी। कि 'तब तो कल कोई कुरान और बाइबिल भी पढ़ाना चाहेगा। यदि स्कूलों में मजहबी किताबें पढ़ाई जाने लगेंगी तब विद्यार्थियों का क्या होगा?'

इस तर्क में दोहरी गलती, बल्कि एक सीधी चालबाजी भी है। पहले तो गीता मजहबी पुस्तक नहीं है। दूसरे उन्हीं अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों में जिनके प्रतिनिधि न्यायालय गए, बाइबिल, कुरान हदीस पढ़ाये ही जा रहे हैं। बल्कि मुस्लिम संस्थानों में तो मुख्यतः यही पढ़ाया जा रहा है। देश भर के लाखों मदरसों, मकतबों (यहां तक कि ए.एम.यू. जैसे केन्द्रीय विश्वविद्यालयों) के

पाठ्यक्रम इसका प्रमाण है। इन संस्थाओं को न केवल अनुदान मिलते हैं, बल्कि उन्हीं संस्थानों के प्रमाणपत्रों को सामान्य शिक्षा संस्थानों के समकक्ष मान्यता दी जा रही है। और ये आतंकवाद के कारखाने हैं। कुरान-हदीस मानवता को दो भागों में विभाजित कर देते हैं। जो इसलाम को मानता है वह विश्वासी और जो उसे नहीं मानता है वह काफिर है और निर्मम ढंग से वध के योग्य हैं और परलोक में अनन्त आग की ज्वाला में अनन्तकाल तक जलाये जायेंगे। जो नारी विरोधी, नारी में आत्मा नहीं मानते। जो मात्र पुरुषों के मन बहलाव के लिए है—मनोरंजन के लिए। जो प्रकृति एवं पर्यावरण विरोधी—पुरुष शरीर के अलावा सारी सृष्टि में जो कुछ चर-अचर है वह उसके उपभोग के लिए है। जो मानव स्वभाव विरोधी, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से असंगत, और भारत-भारतीयता का दूर से भी सम्बन्ध नहीं जो अरब-अरबीयता से जोड़ता है। इन्हें हिन्दुओं के पैसे से पढ़ाया जा रहा है। इस प्रकार अपने ही पैर में कुल्हाड़ी मारने जैसा कार्य गर्व के साथ किया जा रहा है, हम अपने ही पैसे देकर बम जिहाद, लवजिहाद एवं धर्मान्तरण, घुसपैठ जैसे कार्यों को अन्जाम दिला रहे हैं।

विभिन्न ईसाई मिशनरी संगठनों द्वारा चलाये जा रहे बड़े-बड़े सार्वजनिक स्कूलों में कई के नाम ही कट्टरपंथी ईसाई नेताओं के नाम पर हैं। उनमें ऐसे क्रूसेडर भी हैं कि जिन्होंने हिन्दुओं का धर्मान्तरण कराने के लिए गोवा में भयंकर अमानुषिक नरसंहार तक करवाए—जैसे सेंट जेवियर। किन्तु उनके नाम पर अनेक माध्यमिक स्कूल और कॉलेज चल रहे हैं, जहां सामान्य पढ़ाई के साथ बाइबिल भी पढ़ायी जाती है। यह पढ़ाई हिन्दू विद्यार्थियों को करनी पड़ती है। किसी सेंट जेवियर स्कूल या कॉलेज में हिन्दू बच्चों, युवाओं का पढ़ना ऐसा ही है जैसे गांधीवादी युवकों को पढ़ाने वाली संस्था का नाम नाथूराम गोडसे संस्थान हो। पूरे भारत वर्ष में यही हो रहा है।

ऐसे ईसाई मिशनरी स्कूलों में कई जगह छात्रों को उसकी परीक्षा भी देनी होती है। उसके लिए, जहां जो सम्भव या कारगर हो प्रलोभन से लेकर प्रताड़न तक हर उपाय किया जाता है। फिर, इन स्कूलों के हर बच्चे के होम-वर्क वाली नित्य प्रयोग की डायरी में ईसाई-प्रचार वाली दर्जनों प्रार्थनाएं भरी रहती है, जबकि उसमें किसी हिन्दू प्रार्थना को स्थान नहीं दिया जाता है। यह सब ऐसे स्कूलों में जहां 99 प्रतिशत बच्चे हिन्दू हैं।

इन ईसाई मिशनरी स्कूलों और कॉलेजों में भारत-भारतीयता से नाता तोड़ने के सारे प्रयास होते हैं। भारतीय देवी-देवता, उत्सव व संस्कृति के प्रति घृणा, जुगुप्सा, भारतीय महापुरुषों, ऋषि-मुनियों से नाता तोड़कर यूरोप का मानसिक गुलाम और उनकी सभ्यता-संस्कृति से नाता जोड़ देते हैं। भारतीय राष्ट्रीयता से

नाता तोड़ देते हैं। और ये सब सरकार के सहयोग और अनुदान और संरक्षण में स्वतंत्र भारत में हो रहा है। इसलिए गांधीजी ने स्पष्ट रूप से कहा था—भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना। उसके स्थान पर एक दूसरा मत थोपना है। यदि मेरे पास विधान बनाने की शक्ति होती तो मैं निश्चय ही सभी प्रकार के ऐसे प्रयासों पर प्रतिबंध लगा देता।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—जब बालक ईसाई विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है, तब वह प्रथम पाठ पढ़ता है कि उसके पिता मूर्ख हैं, दूसरे, उसके दादा पागल हैं। तीसरा, उसके सभी गुरु पाखण्डी हैं। चौथा, उसकी सभी आध्यात्मिक पुस्तकें झूठी हैं। और जब वह 16 वर्ष का होता है तब वह नकारात्मक सोच लिए जीवन हीन तथा आधार हीन व्यक्तित्व का स्वामी होता है।

गीता की पढ़ाई पर आपत्ति करने वालों को कुरान और बाइबिल जैसी मजहबी पुस्तकों से कोई परहेज नहीं है। वरन् इनकी पढ़ाई की यहां औपचारिक शैक्षिक मान्यता तक मिली हुई है। इस्लामिक स्टेडीज के नाम पर भारत में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय बने हुए हैं और मजहबी प्रचार हो रहा है। जिसके लिए हिन्दू जनता का धन दिया जाता है और हिन्दुओं के पैसे से अलगाववादी, आतंकवादी, बम जिहादी, लव जिहादी तैयार हो रहे हैं।

यह दोहरा अन्याय हिन्दुओं पर ब्रिटिश भारत में नहीं हुआ था। उस समय गीता, रामायण हमारे विद्यालयों में नियमित पाठ्य सामग्री का स्वाभाविक अंग थे। पर स्वतंत्र भारत में धर्मनिरपेक्षता के नाम पर धीरे-धीरे हटा दिया गया। 'ग' से गणेश को हटाकर पहले गधा अब गमला कर दिया गया। टेलीविजन से 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को राम-राम अभिवादन आदि को हटा दिया गया। संस्कृत भाषा में समाचार को ईसाइयों के विरोध करने पर हटा दिया गया था रेडियो से। यह दोहरा अन्याय हिन्दुओं के एकमात्र देश, स्वतंत्र भारत में हो रहा है। पर इन दोनों सम्प्रदाय के मजहबी ग्रंथ सरकारी अनुदान से पढ़ाए जा रहे हैं। पर कोई राज्य सरकार गीता और योग को पाठ्यक्रम में शामिल करती हैं तो दोनों वर्गों द्वारा इसके विरुद्ध कोर्ट में याचिका दायर की जाती है और हर सम्भव विरोध किया जाता है और इसमें सेकुलरों का पूरा साथ रहता है।

यही कारण है आज गीता को न घर में स्थान है, और न पाठशाला में और न कार्यशाला में। इसके कारण देश में अलगाववाद आ रहा है। क्योंकि यह हमारी राष्ट्रीय एकता के आधार हैं। और देश का द्रुत गति से नैतिक पतन होकर भ्रष्टाचार के भंवर में देश फंस गया है। सारे भ्रष्टाचार शिक्षितों ने किये हैं अशिक्षितों ने नहीं।

इन दोनों समुदायों के ग्रंथ को घर, पाठशाला और कार्यशाला, तीनों में स्थान प्राप्त होने से देश आतंक, हिंसा, व्यभिचार का अड्डा बन गया है। लव जिहाद, बम जिहाद, राष्ट्र द्रोह का अड्डा बन गया है।

हमारे देश में यह सब दुष्कर्म सेकुलर एवं वामपंथी नेताओं के सहयोग से चल रहा है और अपने देश में सारे विश्व में स्वीकृत मानव मात्र के सर्वाङ्गीण विकास के लिए अपरिहार्य ग्रंथ को राष्ट्रीय ग्रंथ घोषित करने व उनको पाठ्यक्रम में शामिल करने में बाधा उपस्थित की जा रही है, उसे भगवाकरण का फतवा दिया जा रहा है—पता नहीं इस देश का भगवाकरण, राष्ट्रीयकरण, हिन्दूकरण नहीं होगा तो क्या होगा। यह स्थिति तब है जब हिन्दू-मुस्लिम आधार पर देश का विभाजन हो गया, और अंग्रेजों से मुक्ति मिल गयी। पर, इन सेकुलर काले अंग्रेजों ने, मैकाले पुत्रों द्वारा देश-धर्म, संस्कृति को जो क्षति पहुंचाई जा रही है वह तो आज तक कोई विदेशी आक्रान्ता भी नहीं कर सका। ये केवल भारत राष्ट्र के साथ ही नहीं विश्व मानवता के सर्वांगीण विकास में बाधक हैं। विश्व मानवता के ही नहीं पूरे चराचर के द्रोही हैं। क्योंकि केवल भारतीय ही, हिन्दू ही सारे चराचर में एक ही चेतना आत्मा-प्रभु का वास मानता है, सारे चराचर को, त्रिभुवन को एक परिवार के रूप में, एक नीड़ के रूप में, अपने-आपके रूप में देखता है। तब किसको लूटे, किसको ठगे, किस पर पापाचार, बलात्कार, व्यभिचार करें। इस दृष्टि से सारे विश्व का भारतीयकरण, हिन्दूकरण, भगवाकरण सारी सृष्टि में सुख, शान्ति सौख्य के लिए आवश्यक है। इसमें बाधक ऐसे सभी सेकुलर नेताओं को कूड़ेदान में फेंकने की आवश्यकता है। जैसा कि अतीत के जयचन्दों-मानसिंहों को कूड़ेदान में फेंक दिया और राष्ट्र भक्त नेताओं, बुद्धिजीवियों को, प्रबुद्धजनों को सामने लाने की आवश्यकता है तभी भारत पुनः अपने गौरव में प्रतिष्ठित हो सकेगा।

मोदी सरकार जब से आयी है वह भारत-भारतीयता के प्रति आस्थान्वित है और भारत को अपना गौरव दिलाने के लिए सचेष्ट है। गीता की महत्ता को समझकर विश्व के राजनेताओं को गीता भेंट में दे रहे हैं। अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा को गीता भेंट देते हुए मोदीजी ने कहा—भारत के पास इससे बड़ा कोई उपहार नहीं अमेरीका को देने के लिए और अमेरीका को भी भारत से लेने के लिए इससे बड़ा कोई उपहार नहीं है। योग को विश्व में प्रतिष्ठित स्थान दिलाया। पड़ोसी देशों और पूरे विश्व के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ कर रहे हैं और यह क्रम जारी है। पर, अभी सेकुलर भूचाल आया हुआ है। उसके हटने पर ही भारत अपने गौरव की ओर अग्रसर होकर प्रतिष्ठित हो सकेगा।

विश्व इतिहास के महानतम पुरुष योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा महाभारत काल के सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन के बीच का संवाद है भगवद्गीता। हमारे देश की पहचान हैं

यह गीता और रामायण। गीता को नकारने वाले हमारे देश के इतिहास, संस्कृति, पूर्वज और पहचान को नकार रहे हैं। अतः उन्हें नकार कर हमें उनको अपना स्थान दिखाना होगा। गीता रामायण के प्रसार में मुसलमानों, ईसाइयों और सेकुलर एवं वामपंथी हिन्दू नेताओं द्वारा जो बाधा उपस्थित की जा रही है उसको दूर करने के लिए ईसाइयत और इसलाम को जो संवैधानिक संरक्षण और सुविधा भारत में मिली हुई है कम से कम इतना संवैधानिक संरक्षण और सुविधा हिन्दू धर्म को भी मिलनी चाहिए। दुनिया के सभी देश बहुसंख्यकों को देश के मूल राष्ट्रीय समाज के धर्म को संवैधानिक सुरक्षा, संरक्षण और सुविधा देते हैं। अतः वर्तमान संविधान के भाग-4 अनुच्छेद 38 में एक छोटा-सा संशोधन लाया जाना चाहिए कि भारत का राज्य भारतीय संस्कृति का संरक्षण करेगा और समाज में भारतीय संस्कृति चेतना के उत्कर्ष के लिए काम करेगा। इस प्रकार राज धर्म का पालन करता हुआ भारतीय राज्य भारत के गौरवशाली इतिहास को वर्तमान और भविष्य में चरितार्थ करना अपना धर्म समझेगा।

इस संशोधन का दूरगामी परिणाम होगा। और रामायण व गीता जैसे राष्ट्रीय ग्रंथों की हिन्दुओं के एकमात्र भारत देश में ही अवमानना हो रही है, जिसके फलस्वरूप भारत के शिक्षा विभाग के साथ ही साथ पूरे देश को इसके लाभ से वंचित होना पड़ रहा है। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बचा जा सकेगा और रामायण व गीता को जो गौरव भारत और सारे विश्व में मिलना चाहिए वह मिल सकेगा। ऐसे तो गीता-रामायण अघोषित रूप से राष्ट्रीय ही नहीं अन्तरराष्ट्रीय ग्रंथ हैं। जिसे विश्व मनीषा स्वेच्छा से जीवन के हर क्षेत्र में स्वीकारती जा रही है। पर यह सम्मान भारत को भी मिले इसके लिए हिन्दू धर्म-संस्कृति को संवैधानिक संरक्षण देकर गीता को राष्ट्रीय ग्रंथ घोषित करना आवश्यक है।

'लाइट केम फ्राम दि इस्ट' ज्ञान और सभ्यता की ज्योति भारत आई।

बाइबिल

× × ×

भारत से मुझे दिव्य सुगंधि मिलती है।

पैगम्बर मुहम्मद

गो माता

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार सारी सृष्टि एक ब्रह्म का पसारा है। जब उसमें एकोऽहम् से बहुश्याम का संकल्प उठता है तब वही अपने आपको जीव, जगत और ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त करता है, अतः सारा जगत एकात्म है, सारा चर-अचर परस्पर जुड़ा हुआ है, परस्पर सम्बन्धित है, एक-दूसरे के पूरक, एक-दूसरे पर अवलम्बित है, निर्भर है। चाहे वह जड़ जगत हो जिसमें भूमि, नदियां, पहाड़ आदि आते हैं, चाहे वनस्पति जगत हो जिसमें पेड़-पौधे, घास-फूस आदि आते हैं, चाहे पशु जगत हो और चाहे मानव जगत हो। ये सभी एक ही विराट सत्ता, विराट पुरुष के अभिन्न अंग हैं, इसमें किसी पर भी चोट, प्रहार, शोषण स्वयं पर ही चोट, प्रहार शोषण है। जैसे अपने शरीर के किसी भी अंग पर चोट सारे शरीर को पीड़ित करती है। इस प्रकार संसार में जो भी चर-अचर, जड़-चेतन है उसमें एक ही विराट सत्ता का वास है। सब एक ईश्वर की अभिव्यक्ति होने से एक ही परिवार के सदस्य हैं। इसलिये हमारा राष्ट्रीय आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है, इस दृष्टि से धरती हमारी माता है, भारत मृण्मय नहीं चिन्मय है। भारत माता है, गाय माता है, तुलसी माता है। हिमालय पर्वत नहीं, देवात्मा हिमालय है।

अब पाश्चात्य विज्ञान भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के निकट आता जा रहा है। न्यूटन के पश्चात् Relativity Theory और Quantum Theory ने विज्ञान की दिशा ही बदल दी और वह पूर्णतः वेदान्त चिन्तन के निकट, वैदान्तिक निष्कर्षों को स्वीकार कर रहे हैं। Quantum Theory तथा 'गैआ सिद्धान्त' ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है Cosmic Mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन है, लय है, परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर है। One Integral Whole है। हमारी पृथ्वी एक जीवन्त संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं। अतः प्रकृति के किसी भी अंग का शोषण स्वयं का शोषण है। प्रकृति या प्रकृति के किसी भी अंग के प्रति हिंसा, बलात्कार स्वयं के प्रति हिंसा, बलात्कार है।

भारत एक कृतज्ञता प्रधान देश है, जहां-जहां से भी हमें भगवान की विशेष विभूति का दर्शन होता है, विशेष सेवा मिलती है, उनके प्रति हमारा आदर कृतज्ञता का भाव, सेवा का भाव है। मां के पश्चात् गोमाता ही हमारा जीवनभर अपने दूध से पोषण देती है। 'मां' शब्द गो माता ने दिया। गोवत्स जन्मते ही मां-मां पुकारता है। वात्सल्य शब्द भी गो माता से आया है। गाय के बछड़े को संस्कृत में वत्स कहते हैं। गाय अपने जन्मते वत्स को चाट-चाट कर साफ करती है। उसी से वात्सल्य शब्द बना है। इंसान के बच्चे को धो पूंछकर मां को दिया जाता है। पर गोमाता तो स्वयं अपने बच्चे को चाट-चाट कर साफ करती है। इन सब दृष्टि से गो के प्रति पूज्य भाव है, कृतज्ञता पूजा एवं सेवा का भाव है, इसलिये गो पशु नहीं हमारी माता है। इसी दृष्टि से गंगा-यमुना नदियां नहीं हमारी माता हैं, धरती माता है, हिमालय पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय है, आकाश पिता है आदि-आदि।

भारत धर्म प्रधान देश है। सनातन हिन्दू धर्म के अनुसार किसी भी वस्तु के तीन रूप होते हैं। एक उसका आधिभौतिक रूप, एक आधिदैविक रूप और एक आध्यात्मिक रूप होता है। इसी क्रम में पृथ्वी का आधिदैविक रूप गो है। जब-जब पृथ्वी पर असुरों का अत्याचार बढ़ता है तब-तब पृथ्वी गो का रूप धरकर ब्रह्माजी के पास अपना कष्ट निवेदन करने जाती है ताकि उसके संकट का निवारण हो। अतः गाय की उपेक्षा या उस पर प्रहार पृथ्वी पर प्रहार है। गाय की रक्षा समस्त पृथ्वी की रक्षा है। हमारे परलोक का आधार गोमाता है क्योंकि हमारे 33 कोटि देवी-देवता एक साथ गोमाता के विग्रह में वास करते हैं। गोमाता की सेवा-पूजा करने से 33 कोटि देवी-देवता की सेवा-पूजा एक साथ हो जाती है। गोमाता की प्रदक्षिणा करने से 33 कोटि देवी-देवता की प्रदक्षिणा एक साथ हो जाती है। और आज विज्ञान भी स्वीकार कर रहा है गोमाता की प्रदक्षिणा करने से हमारा औरा मण्डल बढ़ जाता है। हमारे जितने भी धार्मिक कृत्य है उसमें पंचगव्य आवश्यक है जो गोमाता से ही प्राप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति का सर्वोच्च आदर्श यज्ञ है, उसमें गोघृत आवश्यक है जो हमें गो से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार गो हमारे परलोक का आधार है।

हमारा ऋषि तंत्र भी गोदुग्ध पर आधारित था। गोदुग्ध से पुष्ट होकर हमारे ऋषि-मुनि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये आयाम देते हैं।

हमारे लोक का आधार भी गोमाता है। हमने जो अर्थ संरचना स्वीकारी वह गोवंश पर आधारित है। हमारा देश कृषि प्रधान और ग्राम प्रधान है। हमारा अर्थ तंत्र गोवंश पर आधारित है। गाय से दूध प्राप्त होता है, बैल हमारे हल जोतते हैं, पक्के अनाज को खेत से मण्डी तक ले जाने में यानी यातायात के काम आता है। गाय का गोबर खाद में मूत्र कीटनाशक औषधियों के रूप में काम आता है। गोवंश

के आधार पर हमारा प्रत्येक गांव स्वावलम्बी था। गांव में रोजगार था। बढ़ई हल और बैलगाड़ी बनाता था, लौहार हल के आगे लगने वाला फाल बनाता था, चर्मकार मरे हुए जानवरों के चमड़े से जूते-चप्पल बनाता था, चरवाहा पशुओं को पास के जंगल में चराने ले जाता था। प्रत्येक घर में दूध, दही, मक्खन, घी की प्रचुरता होती थी। अतिथि के जल मांगने पर दूध, दही, छाछ से स्वागत होता था। विदेशी आक्रमण के समय में हमारे गांव स्वावलम्बी रहे, हमारी अर्थव्यवस्था टूटी नहीं राज्य भले ही कुछ काल के लिये पराजित हुआ हो, राष्ट्र जीवन अखण्ड रहा। कुछ काल पश्चात् राज्य पुनः स्वाधीन हो जाते थे।

गाय स्वयं में औषधालय है। आरोग्य का खजाना है। देशी गाय के दूध में स्वर्ण है इसलिए इसका दूध पीला होता है। देशी गाय में सूर्य केतु नाड़ी होती है जो सूर्य की रश्मि को स्वर्ण भस्म में रूपान्तरित कर देती है। अभी-अभी अनुसंधान में पाया गया गो मूत्र में स्वर्ण है। दूध, दही, छाछ, घी, गोबर और गोमूत्र में चिकित्स्य गुण हैं। भोपाल गैस काण्ड में दो परिवारों का कुछ नहीं बिगड़ा। एक आर्य समाजी परिवार था जो नित्य गो घृत से हवन करता था और एक परिवार में तुलसी का जंगल था। नागाशाकी व हिरोशिमा में अणुबम के विस्फोट से जो त्रासदी फैली आणविक विकिरण से बचने के लिये गोबर के घोल में चद्दर भिगोकर उसको सुखाकर ओढ़ने पर घातक विकिरणों से बचाव हो सका। इसलिये हमारे आंगन, रसोई और दीवारों पर गोबर का लेप किया जाता है। इस प्रकार गाय का गोबर मल नहीं होकर मल शोधक है। औषधि है। गोमूत्र से नाना प्रकार की औषधियां, गोमूत्र और गोबर से बने साबुन चर्मरोग में विशेष फायदेमंद होता है। गोबर गैस प्लान्ट से रसोई बन रही है बिजली उत्पादन हो रहा है।

गो को लघु पर्यावरण Mini biosphere कहा जाता है। गाय के पोषण से पर्यावरण को पोषण प्राप्त होता है और पर्यावरण संतुलित रहता है। और गाय पर प्रहार से पर्यावरण क्षुब्ध होता है और अनेक प्रकार से दण्डित करता है, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुनामी की लहर से, भूकम्प द्वारा।

इस प्रकार गो सेवा हमारे लोक और परलोक, दोनों का आधार रही है। गो सेवा के द्वारा ही सत्यकाम जाबाल ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। गो सेवा के द्वारा ही राजा दिलीप ने रघु जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त किया। गो सेवा के द्वारा वशिष्ठ मुनि का अन्न भण्डार सदा भरा रहता था। गो सेवा के द्वारा जमदग्नि ऋषि का अन्न भण्डार सदैव परिपूर्ण रहता था। गो सेवा के आधार पर ही भारत आध्यात्मिक दृष्टि से, ज्ञान की दृष्टि से जगद्गुरु रहा है, भौतिक वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया। और भारत में जितने भी आक्रान्ता आये भारत के धन-वैभव से आकृष्ट होकर ही आये हैं। गो सेवा के आधार पर ही भारत के लाखों वर्षों के इतिहास में न

कभी पर्यावरण की समस्या खड़ी हुई, न जीवन की मूलभूत आवश्यकता—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु, आकाश के प्रदूषण की समस्या खड़ी हुई। न गांवों से पलायन और न किसानों के आत्महत्या करने का कभी अवसर आया। गो के प्रति राजाओं की परम्परागत आस्था एवं आदर्श रहा है गो-ब्राह्मण प्रतिपालन की। इसमें बाधा उपस्थित हुई मुगल (इसलाम) और अंग्रेजों के काल में।

पर्यावरण, गोवंश और पशुधन पर संकट सेमिटिक विचार के कारण

सेमिटिक विचार परम्परा जिसमें यहूदी, ईसाई और इसलाम आते हैं, इनके अनुसार जगत की रचना ही मनुष्य के उपभोग के लिये हुई। सृष्टि में जो भी चर-अचर है, भूखण्ड, नदी, पहाड़, वनस्पति जगत पशु जगत सब मनुष्य के उपभोग के लिये हैं। यहाँ तक कि नारी शरीर भी मनुष्य के उपभोग के लिये, सेवा के लिए, मन बहलाव के लिये, मनोरंजन के लिये है। पुरुष शरीर के अलावा और किसी में आत्मा नहीं है। पशु साग-भाजी की तरह है और उसको साग-भाजी की तरह खाया जा सकता है, उनसे जैसी चाहे सेवा ली जा सकती है।

मनुष्य God या खुदा की सर्वश्रेष्ठ कृति है, सृष्टि का मणि मुकुट है, Crown है। मनुष्य चूंकि सर्वश्रेष्ठ कृति है उसे अपने अनुरूप बनाया है, अतः वह सबका मालिक है, और जैसा चाहे उसका उपभोग-उपयोग कर सकता है। और अन्य मानव समुदाय जो God या खुदा (यानी ईसाइयत एवं इसलाम) को नहीं मानते हैं वे अविश्वासी हैं, काफिर हैं, हिडेन हैं, उनके भी तन, मन, प्राण, धन और परिवार पर उनका अधिकार है वह जैसा चाहे उनके साथ व्यवहार कर सकते हैं उनका निर्मम ढंग से प्राण हरण कर सकते हैं या अपनी निम्न से निम्न सेवा लेने के लिए किसी भी अधिकार से शून्य दोयम दर्जे की हैसियत से जिम्मी बनाकर रखे जा सकते हैं।

पर भारतीय दृष्टि इससे भिन्न है। भारतीय परम्परा में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ कृति इस दृष्टि से है कि वह नर से नारायण बन सकता है, और चूंकि वह विवेकी है अतः सारी सृष्टि के यथा योग्य योग-क्षेम वहन का दायित्व उसका है, इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति पंच महायज्ञ का विधान करती है। जिसके द्वारा सारी सृष्टि का योगक्षेम वहन होता है हिन्दू घर की रसोई में पहली रोटी गो के लिए पकती है उसके पश्चात् बच्चों एवं अन्यों के लिए और यह मनुष्य मात्र का जन्मजात दायित्व है। क्योंकि वह जन्म से ही तीन ऋणों को यथा देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण लेकर आता है और इसके विमोचन से ही सृष्टि संतुलित रहती है। इन दो दृष्टियों से ही मनुष्य श्रेष्ठ है अन्यथा वह भी सृष्टि के अन्य अवयवों की तरह एक अवयव मात्र है। उससे अधिक और कुछ नहीं।

सेमिटिक परम्परा के इस विकृत एवं प्रदूषित विचार ने ही अन्य मानव समूह, पशु जगत और पर्यावरण के शोषण की खुली छूट दी।

भारत में गोमाता पर संकट इसलाम के भारत में प्रवेश से प्रारम्भ होता है। यद्यपि कुरान और हदीस में गोवध का आदेश कहीं नहीं है। कुरान का पहला अध्याय 'सूरा 2 अलबकरा' जो कुरान का सबसे बड़ा अध्याय है जिसमें सबसे अधिक आयतें है, उसमें स्पष्ट रूप से गोदुग्ध को अमृत और गोमांस को बीमारी माना। अरब में इसलाम के पूर्व भारतीय संस्कृति फैली हुई थी और उसका जन-जीवन पर प्रभाव व्याप्त था। तभी इसलाम के पूर्व के कवियों को भारत की, वेद की, कृष्ण की, राजा विक्रमादित्य की, महादेव की स्तुति गाते हुए पाते हैं। और इसलाम के प्रारम्भ से ही भारत के प्रति श्रद्धा पाते हैं। कुरान के अनुसार आदम स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर आये तो श्रीलंका के श्रीपाद पर्वत पर उतरे उसे वे आदम स्पीक कहते हैं, हिन्दू उसे भगवान विष्णु के पाद का तीर्थ मानते हैं। बौद्ध भगवान बुद्ध के पाद का तीर्थ मानते हैं। स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब के चाचा अबुल हिक्म भारत और महादेव की प्रशस्ती गाते हुए पाते हैं। स्वयं मुहम्मद साहब भारत के प्रति श्रद्धानत थे। वे कहते हैं भारत से मुझे दिव्य सुगंधि मिलती है। वे स्वयं गोमांस का निषेध करते हैं, उसे बीमारी मानते हैं गोदुग्ध को स्वास्थवर्धक, अमृत और दवा मानते हैं। गाय को दौलत की रानी कहते हैं क्योंकि गाय घास-फूस, चोकर जो मनुष्य का आहार नहीं है, खाकर अमृत जैसा दूध देती है। ऐसे भी अरब देशों में गाय बहुत कम होती है नाम मात्र की। अरब देशों में बकरा, दुम्बा, ऊंट, घोड़े आदि होते हैं। वहां उन्हीं को मारते। उनके पर्व का नाम भी 'बकरीद' है, गोईद नहीं। फिर अरब गरम देश है, गोमांस की प्रकृति भी गरम है अतः गो-गोमांस को बीमारी बतलाया। मक्का शरीफ जो इनका सबसे बड़ा तीर्थ हैं और प्रत्येक मुसलमान के लिये जीवन में एक बार हजयात्रा अनिवार्य है, वहां प्रारम्भ से लेकर आज तक कभी गोकुशी नहीं हुई। वहां गोकुशी निषिद्ध है। गो वध का आदेश न कुरान में है, न हदीसों में है स्पष्ट गो वध कुरान-हदीस सम्मत नहीं वरन् दोनों का आज्ञा की अवेहलना है। यदि मान भी लें कुरान-हदीस में गो वध का आदेश होता तो भी भारत में यह मान्य नहीं हो सकती थी। कम से कम भारत में तो भारत का विधान, हिन्दू धर्म ही मान्य होगा।

जब इस्लामिक आक्रमण भारत पर हुआ और अपने शौर्य व सैन्यबल से हिन्दू राजाओं को परास्त नहीं कर सके तो उन्होंने धूर्तता से काम लिया। उन्हें पता चल गया कि हिन्दू सेना गो पर वार किसी भी कीमत पर नहीं करेगी। गो के प्रति आस्तिक बुद्धि देखकर गो को आगे कर आक्रमण किया और हमारे राजा-रजवाड़ों ने गोहत्या न हो इस भाव से बिना युद्ध किये ही आत्म समर्पण कर दिया। पर यह धर्मभास था। इससे देश भी पराधीन हुआ और गो वध भी नहीं रुका। यदि धर्मामास के शिकार न होकर शौर्य से लड़ते तो न देश पराधीन होता, न गो वंश पर संकट आता। भले ही प्रारम्भ में कुछ गो वंश कटता, पर भविष्य में सुरक्षित होती।

जब भी कोई विदेशी आघात होता है तो वह उसके प्रेरणा स्रोतों, प्राण केन्द्रों, मान बिन्दुओं को ध्वस्त करता है ताकि देशवासियों का मनोबल टूटे और पराजय में ही संतोष माने। यही कारण है कि उन्होंने मन्दिरों, पुस्तकालयों को नष्ट करने के साथ-साथ गोवध करना प्रारम्भ किया हिन्दुओं को अपमानित करने के भाव से।

इस प्रकार गोरक्षा का प्रश्न मुस्लिम काल में पहली बार उपस्थित हुआ। इसके पूर्व गोहत्या अचिन्तनीय थी। पर बहुत से मुस्लिम शासकों को लगा बिना हिन्दुओं के सहयोग के न ठीक से शासन चला सकते हैं और न अपने शासन को स्थायित्व दे सकते हैं। अतः हिन्दुओं की भावना का सम्मान कर उनके समर्थन व सहयोग पाने की भावना से बाबर, हुमायू, अकबर, जहाँगीर, हैदरअली, अहमदशाह ने गोहत्या बंद रखी। 1857 का स्वातंत्र्य समर जिनके नेतृत्व में लड़ा गया अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने भी गोहत्या पर पाबन्दी लगा दी थी। और गोवध पर प्राण दण्ड का विधान था। ऐसे भी भारत के प्रायः सभी मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू थे। 1-2-4-5-10-20 पीढ़ी पूर्व पीछे जाएंगे तो सब अपने-आपको गो भक्त, भारत भक्त ही पायेंगे। उपासना पद्धति, पूजा बदलने से देश, इतिहास, संस्कृति, पूर्वज, महापुरुष, रक्त नहीं बदलता।

फिर अंग्रेजों का शासन भारत में स्थापित हो गया। अंग्रेज भारत का आर्थिक शोषण करने आये थे। उस समय भारत उत्पादन के क्षेत्र में सारी दुनिया में सबसे आगे था। अमरीकन इतिहासकार बिल डुरण्ट लिखते हैं कि कहीं भी मौजूद और अपनी उपादेयता या सुन्दरता के लिये मूल्यवान तथा सभ्य संसार में ज्ञात लगभग हर प्रकार के निर्माण या उत्पाद अनेक वर्षों पूर्व भारत में ही तैयार किये जाते थे। भारत यूरोप अथवा एशिया के किसी अन्य देश की तुलना में विशालतर औद्योगिक और उत्पादन करने वाला राष्ट्र था। भारत के हथकरघों पर निर्मित उत्कृष्ट सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र समूचे सभ्य संसार में प्रसिद्ध थे। वैसे ही भारत के उत्कृष्ट आभूषण, हर तरह के सुन्दर कीमती रत्न-माणिक्य और वैसे ही विविध प्रकार के रंगों, सुन्दर आकारों और गुणवत्ता युक्त भारत के मिट्टी तथा चीनी मिट्टी के बर्तन भी विश्व-विख्यात थे। अंग्रेजों ने भारत में आकर इसे ऐसा ही पाया था।

इस प्रकार जब अंग्रेज यहाँ आये तो भारत आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से एक उन्नतिशील देश था। किन्तु राजनैतिक रूप से भारतीय लोग दुर्बल तथा बंटे हुए थे। भारतीयों में राजनैतिक एकता के अभाव के कारण ही विदेशी आक्रान्ताओं ने एक हजार वर्ष से भी अधिक काल तक उन पर शासन किया।

भारत औद्योगिक जगत में भी आगे था और कृषि तंत्र में भी आगे था। भारत के अर्थतंत्र को तोड़े बिना भारत इंग्लैण्ड का बाजार नहीं बन सकता था।

भारत का कृषितंत्र गोवंश पर आधारित था। और गोवंश पर भारतीयों की अपार श्रद्धा थी। प्रारम्भ यानी वेदकाल से लेकर अंग्रेजों के काल के पूर्व तक गो माता के प्रति एक भी अवज्ञा का दृष्टान्त नहीं मिलता। मुगलों और अंग्रेजों से हिन्दू राजाओं की जितनी सन्धियाँ हुईं उसमें सबसे प्रथम और प्रमुख शर्त गोहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध था।

यद्यपि बाइबिल में गोमांस का विधान नहीं है फिर भी अंग्रेज गोमांस भक्षी थे। दूसरा भारत के अर्थतंत्र, कृषितंत्र को तोड़ने के लिये गो के प्रति अवज्ञा, अश्रद्धा का भाव अपनी संस्कृति और उसके मान बिन्दुओं के प्रति अश्रद्धा निर्माण करना आवश्यक लगा। इसके लिये हमारी शिक्षा व्यवस्था बदलकर हमारे मानस में, हमारी रुचि में ही परिवर्तन कर दिया जिससे हमें अपनी सभी बातें हेय-त्याज्य लगने लगी और उनकी सभी बातें श्रेष्ठ और अनुकरणीय लगने लगी। हमें लगने लगा कि अंग्रेजों को गुरु, आदर्श पुरुष मानकर, उनके बताये मार्ग पर चलकर ही भारत अपना विकास कर सकता है। मुगल काल में हमने शिर दे दिया पर चोटी नहीं दी। यज्ञोपवीत नहीं उतारा सिर दे दिया। तिलक नहीं हटाया सिर दे दिया। इसके पूर्व गोमाता के प्रति एक भी अवज्ञा का भाव नहीं मिलता चाहे वह आस्तिक हिन्दू हो या नास्तिक या किसी भी सम्प्रदाय का मानने वाला हो गाय के प्रति समान आस्था थी। 1857 प्रथम स्वातन्त्र्य समर हो गया कारतूसों में गो चर्बी मिलाने से। कूका आन्दोलन गो रक्षा के लिए हो गया। पर अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित होकर स्वयं गोमांस खाकर उसकी सूखी हड्डियां मन्दिरों में फेंकने लगे पुरोहितों, पुजारियों और पण्डितों को चिढ़ाने के लिए। इस प्रकार गो के प्रति अवज्ञा का भाव उत्पन्न किया। अंग्रेजों ने हमारे अर्थतंत्र-कृषितंत्र को तोड़ने के लिए, स्वयं गोमांस भक्षण के लिए गोवध जारी रखा। गो मारने के लिए मुसलमानों को नौकर रखा ताकि हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक सम्प्रीति नष्ट हो जाए, आपस में फूट पैदा हो जाए। इसलिये सदैव मुसलमानों को गोवध के लिए उकसाते रहे और उन्हें कत्लखाने में नौकरी देते रहे। मुगल काल में बहुत से मुस्लिम बादशाहों ने जो हिन्दुओं का समर्थन पाने गो वध पर प्रतिबन्ध लगाया था ताकि हिन्दू-मुस्लिमों में साम्प्रदायिक सम्प्रीति बनी रहे, इसको अंग्रेजों ने नष्ट करने, परस्पर में फूट, वैर-विरोध एवं अविश्वास उत्पन्न करने के लिये कत्लखानों में मुसलमानों को नौकर रखा और दूसरी तरफ हिन्दुओं में गो के प्रति अश्रद्धा निर्माण के लिये बहुत ही चालाकी से गो पर चौतरफा आक्रमण करना प्रारम्भ किया। Convent स्कूलों में पढ़ाया जाने लगा—गाय दूध और मांस देती हैं। इसी परिवेश में बंगाल के दो विद्वानों ने 19वीं शताब्दी में अपनी अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों में सर्वप्रथम यह स्थापना दी कि वेदों में गोमांस भक्षण का विधान है। ये थे डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र जिन्होंने दो खण्डों में

एक पुस्तक लिखी—'इण्डो आर्यन्स' तथा श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय जिन्होंने 'पाजीटिव साइन्सेज इन प्रिहिस्टारिक एन्शेण्ट एण्ड मार्डन इण्डिया' लिखी। इन्हीं दोनों पुस्तकों में यह प्रतिपादन सर्वप्रथम किया गया। इन्हीं के आधार पर भारत सहित समस्त विश्व ने सर्वप्रथम जाना कि वेदों में गोमांस भक्षण का विधान है। इसके पूर्व यह तथ्य अनजाना था। अंग्रेजों तथा उनके समर्थकों के और अब अंग्रेजी विचारधारा से प्रभावित इण्डियन विद्वानों के एर्ताद्विषयक तर्क के मुख्य आधार आज भी वही है। राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयास चला कि यहां नरबलि प्रथा थी। नर मांस खाया जाता था। ऐसी बातों के प्रचार से ऐसा वातावरण बना कि अपने समय में विवेकानन्द भी कह गये कि एक समय था, जब भारत में पांच ब्राह्मण मिलकर एक गाय चट कर जाते थे। इसकी एक परिणति आचार्य विनोबा भावे में देखी जा सकती है। विनोबा भावे 'गीता प्रवचन' में कह गये कि वैदिक ऋषि गोमांस खाते थे और फिर इस कथन के लिये प्रमाण दिया सातवीं शताब्दी ईस्वी में भवभूति रचित 'उत्तर रामचरित' नाटक के उस अंश का, जिसका अर्थ भी अस्पष्ट है।' इन सब तथ्यों को गांधीवादी विचारक धर्मपालजी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्र, मानस एवं काल' में स्पष्ट रूप से रखा है पृष्ठ 60-61 में।

एक बार पुनः विनोबा भावे ने किसी एक लेख में लिखा कि रामायण काल में लोग गोमांस खाते थे। पिलखुआ (उ.प्र.) निवासी भक्त रामशरण दास यह पढ़कर उनके पास पहुंच गए और इसे प्रमाणित करने को कहा। विनोबाजी ने कहा कि दक्षिण की एक रामकथा में लिखा है। इस पर भक्तजी ने कहा कि श्री राम के बारे में हजारों किताबें लिखी गई हैं, पर धर्म ग्रन्थ तो श्री वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामचरित मानस ही है उसमें कहीं ऐसा हो, तो बताइये। इस पर विनोबाजी चुप हो गए।

जो बुद्धिजीवी यह मानते हैं कि प्राचीन भारत में गोमांस प्रचलित था, तो यह बन्द कब से और क्यों हुआ। जिन वेदों में गाय की स्तुति है, उसे अवध्य कहा गया है वहां गो हत्या की बात कैसे आ गई? पर उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

इसके साथ ही मैक्समूलर, मोनियर, विलियम्ज, मैक्डॉनाल्ड आदि ने गो पूजा को निन्द्य बताने का अभियान छेड़ दिया। यह अभियान बड़ी कुटिलता से चलाया गया। मैक्डॉनाल्ड ने लिखा कि पारसी और हिन्दू, दोनों ही अविकसित धर्म, गो पूजक हैं। वे जब एकत्र रहते थे, तभी से यह दयनीय प्रथा अपनाये हुए हैं। मैक्समूलर का कहना था—'हिन्दुओं में एक बुद्धि रहित, निरर्थक, गन्दा, बर्बर, पाशविक तत्त्व है अफ्रीका और अमेरीका के जो सबसे निकृष्ट कबीले हैं, उनमें भी इतनी बीभत्स, घिनौनी और देखते ही मन में जुगुप्सा-जन्य विद्रोह भड़का देने वाली प्रथा शायद ही हो, जैसी कि पशु-पूजा की प्रथा हिन्दुओं में है। यह तो अधोगति की निम्नतम दशा

है, अतलतम गहराई है। अंग्रेजों के विश्वासभाजन भारतीयों को इंग्लैंड में घुमाकर और वहां सर्वोत्तम डेयरियां दिखाकर उसमें यह भाव भरा जाता था कि गाय दूध और मांस देती हैं। जब तक दूध देती है तब तक दूध, उसके बाद मारकर मांस भक्षण करना चाहिए। इन दो दृष्टियों से ही पालन होना चाहिये। गाय कोई पूजा श्रद्धा, आस्था की वस्तु थोड़े ही है। गोपूजन के कारण ही भारत की दुर्दशा है। सेमिटिक परम्परा में प्रकृति या गाय से माता-पुत्र का नहीं शत्रुता का, भक्ष्य और भक्षक का सम्बन्ध है अतः गोपूजा, प्रकृति पूजा उनके लिये गाली है, सबसे बड़ी मूढ़ता है, अज्ञता है। इस प्रकार गो-रक्षा, गोसेवा को उपहास योग्य अन्धविश्वास प्रचारित किया गया। इसके बाद भी अंग्रेज इतने सफल नहीं हो सके। क्योंकि इसके विरुद्ध महापुरुषों की श्रृंखला खड़ी हो गई, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, तिलक, गांधी आदि और सतत आन्दोलन चल पड़ा। जिसमें संतों, महाराजाओं, पण्डितों, सेठों और जनसाधारण की समानरूप से भागीदारी रही। यही कारण है ब्रिटिश काल में 300 कसाई-खाने थे जहां प्रतिदिन छह हजार गोवंश कटता था। पर वहां आज 36 हजार कत्लखाने हैं जहां 40 से 50 हजार गायें प्रतिदिन कटती हैं। गो पालक भगवान कृष्ण का यह देश, अहिंसा के नाम से जाने वाला बुद्ध, महावीर एवं गांधी का देश जिसके विषय में प्रचारित किया जाता है कि गांधीजी ने अहिंसा से आजादी प्राप्त की, गोपालक देश आज सबसे बड़ा गो हत्यारा देश बन गया—आज विश्व में दूध, दही, मक्खन, घी सप्लाई के स्थान पर सबसे बड़ा गोमांस निर्यातक देश बन गया, सबसे बड़ा जूता सप्लायर देश बन गया है। दुनिया की बूट पालिश करने वाले मोचियों और गो की हत्या करने वाले कसाइयों का देश बन गया है। जिस देश में विश्व के ज्ञान पिपासु ज्ञान की पिपासा मिटाने आते हैं, धर्म का प्रकाश, साधना का प्रकाश पाने आते थे और अपने को इस देश में आकर धन्य-धन्य, कृत-कृत मानते थे, पूर्णता की अनुभूति करते थे वह स्वयं कसाइयों व मोचियों का देश बन गया। ऐसा क्यों? हिन्दू, मुसलमान के आधार पर देश विभाजित हो जाने तथा अंग्रेज के चले जाने के बाद भी गोपालन के स्थान पर गो हत्या का प्रसंग कैसे आ गया?

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण अंग्रेजों की आर्थिक दृष्टि से कमर टूट गयी, भारत में सेना और पुलिस उनकी विश्वस्त रही नहीं, स्वदेशी आन्दोलन के कारण भारत का व्यापार भारतीयों के हाथ में आ गया, अब आर्थिक दृष्टि से भारत पर शासन करना उनके लिये लाभकर नहीं रहा। उनको लगने लगा अब अपने हितों को सुरक्षित रखते हुए, अपनी शर्तों पर देश का शासन अहिंसक गांधी के रहते हुए देकर जाने में अपनी भलाई है। नहीं तो कहीं पुनः सुभाष बोस जैसा नेता उभर आए, लोकमान्य तिलक जैसा या वीर सावरकर के हाथ में नेतृत्व आ जाए तो हम सब साम्राज्यवादियों को फांसी पर लटकना पड़ेगा, कुत्ते की मौत मरना पड़ेगा। ऐसे

व्यक्ति की खोज प्रारम्भ हुई जो उनके स्वार्थ के अनुकूल हो और जिसके नेतृत्व में देश कभी खड़ा न हो सके, महाशक्ति के रूप में उभर न सके। ऐसा व्यक्ति पंडित नेहरू था जो अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज था, शिक्षा की दृष्टि से अपने को अंग्रेज मानता था, इनके पूर्वज मुगलों की सेना में थे। इनके पितामह अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के दिल्ली चांदनी चौक के सर्वोच्च पुलिस अधिकारी थे। दिल्ली में अंग्रेज सेना के आक्रमण पर वे भय से परिवार सहित आगरा भाग गये थे। नेहरू के पिता मोतीलाल का जीवन ऐश्वर्यपूर्ण तथा मुगलिया ठाट-बाट का था, वे धर्म की दृष्टि से अपने को मुसलमान मानता था। केवल मात्र हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लेने के कारण हिन्दू थे। विश्वासों, आदर्शों से वे समाजवादी, विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां जो भारत को विश्व के मानचित्र से मिटाकर इसलाम, ईसाइयत और कम्यूनिज्म की झोली में डालना चाहते थे, उनका गठजोड़ नेहरूजी थे। उन्होंने हिन्दू विरासत पर गर्व की बात तो कई स्थानों पर कही, पर वह मात्र दिखावा, छलावा, पाखण्ड मात्र था। वे आजीवन हिन्दू धर्म, संस्कृति, हिन्दी भाषा, गोमाता, हिन्दू मानबिन्दु, हिन्दू इतिहास, महापुरुषों का विरोध करने वाले रहे हैं। यही कारण है हिन्दू-मुसलमान के आधार पर देश विभाजित हो जाने, 23 प्रतिशत मुसलमानों को 30 प्रतिशत भूमि भारत माता से काटकर दे देने और अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद भी भारत में गोवध पर प्रतिबन्ध नहीं लग सका। नहीं तो लोकमान्य तिलक कहा करते थे देश को स्वराज्य मिलते ही, जो पहली कलम चलेगी उसमें गोवध पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया जायेगा। गोवध का कलंक सदा के लिये मिटा दिया जायेगा। गांधीजी स्वराज्य से भी बड़ा प्रश्न गो रक्षा को मानते थे। पर दुर्भाग्य से गो मांस भक्षक नेहरू को ऊपर उठाते रहे, बढ़ावा देते रहे, प्रोत्साहन देते रहे, फलतः गो भक्षी के हाथ में शासन आ गया फलतः केवल नेहरूजी की जिद के कारण गो वध पर प्रतिबन्ध की बात तो दूर गोवध को बढ़ावा दिया गया और यह सिलसिला मोदी सरकार के पहले तक जारी रहा है। नेहरूजी के कारण हिन्दी राष्ट्र भाषा नहीं बन सकी? महात्मा गांधी की गांवों को विकास का केन्द्र बिन्दु मानने की उचित सलाह को ठुकराकर पाश्चात्य विकास के पथ पर देश को आगे बढ़ा दिया। पाश्चात्य विकास पथ केन्द्रीकृत, विपुल ऊर्जा भक्षी, पूंजी बहुल, बेरोजगारी वर्धक, व्यापक पशु हिंसा पर आधारित और प्रकृति विनाशक है।

महात्मा गांधी ने जो भारतीय विकास पथ सुझाया था वह विकेन्द्रित, अल्प ऊर्जाभक्षी, अल्प पूंजी पर आधारित रोजगार बहुल और प्रकृति से सुसंगत एवं अहिंसा पर आधारित था। इंग्लैंड ने जो अपना विकास किया है एशिया के शोषण के बल पर, वैसा ही विकास भारत का करना हो तो पूरी दुनिया का शोषण करना पड़ेगा। ऐसा गांधीजी का स्पष्ट मंतव्य था। क्योंकि इंग्लैंड भारत के एक राज्य के

समान है। पाश्चात्य ने जो पथ स्वीकारा है उससे स्वयं पाश्चात्य का ही कल्याण नहीं हो रहा है। कम्यूनिज्म अपने ही घर रूस में ढह गया है। सारी दुनिया के शोषण पर खड़ा अमरीका आज लड़खड़ा रहा है। आज सारा पश्चिम और सारा विश्व पश्चिम की नकल पर चलकर आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है। आज परिवार जीवन और समाज जीवन ध्वस्त होता जा रहा है। जिन आधारों पर मानव जीवन खड़ा है—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु और आकाश ये प्रदूषित होते जा रहे हैं। पृथ्वी जहरीली और बेहोश होती जा रही है, जल जहरीला और उसका स्तर नीचे जाता जा रहा है, अन्न जहरीला होता जा रहा है, वायु भी जहरीली होती जा रही है आकाश की ओजोन परत में छेद होते जा रहे हैं, जिससे घातक विकिरणों का प्रवेश होता जा रहा है, तापमान बढ़ने से उत्तरी ध्रुव की बर्फ पिघल रही है इससे समुद्र का जलस्तर बढ़ता जा रहा है, जिससे समुद्र के जल में हजारों टापू हैं जिसमें मानव सभ्यता एवं देश वास करते हैं उनके अस्तित्व पर संकट खड़ा होता जा रहा है। समुद्री जीव-जन्तु, वनस्पतियों के अस्तित्व पर संकट खड़ा जो जाएगा। दुनिया के 15 प्रतिशत लोग समुद्र के जीव-जन्तु पर निर्भर है। ग्लोबल वार्मिंग की स्थिति निर्माण हो रही है। इस प्रकार जीव सृष्टि का अस्तित्व ही संकट में पड़ता जा रहा है। पर्यावरणविदों के जितने भी सम्मेलन हुए हैं उसमें से कहीं भी आशा की किरण न मिलने पर भारत की ओर दृष्टि गयी, भारत की जो पर्यावरण के प्रति दृष्टि है और आर्थिक विकास का पथ है वही विश्व को सही राह दिखा सकता है और विश्व जीवन को सुख-शांति से भर सकता है। आज का विज्ञान भी भारतीय निष्कर्ष को स्वीकारता जा रहा है। Quantum Theory तथा गैआ सिद्धान्त ने सिद्ध कर दिया है सृष्टि नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन, लय है, परस्पर सम्बन्धित, परस्पर जुड़ा हुआ है, परस्पर निर्भर है। One Integral whole है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं। अतः प्रकृति या प्रकृति के किसी अंग का शोषण स्वयं का शोषण है, प्रकृति न निरीह है, न बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है जो उसके नियमों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले को दण्डित करती है–सुनामी के रूप में, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं भूकम्प के रूप में।

इसलिये प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टि और आर्थिक विकास का भारतीय मॉडल स्वीकार कर हम अपना वास्तविक विकास कर सुखी-स्वस्थ और सम्पन्न हो सकते हैं। इसीलिये भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम का कहना है 33 करोड़ देवी-देवता के निवास वाली गोमाता अपनी नासमझी के कारण संकट में है। विज्ञान की हर कसौटी पर खरी उतरने वाली भारतीय नस्ल की गाय और गोवंश पर आधारित कृषि संरक्षण को यदि बढ़ावा दिया जावे तो स्वास्थ्य सुरक्षा,

आर्थिक सुरक्षा, खाद्यान्न सुरक्षा एवं पर्यावरण सुरक्षा की गारंटी दी जा सकती है तभी सक्षम और स्वावलम्बी भारत का निर्माण हो सकता है।

गोवध का इसलाम से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसकी पहले ही चर्चा हो चुकी है। नहीं तो कश्मीर में गोवध अवश्य होता जो इस्लामिक आतंकवाद का अपने देश में सबसे बड़ा केन्द्र बना हुआ है। शेख अब्दुला ने और जो कुछ भी भारत राष्ट्र के विरुद्ध किया हो पर उसकी गो पर श्रद्धा और महत्त बुद्धि होने एवं इसलाम का गोवध से कोई सम्बन्ध नहीं होने के कारण ही शेख अब्दुला के काल से आज तक कश्मीर में गोवध पर प्रतिबंध है।

इसके बाद भी इमाम बुखारी जैसे मुस्लिम नेता या मौलवी यह कहते हुए पाये जाते हैं—'गो हमारी कौम की खुराक है', उनको वर्तमान रूस के राष्ट्रपति पुतिन की तरह स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिनको ऐसी विशेष सुविधा चाहिये उनको भारत देश छोड़कर उन देशों में चले जाना चाहिये जहां ऐसी सुविधा एवं विधान उपलब्ध है। फिर हमने तो 23 प्रतिशत के आधार पर 30 प्रतिशत भूमि दे दी अतः अब इस प्रकार के किसी भी दावे का कोई भी आधार या अधिकार बनता है क्या? बंटवारे के पश्चात् भी हम उन्हें ससम्मान पाल रहे हैं यह क्या कोई कम बड़ी बात है? क्या विश्व के और किसी भी देश में ऐसा सम्भव है? फिर भारत की भी अपनी परम्परा और विधान है। भारतीय परम्परा में गो अवध्य है, और गोवधकारी को प्राणदण्ड का विधान है। और भारत में तो भारत का ही विधान चलेगा।

फिर भारत के सभी नागरिकों को दूध, दही, मक्खन, पनीर, घी चाहिये या नहीं? जब गायें ही नहीं रहेगी तो ये उपलब्ध कहां से होगा? इस तरह हर दृष्टि से गोवध पर पूर्ण प्रतिबंध और गोपालन आवश्यक है तभी दोनों दृष्टियों से भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से समृद्ध खुशहाल, स्वस्थ भारत का निर्माण हो सकता है।

और गाय का अर्थ देशी गायों से है उसके दूध, मूत्र और गोबर में जो गुणवत्ता है, चिकित्सीय गुण है, पर्यावरणीय गुण है, सात्विकता है वह और किसी में नहीं है।

अब सत्ता में परिवर्तन हुआ है। मोदी सरकार आयी है जिसकी 'भारत' और भारतीयता में आस्था है। अब पहली बार लग रहा है, स्वाधीनता के पश्चात् भारत में भारतीय सरकार आयी है, जिनका भारतीय जीवन मूल्यों में आस्था है, गो के प्रति परम्परागत आस्था है अतः गोरक्षा और गोपालन के लिये कारगर कदम उठायेगी ऐसी अपेक्षा है। इससे ग्रामोदय व राष्ट्रोदय, आत्म रक्षा और राष्ट्र रक्षा तथा पर्यावरण की रक्षा हो सकेगी। गाय कोई साम्प्रदायिक पशु नहीं चलता-फिरता सबकी अन्नपूर्णा मां है।

उशा उल्ला खां

उशा उल्ला खां का पूरा परिवार मुस्लिम लीगी था। उसके चाचा आदि अंग्रेजों के पुलिस अफसर थे। उसमें तमन्ना हुई कि देश के लिए कुछ करूं। उसे पता था कि रामप्रसाद बिस्मिल क्रान्तिकारी हैं और उनके पास ही यह मंशा पूरी हो सकती है। पर, उनसे सम्पर्क करूं कैसे?

तब वे जिस मार्ग से रामप्रसाद बिस्मिल रोज जाते थे उस रास्ते में उनका इंतजार करते हुए खड़े रहते और क्रॉस करते ही उन्हें पुकारते—पंडितजी, नमस्कार! यह क्रम कुछ दिन चला, इससे आगे नहीं बढ़ा। एक दिन उशा उल्ला खां ने उन्हें टोका तो रामप्रसाद बिस्मिल ने डांट लगाई कि तुम्हारा परिवार मुस्लिम लीगी और तुम्हारे चाचा अंग्रेजों के पुलिस अफसर हैं। और मैं कट्टर आर्य समाजी हूं। आर्य समाज मंदिर में रहता हूं और जो मुसलमान पुनः हिन्दू होना चाहता है उनकी शुद्धि करता हूं। समझे! चले आये पंडितजी नमस्कार! कल से नहीं दिखना। और यह कहकर आगे बढ़ने लगे। तब उशा उल्ला खां ने आगे बढ़कर बड़े करुण स्वर में कहा—'क्या किसी मुसलमान को फांसी पर चढ़ने का अधिकार नहीं है?' इस करुण स्वर से पंडितजी का हृदय पिघल गया और कहा, अच्छा-अच्छा कल मिलना।

फिर इतनी मित्रता हुई कि एक साथ उठना-बैठना, खाना-पीना चलने लगा। एक बार वह बीमार पड़ा और बुखार बढ़ता ही गया। उसे अर्धचेतन अवस्था में भी राम-राम बड़बड़ाने लगा। घर वालों ने कहा—राम-राम नहीं अल्लाह-अल्लाह कहो। पर, वह राम-राम बड़बड़ाता रहा। उसकी बीमारी की जानकारी जब बिस्मिल को मिली तो व्यक्तिगत मान-अपमान की चिन्ता किये बिना वह उससे मिलने घर चला गया। उसे बिछावन से पकड़ कर उठाया तो परस्पर में एक-दूसरे को हृदय से लगा लिया। घर वालों ने देखा वह ऊपर वाला राम नहीं, यह राम है। रामप्रसाद ने मन्दिर से प्रसाद लाकर दिया, उसके पश्चात् वह स्वस्थ होने लगा।

फांसी से विरत होने के लिए, मुखबिर बनने के लिए घर वालों के साथ-साथ सरकारी व्यक्तियों ने सारी चेष्टाएं चलायीं पर सारी चेष्टायें निष्फल रही। फांसी के एक दिन पूर्व उसने घर वालों के नाम पर एक पत्र लिखा। दो पंक्तियों में एक कविता लिखी—

सरफरोशी की तमन्ना हमारे दिल में है।
देखना है कितनी आरजू हमारे दिल में है।

इस प्रकार देश भक्ति का पाठ Akeaments संतुष्टीकरण से नहीं आता।

हमारे पड़ोसी शिष्य देश

जो भारत विश्व का गुरु रहा है, आज दुर्भाग्य से अपने सभी पड़ोसियों तथा कल तक के शिष्यों के लात-घूंसे तथा चाबुक खाने वाला अभागा नौकर जैसा बन गया है। सन् 1947 में पश्चिमी पंजाब, सिंध, सीमाप्रांत, ब्लोचिस्तान, कश्मीर एवं पूर्वी बंगाल में लाखों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा गया। नन्हे बच्चों को भालों की नोकों पर उछाला गया, नंगी महिलाओं के जुलूस निकाले गये, भवन जलाये गये, धन, प्राण एवं मान-मर्यादा लूटी गई तथा करोड़ों लोगों को उनके हजारों वर्षों के परंपरागत निवास से निर्वासित कर दर-दर का भिखारी, शरणार्थी बना दिया गया।

चीन जो दो हजार वर्ष तक भारत का शिष्य रहा, उसने भी सन् 1962 में तिब्बत की हत्या के उपरांत भारत के लद्दाख एवं नेफा क्षेत्रों पर निर्लज्ज बर्बर आक्रमण कर दिया।

ब्रह्मदेश से (जो सन् 1936 तक भारत का अंग था) लाखों भारतवंशियों की धन-संपत्ति लूट कर उन्हें देश से निकाल दिया गया।

नेपाल जैसे हिन्दू राष्ट्र ने भी भारतीयों के लिए कठोर नियम बनाने प्रारंभ किए हैं तथा उसने भी भारत के संरक्षित राष्ट्र की स्थिति त्याग कर संयुक्त राष्ट्र-संघ में अपनी स्वतंत्र सदस्यता स्वीकार कर ली है। उसको बहुत अधिक आर्थिक सहायता देकर—चीन, रूस, अमेरिका, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश भारत के खिलाफ भड़काते रहते हैं।

भारत एवं लंका के सांस्कृतिक सम्बन्ध इतने पुराने हैं जितना कि विश्व का प्रथम महाकाव्य वाल्मीकि रामायण।

अब श्रीलंका में भी, जो विभीषण के काल से अब तक भारतीय संस्कृति का भक्त रहा, गत 2300 वर्षों से भगवान बुद्ध के संदेश से अनुप्राणित रहा तथा सन् 1936 तक भारत का अंग भी रहा, वहाँ भी आज भारतवंशियों की सामूहिक हत्या, आगजनी, लूट-पाट, व्यापक हिंसा द्वारा श्रीलंका से निकालने या नामशेष करने का खूनी नाटक चल रहा है।

भारत की इस अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा-हानि का कारण क्या है? भारत की विदेशों में जो प्रतिष्ठा थी वह सैन्य शासन शक्ति के कारण न होकर भारत की महान नैतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही थी। उदार हिन्दुत्व कोई पंथ, संप्रदाय या मजहब न होकर इस देश की चिरंतन संस्कृति है। किन्तु जब हमारे प्रशासक हिन्दुत्व को संप्रदाय कहकर भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन-मूल्यों को सांप्रदायिक कूड़ा-करकट कहकर कूड़ेदानी में फेंक देते हैं, तब न भारत की भावात्मक एकता का आधार बचता है तथा न भारत के जगद्‌गुरुत्व का ऐतिहासिक सम्बन्ध-सूत्र। जिस संस्कृति के उज्ज्वल दीपस्तंभ से अन्य देश प्रकाश पाते थे उसके स्वयं प्रकाशविहीन हो जाने पर पड़ोसी उसे नमस्कार करने के स्थान पर पत्थर ही मारेंगे। संस्कृति को छोड़कर केवल कूटनीतिक सम्बन्ध मात्र रखने से हम सम्मान तो कभी पा नहीं सकते, हाँ, कूटनीतिक दावं-पेंच में कभी-कभी अपमान तो अवश्य पा सकते हैं। राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है। श्रीलंका और भारत के राज्य और राजनीति, दोनों भिन्न हैं। अतः दोनों में स्वार्थों का संघर्ष स्वाभाविक है। किन्तु जिस संस्कृति ने हजारों वर्षों से लंका को भारत का कृतज्ञ शिष्य बनाया है, उस संस्कृति के सम्बन्धों को सजीव एवं सुदृढ़ करने की कोई प्रभावी योजना आज भारत सरकार के पास नहीं है। राजनीति स्वार्थों का अखाड़ा है। संस्कृति उदात्त जीवनमूल्यों की संस्कार परंपरा है। जो सिंहली राजनीतिक विद्वेष में भारतवंशियों को भ्रमवश राष्ट्र शत्रु मानकर उन पर गोलियाँ चलाता है, वही एक भारतीय महापुरुष भगवान बुद्ध के चरणों में अपना तन-मन-धन समर्पित करता है तथा भारतीय तीर्थों की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है। राजनीति काटने वाली कुठारिका है और संस्कृति जोड़ने वाली संजीवनी-सुधा।

अतः पुनः सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने से राजनीतिक स्वार्थों की आंधिया छंट जाने पर पुरानी स्मृतियाँ कौंधेगी तब ये देश पुनः भारत के चरणों में आ सकते हैं। क्योंकि कोई भी देश एकाएक पूर्णतया बदल नहीं सकता। समय पाकर पुरानी स्मृतियाँ जागेगी तब पुनः भारत ही विश्वगुरु के पद पर स्थापित होगा और सारा विश्व सौख्य शांति का अनुभव करेगा। भारत के पास ही वह कर्तृत्व, व्यक्तित्व, वह भाव, वह दृष्टि है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। सुलझे हुए पश्चिम के विचारकों की दृष्टि में भारत ही भावी विश्व की आशा का केन्द्र है।

'धर्म में जीवन का शाश्वत विधान प्रतिष्ठित है।'

—गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकर)

भारत की विदेश नीति

भारत के ऋषियों ने कहा—मम देशो भुवन त्रयम्। अर्थात् तीनों ही भुवन मेरा ही देश हैं। सारे विश्व को परिवार मानने वाले ऋषियों ने घोषणा की—वसुधैव कुटुम्बकम्। विश्व के राष्ट्र अपने ही भाई-बंधु हैं तो इसमें कौन अपना और कौन पराया?

जैसे किसी बड़े परिवार के बंधु-बांधव सब एक ही मकान में न रहकर सुविधानुसार भिन्न-भिन्न भवनों में रहते हैं इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र परस्पर बंधु होते हुए भी देश-काल पात्र, परिस्थिति और सुविधा के विचार से भिन्न-भिन्न भौगोलिक खण्डों में व भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में रहते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न नगरों में बसने वाले बंधु हजारों मील की दूरी के उपरान्त भी बंधु ही रहते हैं, शरीरों की दूरी के उपरान्त भी मन से समीप रहते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के लोग समुद्र पार विदेशों में बसने के उपरान्त भी वस्तुतः बंधु ही हैं।

भारत की विदेश नीति का यह आदर्श सूत्र है। इसलिये युक्ति बुद्धि से अपने राष्ट्र की हितसाधना करते हुए सारे संसार में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना हमारा उद्देश्य है।

वैदेशिक नीति के लिये अंग्रेजी शब्द है—Diplomacy नीति व्यवहार, चातुरी। इसका प्रायः अर्थ माना जाता है चालाकी। इसमें ऊपर से विदेशों के प्रति मित्रभाव दिखाकर भीतर से स्वार्थ साधन किया जाता है। इसी को कूटनीति भी कहते हैं। कूट शब्द का अर्थ ही झूठ या छल है। कूटनीति शतरंज के खेल के समान है जिसमें हमारा दूसरे से व्यवहार में अन्ततोगत्वा मात करना या पराजित करना ही उद्देश्य होता है। पाश्चात्य विदेश नीति की कल्पना यही है। विदेशों में विदेश मंत्री की सफलता का मापदण्ड ही यही है कि कितने देशों को सहायता या सेवा की आड़ में अपने देश की स्वार्थ पूर्ति के लिये उस देश विशेष को और उस देश विशेष से दूसरे देशों को सताना, परस्पर में लड़ाना और अपनी इच्छानुसार नचाना है। इसमें जो सफल होता है वही सफल विदेश मंत्री कहा जाता है। किसी भी सहायता या समर्थन में उनकी चाल निहित रहती है जिससे कभी बाज नहीं आते। एक देश को दूसरे देश से लड़ाते रहना जिससे वे सदैव निर्बल बने रहें, जिससे उस देश पर उनका प्रभुत्व बना रहे और उनकी इच्छानुसार नाचते रहें। अमेरिका और रूस की विदेश

नीति का यही लक्ष्य है। जितनी भी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएं हैं वे उनके स्वार्थ साधन के अखाड़े बने हुए हैं। उदाहरण के लिये भारत को निर्बल बनाये रखने और संघर्षों में उलझाये रखने के लिए अमेरिका का पाकिस्तान को मित्र बनाना आदि।

भारत ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार वैदेशिक नीति के द्वारा विश्व कल्याण की साधना की। भारत ने अपने इतिहास के विभिन्न चरणों में कभी भी न तो किसी देश की स्वतन्त्रता पर डाका डाला, न तो अर्थ पर, न धर्म पर, न सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस किया और न ही अर्थिक सहायता या सैनिक सहायता के माध्यम से किसी भी देश का किसी भी प्रकार का शोषण किया। विश्व के भूतल पर कोई भी देश, जो अपने राष्ट्र के हित को साधते हुए, उसको खंडित नहीं करते हुए सदैव शांति का प्रहरी बना रहा तो इस अर्थ में भारत विश्व को मार्गदर्शन देता रहा है। अपने राष्ट्र का अहित न हो और विश्व का कल्याण हो, ऐसी साधना हमारी प्रथम से रही है। हाँ, हम अपने राष्ट्र का अहित करके विश्व का मंगल नहीं चाहते। हम अपने राष्ट्र का हित-साधन करते हुए विश्व हितसाधना में सतत कर्मरत हैं। इसलिये भारत जब अपने विषय में सोचता है तो विश्व की समस्याओं को भी अपने समक्ष रखता है।

आदर्श विदेश नीति सभी दूसरे देशों को अपने समान मानकर चलती है। वह दूसरों पर आधिपत्य या प्रभाव या दादागीरी जमाकर नहीं चलती। हम जब दूसरों का सम्मान करते हैं तब वे भी हमारा सम्मान करते हैं। यदि हम अजातशत्रु हैं तो हमें संसार भर में मित्र ही मित्र दिखाई देंगे।

विदेश नीति में हम न अपना सम्मान खोवें न दूसरों के सम्मान का हनन करें। अमेरिका तथा रूस, दोनों अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत अपनी आर्थिक सहायता या सैनिक सहायता या सन्धियों द्वारा दूसरे देशों को अपना पिछलग्गू बनाकर रखना चाहते हैं।

पं. नेहरू ने अपनी विदेश नीति में भारत को अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में लाकर भारत को 35 अरब के विदेशी ऋण के नीचे दबा दिया। इतने बड़े ऋण को चुकाना भारत के लिये कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। इसके बदले देश की इज्जत या स्वाधीनता बिक सकती है।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने विदेश नीति में रूस के प्रभाव क्षेत्र में आकर देश पर रूसी लोगों का वर्चस्व बढ़ा दिया। भिलाई, बोकारो, H.S.C. रांची, पतरातू आदि में सर्वत्र रूसी प्रभाव है। भारत का धन विदेशों की जेब में जाता है।

टेक्निशियन Expert के नाम पर मोटे वेतन भी देने पड़ते हैं, उनकी मशीनें खरीदनी पड़ती हैं तथा वे भारत में प्राप्त राशि से कम्युनिज्म का खुला प्रचार-प्रसार भी करते हैं।

सफल विदेश नीति अपने राष्ट्र की अखण्डता नष्ट नहीं होने देती। दुर्भाग्य से हमारी चीन के प्रति नीति असफल रही। उसने तिब्बत को खा लिया। हमने पंचशील पर हस्ताक्षर किये वही हमारे लिये पंचशूल बन गया। भारत की 16000 वर्गमील भूमि अभी तक चीनी दरिंदों के पांव के नीचे पड़ी है। पाकिस्तान ने कश्मीर की 30,000 वर्गमील भूमि दबा रखी है। बसवाड़ा और कच्छ के रण में हमने पुनः देश की भूमि गंवाई है।

सफल विदेश नीति की मांग है कि हम न दूसरों को ठगें और न दूसरों से हम ठगे जावें। हमें चतुर-चालाक तो रहना चाहिये किन्तु छली नहीं होना चाहिये। इस दृष्टि से भी विगत 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन में हम बार-बार ठगे गये। तिब्बत के मामले में हम ठगे गये। कश्मीर के मामले में हम ठगे गये। ताशकन्द के समझौते में हम बुरी तरह ठगे गये।

पड़ोसी छोटे देशों से सम्बन्ध ऐसे होने चाहिये थे कि वे भारत जैसे महान् देश को अपना स्वाभाविक नेता मानते। पर स्थिति बनी है ठीक इसके विपरीत। नेपाल, भूटान, लंका, बर्मा सभी उलटे भारत पर पाद प्रहार करने लगे।

जनता सरकार ने विदेश नीति को पुनः सुधारा है। विदेश मंत्री थोड़े काल में ही अनेक देशों की यात्राओं पर जा चुके हैं। वे प्रायः कहते हैं—हम भूमि से अलग-अलग एवं बंटे हुए बेशक हैं किन्तु हमारे हृदय बंटे हुए नहीं हैं। अन्य देशों के हृदयों को स्पर्श कर उनके हृदय से बात करना एक सफल विदेश नीति का लक्षण है।

भारत संस्कृति का दिव्य मन्दिर है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत जगद्गुरु है। अतः अन्य देशों पर राजनीतिक वर्चस्व बनाने की अपेक्षा अपनी संस्कृति की सुधा सब देशों को पिलाना एक महान् आदर्श है।

राजनीतिक वर्चस्व द्वारा दूसरे देशों को गुलाम बनाते हैं पर संस्कृति के प्रकाश द्वारा हम उन्हें मुक्ति का आनन्द बांटते हैं।

राजनीतिक हस्तमिलाप (Hand shake) केवल स्वार्थ पर आधारित होता है तथा आज का राजनीतिक हस्तमिलाप कल के राजनीतिक घूसे में बदल सकता है। पर सांस्कृतिक हस्तमिलाप युगों तक दो राष्ट्रों को मित्र बनाकर रखता है। अतः विदेश नीति में अन्य देशों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान परम लाभकारी होता है। विदेश मंत्री एवं राजदूतों को संस्कृति का ज्योतिघर बनकर प्रकाश फैलाना चाहिये। भिन्न-भिन्न देशों में परस्पर बहुत सी भ्रान्तियाँ एक-दूसरे के निकट जाने पर दूर होती हैं।

When you look into the eyes of a foreigner you discover that he is a brother.

इस प्रकार सफल विदेश नीति द्वारा विश्वशांति स्थापित हो सकती है।

पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि

सृष्टि है, उसका कर्ता परमेश्वर है तो उसका विधान सृष्टि के समय से ही प्रकट है। उसे अपौरुषेय वेद कहते हैं।

मनुष्य जन्म से तीन ऋणों को लेकर आता है—देव ऋण, ऋषि ऋण एवं पितृ ऋण। भारतीय संस्कृति कृतज्ञता की संस्कृति है। कर्तव्य प्रधान, त्याग प्रधान, अहिंसा, करुणा, मैत्री, रागप्रधान, अतः शांति प्रधान संस्कृति है।

काम या कामना बुरी नहीं है 'एकोऽहम् बहुश्याम' में आद्य काम पड़ा हुआ है। धर्मानुकूल काम स्वयं ईश्वर का स्वरूप है।

प्रकृति जड़ नहीं है यह ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति है अतः विराट सत्ता है, मां लक्ष्मी है।

सृष्टि में मनुष्य इस अर्थ में श्रेष्ठ है कि वह अपना सर्वोच्च विकास यानी नर से नारायण बन सकता है और चूंकि वह विवेकी है अतः उसका दायित्व है कि सृष्टि का संतुलन बना रहे और सभी को उसका पोषण प्राप्त हो, सब का योगक्षेम वहन हो। इसलिए पंच महायज्ञ यथा ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, नृयज्ञ और भूत यज्ञ का विधान है।

जीव, जगत् व ईश्वर एक ही ब्रह्म का पसारा होने से तीनों में तात्त्विक एकता है। सृष्टि का प्रत्येक अंग परस्पर पूरक, परस्पर सम्बन्धित एवं परस्पर अवलम्बित है।

संसार के सात अरब लोग, इससे 100 गुणा अधिक पशु-पक्षी और हजारों गुणा अधिक अन्य जीव-जीवाणु, कीट-कीटाणु प्रतिदिन श्वसन क्रिया से विषैली गैस छोड़ते हैं। यदि ये विषैली गैसें वायुमण्डल में ही रहे तो सारी मानव-जाति एक दिन में ही मर जाएगी। एक बंद कमरे के भीतर चार व्यक्तियों द्वारा रात्रि भर में छोड़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन गैस से इन चारों की दम घुट कर मृत्यु हो जाती है। शरीरों से निकलने वाली विषैली गैस के अतिरिक्त करोड़ों चूल्हों की गैस, लाखों मिलों और फैक्ट्रियों की विषैली गैस, गाड़ियों, मोटरों, ट्रकों की गैसों से जो वायुमण्डल दूषित होता है उसमें एक दिन भी जीना दूभर हो जाए। किन्तु सृष्टियज्ञ के कर्ता यज्ञ-भगवान् ने असंख्य-असंख्य जंगल के वृक्ष

एवं पेड़-पौधे बनाए हैं जो प्राणियों के शरीर से छोड़ी हुई विषैली गैसों को पी जाते हैं और वायुमण्डल को शुद्ध करके शुद्ध ऑक्सीजन मानव-जाति को प्रतिदिन-प्रतिपल बिना मूल्य के दान करते रहते हैं।

इस प्रकार जीव जगत् और वनस्पति जगत् एक-दूसरे पर अवलम्बित, एक-दूसरे पर निर्भर एक-दूसरे के पूरक एवं रक्षक हैं। 33 प्रतिशत जंगल रहने चाहिए। वृक्ष मेघ और वर्षा को आकृष्ट करते हैं, मिट्टी-कटान को रोकते हैं। लिबीया ने जंगल की भूमिका एवं महता को न समझते हुए उसे अनावश्यक समझकर काट डाला। परिणामस्वरूप वहां वर्षा बंद हो गई। अनुसंधान करने पर भूल का पता चला और कृत्रिम जंगल खड़े करने पड़े। चीन ने कबूतरों को अनावश्यक जानकर मारकर खा गए। इसका परिणाम हुआ कृषि कीड़ाग्रस्त हो गई। शोध करने पर पता चला कि कबूतर कीड़ों को खा जाता है। अतः कृषि की रक्षा के लिए दूसरे देशों से कबूतर मंगाकर पालन करना पड़ा। इस प्रकार सृष्टि का प्रत्येक अवयव प्रत्येक से जुड़ा है। इसी के द्वारा सृष्टि संतुलित रहती है, स्वस्थ एवं प्रसन्न रहती है।

सृष्टि में जो भी चर-अचर है एक ही विराट सत्ता का अभिन्न अंग है। अतः सृष्टि के किसी भी अंग पर प्रहार एवं शोषण स्वयं पर प्रहार है एवं शोषण है।

आज का विज्ञान भी तमाचे पर तमाचा सहता हुआ इसे स्वीकार कर रहा है सहभागी ब्रह्माण्ड की बात One integral whole interconnected, interdependent, interrelated है। इसलिए आज का वैज्ञानिक शनैः शनैः मन्द-मन्द स्वर में अद्वैत दर्शन के अनुसार जगत् के बारे में बोलने लगा है। सोचने लगा है, उसी के अनुसार वह जीवन तंत्र को समझने लगा है। जगदीशचन्द्र बोस का स्मरण कर लेवे । उन्होंने कहा—हमारे पुरखों ने गंगा किनारे बैठ करके जिसका दर्शन किया था मैंने उसी को प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया। तो एक अखण्ड चिद-जड़ कैसे हो जाता है। एक अखण्ड अहम्-इदम् कैसे हो जाता है। अहम्-इदम्, इदम्-अहम् होता-होता सारा विविधता पूर्ण जगत् उत्पन्न हो जाता है। नाम रूपात्मक जगत् उत्पन्न हो जाता है।

फ्रिटाजाफ केपरा अपनी पुस्तक 'द ताओ ऑफ फिजिक्स में कहते हैं—एक बहुत ही सुन्दर अनुभव ने मुझे यह पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया। वे चिन्तन कर रहे थे—नाभिकीय कण....सूक्ष्म नाभिकीय कण न्यूट्रोन-इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, सैकड़ों नाभिकीय कण....उनका चिंतन जारी था पदार्थ ऊर्जा में, ऊर्जा पदार्थ में रूपान्तरित हो रही है। उस समय केपरा समुद्र के किनारे लेटे हुए थे। हलकी-हलकी धूप थी और उस समय उन्होंने देहातीत अवस्था का अनुभव किया और उनका शरीर सौर ऊर्जा बन रहा है और सौर ऊर्जा उनका शरीर बन

रहा है। और उन्होंने एक अद्‌भुत अद्वितीय आनन्द का अनुभव किया और उन्होंने निष्कर्ष निकालते हुए कहा—यह निश्चय ही भगवान् शिव का नृत्य ही है।

नाभिकीय भौतिक शास्त्री इरविंग श्रोडिंजर लिखते हैं—चेतना की अनुभूति विविध रूप में कभी नहीं होती यह केवल अखण्ड रूप में ही होती है। चैतन्य अखण्ड ही होता है, बाहर दिखाई देने वाला वैचित्र्य उसी ब्रह्म की एक शृंखला है। उसी ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति की माया कहते हैं।

यूजीन विंगर लिखते हैं—चैतन्य के ज्ञान के बिना प्रमात्रा के सिद्धान्त के नियमों को पूर्ण सुसम्बद्धता के साथ प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

अब इनको लगने लगा कि जब तक आब्जर्वर की चेतना को ऑब्जर्वेशन के साथ में एक पेरामीटर (आयाम) की तरह नहीं लिया जाएगा तब तक ऑब्जर्वेशन पूर्ण नहीं होगा।

अब विज्ञान भी एक कास्मिक इन्टैलेक्ट, एक कास्मिक माइण्ड की बात करने लगे हैं।

पर वैज्ञानिक इस तात्त्विक ऐक्य को किसी उपकरण द्वारा या प्रयोग द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते और न अनुभव में ला सकते हैं। क्योंकि यह अद्वैत तत्त्व मन-वाणी-इन्द्रिय से परे हैं। इस ऐक्य की अनुभूति के लिए वेद के प्रमाण को स्वीकारना पड़ेगा, अद्वैत तत्त्व का वरण करना होगा। उस परमेश्वर के विधान को, शाश्वत धर्म स्वीकारना पड़ेगा।

स्पष्ट विज्ञान स्वीकारने लगा सम्पूर्ण बायोस्फीयर एक लिविंग ओरगेनिज्म है, विराट सत्ता है, नारायण की वधू है और वह भाव-विभोर होकर घूम रही है। इस प्रकार विज्ञान अद्वैत मत के निकट आता जा रहा है।

इसलिए जहां-जहां हमने ईश्वर की विशेष विभूति देखी उसके साथ आत्मीय रिश्ता जोड़ा—इसलिए गाय पशु नहीं माता है, बैल पिता है, तुलसी का बिरवा झाड़ नहीं माता है। गंगा-जमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी आदि नदियां नहीं हमारी माता है, हिमालय पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय है, धरती माता है, विष्णु पत्नी है, अम्बर पिता है आदि आदि। इन सबके प्रति पूज्यभाव, श्रद्धा और सेवा का भाव रखते हुए इनसे पोषण पाने के अधिकारी हैं शोषण के नहीं। इसलिए प्राचीन व मध्य भारत में कभी भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या खड़ी नहीं हुई लाखों वर्षों के इतिहास में।

ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र की पहली पंक्ति है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

विश्व में जो कुछ भी है, सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है। इसमें चार बिन्दु हैं—(क) सब कुछ ईश्वर का है। (ख) सब कुछ ईश्वर द्वारा निर्मित है। (ग) सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है। (घ) सब कुछ ईश्वर में ही हैं।

इस मंत्र की दूसरी पंक्ति है—त्येन, त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यविद धनम्।।

इस दूसरी पंक्ति में दो बात है—उस परमेश्वर के लिए समर्पण करके त्याग पूर्वक विषयों को भोगों। किसी के धम के प्रति लोभ की दृष्टि मत रखो। पर्यावरण की रक्षा के लिए कितना सुन्दर मंत्र है जिसे विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के दादाजी द्विजेन्द्र नाथ इस मंत्र को पढ़कर मंत्रमुग्ध हो गए और उनके जीवन की दिशा बदल गई और अंग्रेजियत से भारतीयता में आ गए। वे जमींदार थे। बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों का दान कर दिया।

यह मंत्र पुकार-पुकार कर कह रहा है—हे मनुष्य तुम त्याग पूर्वक भोग करो। अपने पास अतिरिक्त संचय मत करो, लोभ में अंधे मत बनो। धन किसी का हुआ नहीं है। पर्यावरण की रक्षा के लिए इससे अच्छा मंत्र क्या हो सकता है। गांधीजी कहते हैं, हिन्दू धर्म के सभी ग्रन्थ नष्ट हो जाए और केवल यही एक मंत्र बचा रह जाए तो भी भारतीय संस्कृति की रक्षा हो जाएगी। ट्रस्टीशिप का भाव भी इसी मंत्र से निःसृत होता है जो कुछ सम्पत्ति हमारे पास है उसके मालिक हम नहीं प्रभु हैं हम तो प्रयोग के अधिकारी हैं जितनी की हमें आवश्यकता है। बाद बाकी के हम रक्षक हैं समाज के व्यापक उपयोग के लिए।

श्रीमद् भागवत में एक बहुत सुन्दर श्लोक आया है—

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्यते स स्तेनो दण्डमर्हति।।7/14/8

जितने अन्न से उदरपूर्ति हो जाए और जितने वस्त्र से तन ढक जाए शीत-उष्ण का निवारण तथा शीलस्नेहादि की रक्षा हो जाए, मनुष्य का अधिकार अपने लिए उतनी ही सम्पत्ति पर है। शेष धन पर अपना एकाधिकार मानने वाला परस्वत्वायहारी होने के कारण स्तेन (चोर) है। वह दण्डाधिकारी के द्वारा दण्ड पाने योग्य है।

स्पष्ट है मानव धन का स्वामी नहीं केवल प्रयोक्ता या न्यासी (Trustee) है—मानव अपने जन्म के समय एक कौड़ी लेकर आता नहीं और मृत्यु के समय एक कौड़ी ले जा सकता नहीं। अतः वह संसार की किसी भी निधि का स्वामी नहीं। प्रभु अतीव कृपा करके, प्रभु उस पर विश्वास Trust करके धन या अन्य निधियों को प्रयोग के लिये देते हैं जिससे व्यक्ति समाज, परिवार, राष्ट्र और विश्व के बड़े-से-बड़े कल्याण के लिए सदुपयोग कर सके इसलिए मानव केवल Trustee है। ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति न बेकार जानी चाहिये और न दुरुपयोग होना चाहिये। ईश्वर की सम्पत्ति को अपना कहना विश्वासघात (Breach of trust) है।

अर्थ, व्यर्थ, अनर्थ एवं सार्थ—धर्मविहीनं अर्थमनर्थम् (धर्म के बिना अर्थ अनर्थ है)।

यज्ञविहीनं अर्थं व्यर्थम् (समाज कल्याण के बिना अर्थ व्यर्थ है)।

धर्मार्पितं धनधान्यं धन्यम्।

यज्ञार्पितं हि द्रव्यं दिव्यम्।

वेद में कहा गया है परमेश्वर ने यज्ञ भाव से अपने आपको समर्पित करके अपनी आहुति देकर सृष्टि की रचना की। और यज्ञ भाव से ही सृष्टि चल रही है इसका प्रतिपादन गीता के तीसरे अध्याय के 10वें श्लोक से 16वें श्लोक तक में बहुत सुन्दर यज्ञ चक्र के रूप में हुआ है। 16वें श्लोक में भगवान कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजाओं को रचकर (उनसे) कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ (और) यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला हो। 16वें श्लोक में भगवान कहते हैं। जो मनुष्य इस लोक में इस प्रकार चलाये हुए सृष्टि चक्र (यज्ञ चक्र) का अनुवर्तन नहीं करता वह सुखों में रमण करने वाला पापायु (पापमय जीवन बिताने वाला) व्यर्थ हो जाता है।

सृष्टि लेन-देन के आधार पर ही संतुलित रहती है। हमारे दैनिक जीवन-यापन से जो क्षति होती है। इसकी पूर्ति के लिए वैदिक सनातन धर्म पंच महायज्ञों का विधान करता है जो हमारे हिन्दू जीवन का एक अनिवार्य अंग है जो इस प्रकार है—ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, नृयज्ञ, भूत यज्ञ

ब्रह्म यज्ञ—इसमें ब्रह्म ज्ञान गर्भित ग्रन्थों का पठन-पाठन एवं स्वाध्याय ही ब्रह्म यज्ञ, ज्ञान यज्ञ अथवा ऋषि तर्पण यज्ञ कहा जाता है। हमारे दैनिक जीवन में जीवन यापन के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। और सभी ज्ञानों की प्रतिष्ठा स्वयं ब्रह्म है। यह ज्ञान हमें ऋषि परम्परा से प्राप्त होता है। अतः स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान को सुरक्षित रखना और संवर्द्धित करना ब्रह्म यज्ञ है।

देव यज्ञ—हमारा जीवन देव शक्तियों की कृपा पर निर्भर है। देव शक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए अग्निहोत्र कहलाता है।

पितृ यज्ञ—हमें शरीर और उसका पालन-पोषण और जीवन-यापन की योग्यता माता-पिता की कृपा और उनकी सेवा से प्राप्त होता है। अतः माता-पिता की जीवित काल में उनकी श्रद्धा भाव से सेवा सुश्रूषा करना, गत होने पर पितृ पक्ष में उनके लिए श्राद्ध करना। श्राद्ध उनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता

समर्पित करना है, उनके जीवन की प्रेरणाओं और आदर्शों के स्मरण कर जीवन में धारण करना है। और प्रजातंतु को खण्डित न करते हुए समाज को योग्य संतान देना है।

नृयज्ञ—हमें अपने जीवन-यापन के लिए अनेकों से सहयोग प्राप्त होता है। इसके बिना हमारा जीवन असम्भव होता। इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए मानव जाति के हित के लिए नृयज्ञ किया जाता है। इसका दूसरा अतिथि सत्कार यज्ञ भी है।

भूत यज्ञ—हमें अपने जीवन-यापन के लिए चराचर सृष्टि से सहयोग, सेवा, आत्मीयता प्राप्त होती है। इसलिए चराचर का योगक्षेम वहन हो इस दृष्टि से अपनी योग्यतानुसार सेवा देना है। गऊ को ग्रास देना, चींटियों को आटा देना, पक्षियों को दाना डालना, पशुओं के पीने के लिए पानी की व्यवस्था करना, मछलियों को आटे की गोलियां डालना, पशु-पक्षियों की रक्षा, गोशाला, अश्वशाला बनवाना, उनमें रोगों के निवारण हेतु औषधालय, पशु चिकित्सालय, पक्षी चिकित्सालय चलाना आदि भूतयज्ञ के पवित्र कर्म हैं।

इस प्रकार पंच महायज्ञ के पालन के द्वारा सृष्टि संतुलित और सुरक्षित रहती है। पंच महायज्ञ के पालन से न तो किसी को अर्थ का अभाव होता जिससे उसके जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाए। न अर्थ का किसी पर प्रभाव होता है जिससे उसका जीवन अकड़ जाए, अभिमानी हो जाए। यज्ञ एवं दान के द्वारा अर्थ जरूरतमंदों में वितरीत हो जाता है। इस प्रकार यज्ञ एवं दान द्वारा अर्थ समाज में वितरित होने से समाज संतुलित और स्वस्थ रहता है। इसलिए गीता में भगवान् कहते हैं ज्ञानी भी यज्ञ, दान, तप का कभी त्याग न करें। यह मनीषियों को भी पवित्र करने वाला है। दान और तप यज्ञ का ही हिस्सा है।

फिर प्रकृति के साथ हमारा सम्बन्ध माता-पुत्र का है, अतः प्रकृति माता से पालना पाने के अधिकारी हैं भोग के नहीं। अपने द्वारा प्रसवित सभी की प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति की क्षमता प्रकृति माता में है पर एक की भी इच्छापूर्ति की नहीं। आवश्यकता सीमित होती है, इच्छाएं अनन्त होती हैं।

प्रकृति से हमारी माता का सम्बन्ध, धरती से हमारी माता का सम्बन्ध नित्य व्यवहार का सम्बन्ध है। हिन्दू प्रातः उठते ही धरती मां को क्षमा याचना पूर्वक प्रणाम करता है।

समुद्रवसने देवि पर्वत-स्तन-मण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

पृथ्वी को हमने एक देवी के रूप में अनुभव किया। एक देवी है, पर्वत इसके

स्तन हैं और समुद्र इसके वसन हैं, यह विष्णु की पत्नी है। विष्णु, जो एक व्यापक चिन्मय तत्त्व है।

आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं—हमारा जैव-मण्डल एक विराट् जीवित प्राणी की तरह है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि जब-जब पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ जाता है तब-तब पृथ्वी गाय का रूप लेकर विष्णु भगवान् के पास जाती है। गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी है और गाय भी है। पृथ्वी गाय का रूप लेकर जाती है तो भगवान् विष्णु पृथ्वी पर होने वाले अत्याचार को दूर करने हेतु अवतार लेकर आते हैं।

स्नान के समय पवित्र नदियों को स्मरण करता है—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे-सिन्धु-कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरू।।

हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी आदि पुण्यतीर्थ। आप इस जल में आकर रहें। स्नान करके सूर्य भगवान् को अर्घ्य देता है, तुलसी जो विष्णु प्रिया है को सींचता है, अश्वत्थ-पीपल जिसमें वासुदेव का वास है को सींचता है। बेल पत्र जो शिवजी को प्रिय है को चढ़ाकर शिवजी का जल से अभिषेक करता है। रसोई में पहली रोटी गाय के लिए, अन्तिम रोटी कुत्ते के लिए पकती है, चींटी को आटा देता है, कबूतर एवं चिड़ियों को चुगा (दाना) देता है, नाग-पंचमी को सांप को दूध पिलाता है। प्रत्येक शनिवार को चील को पकोड़ी खिलाता है। पशु-पक्षी के लिए जल की व्यवस्था करता है। गाय के लिए चारे की व्यवस्था करता है। पशु हमारे देवी-देवताओं के वाहन हैं, सहयोगी हैं, सहचर हैं, अतः हमारे लिए पूज्य हैं। मत्स्य कूर्म वराह, नरसिंह अवतार है, बन्दर-भालू प्रभु राम के सहयोगी, सहचर है, सैनिक है, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं गोपालक हैं, भगवान् बुद्ध करुणावतार हैं सभी जीवों पर कृपा करने वाले हैं। और जैन तो जीवों पर व्यापक कृपा करने वाला दर्शन है। हम मकान बनाने के पूर्व भूमि पूजन करते हैं, गृह प्रवेश के पूर्व पुनः पूजन करते हैं। हम किसी भी वस्तु को काम में लेने के पूर्व उसकी पूजा करते हैं। विद्यार्थी पुस्तक की, किसान हल की, भूमि की, कारीगर यंत्र की, व्यवसायी व्यवसाय की, उद्योगपति उद्योग की पूजा करता है। भोजन को पहले अग्नि देव को समर्पित कर फिर भोजन को उपयोग में लेते हैं। अतः हिन्दुओं के प्रति दिन के दैनिक व्यवहार में वनस्पति, जीव, जन्तु, पशु, प्रकृति, पंच भूतों एवं उसके कार्यों के प्रति जीवंत आत्मीय रिश्ता है।

हमारे यहां एक भर्तृहरि राजा हुए हैं जो अपनी पत्नी के प्रति बड़े आसक्त थे। पर पत्नी के चरित्र में दोष देखकर वे राज-पाट छोड़कर जंगल चले गए। वे साधक बनकर गए थे, अब सिद्ध हो गए। शरीर छूटते समय भर्तृहरि प्रकृति माता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कह रहे हैं—

मातर् मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जलं
भ्रातर् व्योम निबद्ध एष भवता-मन्त्यः प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्-सङ्ग-वशोपजात-सुकृतोद्रेक-स्फुरन्-निर्मल-
ज्ञानापास्त-समस्त-मोह-महिमा लीये परे ब्रह्मणि।।
(वैराग्य-शतक-74)

हे धरती माता! हे पिता वायु! हे सुबन्धु जल! हे अग्नि सखा! 'सुबन्धोजल' सुबन्धु हे सुबन्धु जल! 'भ्रातर् व्योम' हे भ्राता आकाश! यह मैं हाथ जोड़ करके आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी संगति के कारण उत्पन्न पुण्य की अधिकता से प्रकाशमान ब्रह्म-ज्ञान द्वारा मोह-महिमा को नष्ट कर अब मैं परब्रह्म में लीन होने जा रहा हूँ। हृदय में ब्रह्मज्ञान प्रकट हो गया और मेरा सारा अज्ञान नष्ट हो गया।

प्रत्येक हिन्दू शयन करते समय प्रार्थना करता है—

शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर-ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैक-नाथम्।।

शान्त आकार के, आकाश गंगारूपी शेषनाग पर शयन करने वाले, कमल नाभि वाले देवों के ईश विश्व के आधार आकाश के समान अनंत एवं निर्लिप्त मेघ श्यामल वर्ण वाले, शुभ अंशों वाले लक्ष्मी पति, कमल नेत्र, योगियों द्वारा ध्यान योग्य, भवभयहारी, सर्व लोक के नाथ भगवान् विष्णु की मैं वन्दना करता हूं।

भारत में पर्यावरण सुरक्षा का मंत्र उपनिषद् के शान्ति पाठ के रूप में वेद काल से प्रतिष्ठित है उसका हिन्दू प्रतिदिन पाठ करता है। वह है—

ॐ द्यौः शान्ति-रन्तरिक्ष (गं्) शान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः
शान्ति-रोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्-विश्वे-
देवाः शान्तिर्-ब्रह्मशान्तिः सर्व (गं्) शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

ऐसे ही वायु के प्रति नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि। शांति मंत्र गाते हैं। ऐसे ही आकाश के प्रति 'खम ब्रह्म' का भाव है।

हम सब एक ही ईश्वर की संतान होने से विश्व का हमारा सम्बन्ध भाई-बहन का है, इसलिए हम एक परिवार हैं। विवेकानन्दजी ने शिकागो धर्म सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए Brother-Sister of American कहा और तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूंज उठा था।

इसलिए भारत ने विश्व को ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति, कला-कौशल, धर्म-दर्शन का दान निःस्वार्थ भाव से दिया बिना किसी को हानि पहुंचाए। इसलिए भारत के जो सम्पर्क में आया वह विकसित हो गया, श्रेष्ठ हो गया, संस्कारित हो गया और इस संदर्भ में विश्ववासियों ने अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित की है। स्वयं मुहम्मद पैगम्बर के चाचा अबुल हिकम भारत की, अरब के कवियों की विक्रमादित्य के विषय में, वेद व्यास के विषय में राम-कृष्ण, शिव की स्तुतियां गाते हुए पाते हैं। और पश्चिम के जो सम्पर्क में आता है वह या तो समूल नष्ट हो जाता है यथा मूल अमेरीकावासी रेड इण्डियन्स, अफ्रीकावासी आदि या फिर उनके सम्पर्क में अपनी श्रेष्ठ सभ्यता संस्कृति को त्याग करवा कर उनकी बर्बर हिंसक, संस्कृति थोप दी जाती है। इस संदर्भ में भारत के मुसलमानों एवं ईसाइयों को देखें—जब वे हिन्दू थे तब हमारी तरह सरल, सहज, अहिंसक, देश भक्त थे, अब वे हिंसक, आतंकवादी, अलगाववादी बन गये हैं।

प्राचीन एवं मध्य युगीन भारत ने आर्थिक विकास का जो नमूना स्वीकार किया उस में प्रकृति के पोषक बने, विश्व के जन-जन के सेवक बने। कभी भी किसी के प्रति त्रास का कारण नहीं बने।

जब देश स्वाधीन हुआ था तभी देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने महात्मा गांधी के गांवों को विकास का केन्द्र बिन्दु मानने की उचित सलाह को ठुकराकर पाश्चात्य विकास पथ पर देश को आगे बढ़ा दिया था।

पाश्चात्य विकास पथ केन्द्रीकृत, विपुल ऊर्जाभक्षी, पूंजी बहुल, बेरोजगारी वर्धक, व्यापक पशु हिंसा पर आधारित और प्रकृति विनाशक है।

महात्मा गांधी ने जो भारतीय विकास पथ सुझाया था वह विकेन्द्रित, अल्प ऊर्जाभक्षी, अल्प पूंजी आधारित, रोजगार बहुल और प्रकृति से सुसंगत एवं अहिंसा पर आधारित था। इंग्लैण्ड ने जो अपना विकास किया है एशिया के शोषण के बल पर, वैसा ही विकास भारत का करना हो तो पूरी दुनिया का शोषण करना पड़ेगा ऐसा गांधीजी का स्पष्ट मंतव्य था। क्योंकि इंग्लैण्ड भारत के एक राज्य के समान है। और सारी दुनिया के शोषण पर खड़ा अमेरीका आज लड़खड़ा रहा है।

अतः आज पश्चिम में ही पाश्चात्य विकास पथ को वहां के दूरदर्शी विद्वानों ने चुनौती देना आरंभ कर दिया है और चेतावनी दी है कि प्रकृति के साथ खिलवाड़ बंद नहीं की गई तो समस्त मानवजाति के अस्तित्व पर संकट छा जायेगा।

दुनिया के बाजारों पर कब्जा करने की जो होड़ चली है और अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए मानव संहारक अस्त्रों के भण्डार बनाए जा रहे हैं उसके कारण समूचा विश्वयुद्ध के कगार पर खड़ा दिखाई दे रहा है। एक ठीकरी पड़ने

की देर है और तृतीय विश्वयुद्ध तेजी से भड़क सकता है। और यह युद्ध आणविक होगा जिसमें दुनिया के 200 करोड़ लोग मारे जायेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। पर्यावरण का जो विनाश होगा वह अलग से। पाकिस्तान और चीन के कारण भारत को भी क्षति अवश्य पहुंचेगी।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के हल के लिए पर्यावरणविदों के कितने ही सम्मेलन हुए किन्तु कहीं से भी इस समस्या का हल निकल नहीं पाया। समाधान के लिए आखिरकार सब ने भारतीय चिन्तन की ओर देखा।

बिल क्लिंटन जब राष्ट्रपति थे तो उनके साथ में अलगोर थे। इस समय दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग के बारे में सर्वाधिक इनिशिएटिव लेकर प्रचार करने वाला कोई व्यक्ति है तो वह अलगोर हैं। अलगोर उस समय उपराष्ट्रपति थे और वहां पर पृथ्वी सम्मेलन हुआ था। उस पृथ्वी सम्मेलन के उद्घाटन में अलगोर ने एक वाक्य कहा था कि पिछले तीन सौ सालों से हम लोग गलत मार्ग पर चल रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम पुनर्चिन्तन करें और मार्गदर्शन के लिए पूर्व की ओर मुड़ें। इस समय और इस दिशा में जाना है तो होलिस्टिक थिंकिंग का जो कॉन्सेप्ट, जो मदर, अर्थ धरती माता का कॉन्सेप्ट भारत ने बहुत पहले दिया है, उसे अपनाएं। उस कान्फ्रेंस में अथर्ववेद का जो भूमि सूक्त है वह दुनिया के इकोलोजी के लोगों के लिए मास्टर प्रिन्ट हो सकता है, उसका अंग्रेजी अनुवाद सबको दिया गया। सबने कहा कि इसमें हमने जो कुछ सोचा वह सब कुछ है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। गीता के तीसरे अध्याय में श्लोक 10 से 16 तक जो यज्ञ चक्र दिया हुआ है। वह सहायक सिद्ध होगा। जो परिदृश्य खड़ा हुआ है इसमें आदमी को लगता है कि हमें कहीं इधर आना पड़ेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

स्पष्ट है भविष्य में विश्व को शांति मंत्र देने का कार्य भारत को ही करना होगा क्योंकि केवल भारत के पास ही वह आध्यात्मिक दृष्टि है, तत्त्वज्ञान है जो मनुष्य, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि में एक ही आत्मा का अस्तित्व देखता है और इसलिए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभागभवेत्' की उदघोषणा कर सकता है।

पर्यावरण के प्रति पश्चिम की दृष्टि

पर्यावरण पर पश्चिम की अवधारणा बाइबिल पर अवलम्बित है।

आदम-हौवा ने निषिद्ध फल खाया और शापित होकर स्वर्ग से च्युत हुए। स्वर्ग में बिना परिश्रम के सारा उपभोग प्राप्त था।

शापित होने पर पृथ्वी पर सश्रम उपभोग प्राप्त होगा।

सारी प्रकृति और उसमें वास कर रहे सब जीव-जन्तु यहां तक कि स्त्री भी नर के उपभोग के लिए है। स्त्री की, हौवा की उत्पत्ति ही आदम के एकाकीपन को दूर करने के लिए हुई, उसके मनोरंजन के लिए हुई। उसमें प्राण या आत्मा नहीं है। और वह नर की सेवा के लिए है। चूंकि वह सेवा के लिए है अतः पादरियों के कहे अनुसार चलना चाहिए। पादरियों के कहे अनुसार सेवा न प्रस्तुत करने पर उन्हें चुड़ैल घोषित कर निर्मम ढंग से मारा जाता रहा पांच सदी तक लाखों की संख्या में।

प्रकृति अपने वैभव को, भोग को छिपाये रखती है, उससे संघर्ष कर उसे छीनना पड़ता है। उसके नख और दांत रक्तरंजित हैं। मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध शत्रुता का है, संघर्ष का है। इस पर विजय प्राप्त कर इससे भोग प्राप्त कर सकते हैं।

सारी प्रकृति एवं जीव-जन्तु निर्जीव हैं। स्वचालित यंत्र है।

प्रकृति हमारी जननी नहीं दासी है, वरेण्या या पूज्या नहीं भोग्या है। इसके प्रति किसी कर्तव्य का विधान बाइबिल नहीं करती। इनके यहां 'पैगन' प्रकृति पूजा गाली है बड़ा अपराध है। इसी आधार पर कितनी सभ्यता-संस्कृति को नष्ट कर दिया पैगनवादी कह कर। ये असभ्य बर्बर घृणित जुगुप्सा जगाने वाली प्रथा पाले हुए हैं। अतः नष्ट होने योग्य है।

God ने मनुष्य को अपने अनुरूप रचा है इसलिए भी वह श्रेष्ठ है और सारी सृष्टि के उपभोग का अधिकारी है।

इस संदर्भ में भारतीय दृष्टि यह है कि मनुष्य इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि उसे ही विवेक की शक्ति प्राप्त है, उसे जो योनि प्राप्त है इसमें वह अपना सर्वोच्च

विकास कर सकता है, आगे की यात्रा या पूर्णता की यात्रा कर सकता है। इसी दृष्टि से मानवयोनि श्रेष्ठ है व विवेकी है अतः प्रकृति का संतुलन बनाये रखना और सभी के पोषण का दायित्व उसका है न कि निरा उपभोग का। मनुष्य भी सृष्टि के अन्य अवयवों की तरह एक अवयव मात्र है। अतः उपभोग को संतुलित बनाये रखने का दायित्व उसका है।

ईसा God की इकलौती संतान है जो उसे अपना व्यक्तिगत त्राता, मुक्तिदाता नहीं मानता वह Hidden है, नरकगामी है, शैतान प्रेरित है, राक्षस प्रेरित है, मूर्ति पूजक है, पेगनवादी है, बहुदेववादी है। अतः निर्मम ढंग से दण्ड का, वध का पात्र है। मूर्तिपूजक, प्रकृतिपूजक, बहुदेववादी इनके यहां सबसे बड़ी गाली है, सबसे बड़ा अपराधी है। इसने अपने से भिन्न समाजों को निर्मम ढंग से शोषण की प्रेरणा दी, वध की प्रेरणा दी। बाइबिल घोर द्वैतवादी है।

इन सब बातों का प्रभाव पाश्चात्य दर्शन पर पड़ा। वहां का दर्शन बाइबिल की दासी रहा है, बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन सम्भव नहीं था—

प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रांसिसि बेकन कहते हैं—प्रकृति जड़ व अंधी है। अपने रहस्य को, धन को छिपाए रखती है, इससे भोग प्राप्त करने के लिए छीनना पड़ता है। प्रकृति स्त्री के समान है जिससे रहस्य उगलवाने के लिए बलपूर्वक उसकी बांह को मरोड़ना आवश्यक है।

देकार्ते ने यांत्रिकी नियमों की सर्वोपरिता पर बल देते हुए क्रिश्चियन अवधारणा की पुष्टि की है कि चेतना केवल मनुष्य में है। प्रकृति जड़ है उसके नियम यांत्रिक हैं। पशु-पक्षी आदि मानवेतर प्राणी जगत् भी चेतना से रहित हैं, वे स्वचालित यंत्र की भांति हैं। उनके व्यवहार में जो चेतना एवं बुद्धि की झलक मिलती है एक जटिल यंत्र की यांत्रिक प्रतिक्रिया मात्र है। इसके द्वैतवाद ने प्रकृति के निर्मम शोषण की प्रेरणा दी है।

न्यूटन—सारी सृष्टि स्वचालित यंत्र है जो कार्य-कारण की श्रृंखला से बंधी हुई है उसमें कोई ईश्वरीय चेतना का हाथ दृष्टिगोचर नहीं होता।

डार्विन—योग्यतम को ही जीवन जीने का अधिकार है। योग्यतम को प्रकृति चुन लेती है। और सब नष्ट हो जाते हैं।

विकास कुछ विशिष्टजनों का ही होता है अन्य दुर्बल एवं पिछड़ों को उनके विकास के Tool (औजार) बन जाना चाहिए। अपने हितों, स्वार्थों व सुखों का बलिदान देकर भी उनके लिए अपनी सेवा समर्पित करनी चाहिए। उसी में उनके जीवन की सार्थकता है।

नीत्शे का Superman की भी ऐसी अवधारणा है जिसमें Superman के विकास के लिए अनेकों को अपना बलिदान देना आवश्यक है।

इन्हीं सिद्धान्तों से उपजा White men burdon श्वेतों को, अश्वेतों को, असभ्यों को सभ्य करने का दायित्व वहन करना पड़ रहा है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने भी इन विचारों को पोषण दिया। पाश्चात्य अर्थशास्त्र एवं मार्क्सवाद तीन मान्यताओं को लेकर चलता है। हर मानव स्वार्थी है। जीवन का लक्ष्य अर्थ ही है तथा अर्थशास्त्र के व्यापार पर नैतिकता या धर्म या शास्त्र का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इन तीनों मान्यताओं का तार्किक निष्कर्ष लंदन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. बेन्हम के उस ग्रंथ Economics of Prostitution में मिलता है, जिसमें वे कहते हैं कि एक माता या पत्नी मिलकर जितना कार्य करती हैं वह दो नौकरानियां मिलकर कर सकती हैं। इसलिए एक माता व पत्नी का आर्थिक मूल्य लगभग 50 पौण्ड है। उसकी तुलना में एक वेश्या उससे 100 गुणा अधिक राशि प्रतिमाह कमा लेती है, इसलिए शुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से एक वेश्या का कार्य माता या पत्नी के कार्य से अधिक लाभकारी है।

एडमस्मिथ—भलाई करने का प्रयत्न मत करो। भलाई को सह-उत्पादन के रूप में प्रकट होने दो। अर्थात् भलाई तभी करो जब तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध हो।

लार्ड काईन्स—एक शताब्दी तक हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि बुराई ही परिणामकारी है, इसी के आधार पर हम गरीबी की अंधेरी सुरंग से निकलकर प्रकाश का दर्शन कर सकेंगे।

इन सिद्धान्तों ने भी प्रकृति के अंध शोषण को प्रश्रय दिया। अन्य मानव सभ्यताओं के अंध शोषण को जन्म दिया।

यूरोप का मध्ययुग तो ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग माना जाता है। क्योंकि पादरियों की यह मान्यता थी कि ईसा से पहले जो कुछ भी दुनिया में ज्ञान-विज्ञान था वह ईसा के आने के बाद व्यर्थ हो गया। इसलिए अब केवल ईसा के उपदेशों को ही पढ़ने की जरूरत है एवं चर्च के आदेशों के पालन की आवश्यकता है। बाइबिल पढ़ने का भी अधिकार केवल उच्च वर्गों व पादरियों को था। ईसाइयत के नाम पर पादरियों ने अपने समाज को दुनिया एवं ईसा के पूर्व के अपने देश के भी ज्ञान-विज्ञान से वंचित कर दिया। यूरोप के देशों में स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी जो पुरानी परम्परा थी वह भी धीरे-धीरे लुप्त हो गई। इस प्रकार यूरोप का मध्ययुग अंधकार का युग कहा जाता है।

पर उस समय भारत के सम्पर्क से अरब में ज्ञान दीपक टिमटिमा रहा था। और भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं यूनानी ज्ञान-विज्ञान अरब के माध्यम से यूरोप पहुंचा।

संयोगवश इटली के एक धनी व्यापारी को अपने एक मित्र के यहां यूनान के प्राचीन विज्ञान और कलाओं से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें मिली जो उस व्यक्ति ने पादरी से छुपा रखी थी। क्योंकि पादरी लोग सभी पुरानी पुस्तकें जला देते थे। यूरोप की अनेक पुस्तकालयों की पुस्तकें जलाकर भस्म की जा चुकी थी।

यूनानी ज्ञान-विज्ञान की उन पुस्तकों को पढ़कर इटली का वह व्यापारी रोमांचित हो उठा। उसने अपने कुछ लेखक मित्रों से उन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतिलिपियां बनाकर शहरों में गुपचुप तौर पर प्रबुद्ध लोगों के पास पहुंचाई गयी। इससे इटली वासी प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छटपटा उठे।

इस बीच मार्कोपोलो नाम का एक ईसाई कुबलाइ खान के दरबार पकिंग (उन दिनों चीन मंगोलों की अधीनता में था जो कि शताब्दियों तक उनके अधीन में रहा था) में गया और वहां से बहुत सारी जानकारियां तथा घड़ी, नक्शे, कागज, दिशामापीयंत्र तथा खाने-पीने के कांच के बर्तन, लकड़ी के बने कांटें, छुरी, चम्मच आदि लेकर आया। मार्कोपोलो ने चीन और भारत, दोनों की यात्रा की थी और दोनों जगह समाज जीवन को ध्यान से देखा था और अपने यात्रा संस्मरण लिखे जिसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियां इटली एवं आसपास के लोगों ने प्राप्त की। ईसाई पादरियों एवं चर्च के अत्याचारों से पिस रहे यूरोप के प्रबुद्ध समाज को इस ज्ञान-विज्ञान के द्वारा आशा की नयी किरण दिखी और वे चर्च की मान्यताओं से बाहर जाकर नयी-नयी खोज करने लगे। मार्कोपोलो के वर्णन में भारत की खूब प्रशंसा पढ़कर कुछ दुस्साहसी समुद्री नाविक भारत की खोज में निकल पड़े। ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ईसाइयत के विरोध में ही यूरोप में पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ जिसे राज्य ने संरक्षण देना प्रारम्भ किया क्योंकि व्यापार, सत्ता और युद्ध विज्ञान में उन खोजों से राज्य को बहुत मदद मिलती थी।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान-विज्ञान, ग्रीक ज्ञान-विज्ञान एवं चीन के ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आया तब से नवजागरण काल यूरोप में प्रारम्भ हुआ।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान, चीन के ज्ञान-विज्ञान, यूनानी ज्ञान-विज्ञान को लेकर यूरोप आगे बढ़ गया, औद्योगिक क्रान्ति वहां हो गयी भारत या चीन आदि में क्यों नहीं हुई जबकि भारत ज्ञान-विज्ञान में 18वीं शताब्दी तक दुनिया में सबसे आगे था। इस दृष्टि से धर्मपालजी की पुस्तक Science and Technology in the 18^{th} Century in India देखने योग्य है। भारत की खोजों एवं वैज्ञानिक सूत्रों को लेकर यूरोप आगे बढ़ गया और स्वयं भारत पिछड़ गया।

इसका एक कारण भारत के तत्त्वज्ञान ने कभी भी प्रकृति एवं अन्य मानव समाजों के शोषण की अनुमति नहीं दी। उसने कभी भी दूसरे समाजों के प्रति द्वैत, घृणा, हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया। सबके प्रति एकात्मभाव था।

मानव के सदृश ही सभी देशों का भी उत्थान व पतन, वैभव और पराभव का, विस्तार एवं संकुचन का काल आता है। वह समय भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक पराभव का काल था और यूरोप के राजनैतिक उद्भव का, विकास का, विस्तार का काल था।

यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति उसके साम्राज्य विस्तार और साम्राज्यों के निर्मम शोषण से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे उन्होंने अपना साम्राज्य विस्तार किया, अन्य देशों व मानव समाज को निर्मम ढंग से लूटा, नष्ट किया, लूट के बल पर मुफ्त (Free) का कच्चा माल, नाम मात्र की मजदूरी पर मजदूर और मनमाने दाम पर पक्के मालों को उन देशों पर थोपा। इसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।

उन्होंने अन्य देशों को श्मशान बनाकर, पूरे एशिया को श्मशान बनाकर, उसके लूट के धन से इंग्लैण्ड में विकास किया।

अकेला अमेरीका दुनिया की 40 प्रतिशत खनिज सम्पदा का उपयोग कर आज अमरीकी वैभव का महल बन खड़ा है।

ऐसा विकास यदि भारत को करना है तो गांधीजी कहा करते थे—'इसके लिए हमें सारी दुनिया का शोषण करना होगा। उसको श्मशान बनाना पड़ेगा।'

फिर प्रश्न उठता है कि यूरोप ने जो विकास साधित किया है क्या सचमुच उसे विकास कहा जा सकता है? क्या उसके लिए स्वयं मनुष्य के अस्तित्व के लिए ही खतरा उत्पन्न नहीं कर दिया है?

मनुष्य की जो मूलभूत आवश्यकता है—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु, आकाश सबको प्रदूषित कर दिया है। इसने परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था को नष्ट कर दिया है। जहां के बच्चे स्नेह से रहित हैं, बुढ़ापा सम्मानहीन Old house में कटता है, जवानी अतिशय चंचल है कभी भी तलाक में बदल जाती है। यह विकास है या सर्वनाश की ओर प्रस्थान है?

इसलिए आज पश्चिम के सुलझे हुए विचारक यह स्वीकारने लगे हैं कि प्रकृति एवं अन्य मानव समाज पर हुए निर्मम अत्याचार के लिए ईसाइयत उत्तरदायी है। ऐसा स्पष्ट रूप से ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी स्वीकारते हैं। और यह भी स्वीकारते हैं कि मानव अस्तित्व को बचाये रखना है, उसको आत्मविनाश में नष्ट नहीं होना है एवं सारे संसार की सुख-समृद्धि, शांति चाहिए तो भारतीय विचार की शरण में आना पड़ेगा क्योंकि वह पूरे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है और सभी में एक ही आत्मा का वास मानती है। अतः पंथवाद नहीं सर्वेश्वरवाद ही इसका आधार है (जो सबमें एक ही ईश्वर या आत्मा का वास मानती है)।

पश्चिम ने अर्थ को साध्य, परम लक्ष्य मानकर बाजारवाद, उपभोक्तावाद को जन्म दिया है। उनका वैश्वीकरण भी अपने बाजारवाद, उपभोक्तावाद को सुरक्षित करने का एक उपाय है जो अपने देश के पक्ष में सारे विश्व के बाजारों का शोषण करना चाहता है।

भारत ने अर्थ को साध्य नहीं साधन माना अतः वेद ने परिवारवाद को जन्म दिया। परिवार के सभी सदस्यों को उचित पोषण और विकास का अवसर मिले इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। भारत ने सदा ज्ञान-विज्ञान का दान सारे विश्व को विश्व मंगल की भावना से, निःस्वार्थ भाव से, अपने निष्कलंक चरित्र और निर्मल ज्ञान के द्वारा दिया, बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने, बिना किसी देश के अर्थ पर डाका डाले, मां-बहिनों के शील पर आघात किए।

इसलिए पश्चिम के सुलझे हुए सभी मनीषी यह स्वीकारने लगे हैं कि भारत के पास ही वह चिन्तन, वह भावना, वह व्यवस्था, वह कार्य पद्धति है, कर्तृत्व है वह व्यक्तित्व है, वह इतिहास है वह चरित्र है, वह दर्शन है, वह साहित्य है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में मानती आयी है।

अब तो पाश्चात्य विज्ञान भी भारतीय चिन्तन के निकटतम आता जा रहा है।

न्यूटन के पश्चात् Relativity theory और Quantum theory ने विज्ञान की दिशा ही बदल दी और वह पूर्णतः वेदान्त चिन्तन के निकट, वैदान्तिक निष्कर्षों को स्वीकार कर रहे हैं।

Quantum theory तथा 'गाया सिद्धान्त' ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है Cosmic mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन है, ताल है, लय है, परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर है। One integral whole है। वह स्वीकार रही है कि सम्पूर्ण भूमण्डल अन्योन्याश्रित है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं।

अतः प्रकृति का शोषण स्वयं का शोषण है। प्रकृति के प्रति हिंसा, बलात्कार स्वयं के प्रति हिंसा, बलात्कार है। स्वयं के अस्तित्व को खतरे में डालना है। अतः प्रकृति का शोषण तुरन्त बंद होना चाहिए। प्रकृति को इतना पालतू पशु नहीं बनाया जा सकता जो हर समय हमारी आज्ञा में चले।

प्रकृति न निरीह है, न बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है जो उसके नियमों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले को दण्डित करती है। वह दण्ड स्वरूप भूकम्प लाती है, सुनामी लाती है। अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि लाती है।

पश्चिम की जो सज्जन शक्ति है, मनीषीवृन्द हैं वह भारतीय निष्कर्षों को स्वीकारते जा रहे हैं और बार-बार पश्चिम की राज्य सत्ता को सावधान कर रहे हैं कि वह अपने चिन्तन व कार्य-पद्धति में परिवर्तन नहीं करेगा तो नाश को प्राप्त होगा। स्वामी विवेकानन्द ने जो भविष्यवाणी की थी वह स्वीकारते जा रहे हैं....पश्चिम ज्वालामुखी पर्वत पर खड़ा है। उसने यदि आध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो चिथड़े-चिथड़े में किसी भी समय बिखर सकता है।

पर पश्चिम की राजसत्ता पर दुष्ट शक्तियों, आसुरी शक्तियों का वर्चस्व है। वे तो विश्व की सुरक्षा के आधार हो सकने वाले भारत को ही नष्ट करने पर तुले हैं।

पश्चिम के साथ दूसरी कठिनाई यह है कि आज उनका सारा विकास, विज्ञान की उपलब्धियां, चमत्कार, वैभव आदि सब प्रकृति के शोषण, अविकसित देशों के शोषण पर खड़ा है। और वे अपने मन-मानी सुख-भोग विलास के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि उससे पीछे जाना उनको शक्य नहीं लगता। इसलिए बार-बार की चेतावनी के बाद भी वे अपनी भोगवादी जीवनशैली की उपरामता के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। उनका जीवन स्तर जैसा है वैसा ही बना रहे, ऐसा ही विकास होता रहे इसके लिए उन्होंने अविकसित राष्ट्रों को अपनी आकांक्षापूर्ति के लिए शिकार बनाया है। आज राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ-सी गयी है।

इससे अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पुलिस व सैनिकों की व्यवस्था करनी पड़ती है, जन-आन्दोलनों को झेलना पड़ता है। स्वयं मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है।

इसलिए आर्थिक गुलामी का दौर चल पड़ा है जिसमें उनके बाजारों पर कब्जा करके उनका शोषण करते हैं और उस देश की राजनीतिक सत्ता को अपने हितों के अनुसार प्रभावित करते हैं, संचालित करते हैं। उन देशों के राजनेताओं के द्वारा अपने हित में देश का शोषण करवाते हैं। उन पर मनमानी शर्तें लादते हैं, उनकी श्रेष्ठ संस्कृति को नष्ट कर उन देशवासियों के मानस को अपने हित में मानसिक गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं ताकि वे उनका बाजार बन जाएं, उपभोक्ता बन जाएं और सदा बने रहें।

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अर्नाल्ड टोयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्म विनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश का यह एकमात्र विकल्प है।

हमारे पतन का कारण अध्यात्म नहीं

जो समाज अपने को युग के अनुरूप नहीं ढालता, नहीं बदलता वह समाज अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। अतः समाज को जीवित रखने के लिए युग के अनुरूप उसमें परिवर्तन आवश्यक है।

अर्नाल्ड टायनबी कहते हैं—इतिहास में दो प्रकार के समाज रहे हैं। एक Settle Society और दूसरा Unsettle Society. Unsettle Society जिनका अपना घर-बार कुछ नहीं होता। रेगिस्तान की मरुभूमि में स्थिर मकान बन नहीं सकते, जीवनभर इधर से उधर डोलते रहते हैं। ऐसा समाज जिनका अपना घर तो होता नहीं और दूसरों के घरों को उजाड़ने में ही अपनी शान समझते हैं।

दूसरा समाज वह, जो अपना स्थिर, सुन्दर घर बनाता है। उसे सजाता-संवारता है, साफ रखता है, दूसरे के घरों को विनष्ट नहीं बल्कि सजाने-संवारने में सहयोग करता है।

बन्दर और पक्षी की कहानी सभी जानते हैं कि पक्षी द्वारा बन्दर को सीख देने पर बन्दर ने किस तरह पक्षी के घर को उजाड़ दिया।

इसी प्रकार अरबवासियों का अपना तो कोई घर था नहीं और जिनका घर था उनको उजाड़ने में लगे रहे।

एक प्रश्न सामने आता है हिन्दू पर चारों ओर से आघात होने पर भी वह जागता क्यों नहीं? इसका कारण बताया जाता है 1200 वर्षों की गुलामी।

तब प्रश्न उठता है आखिर देश पराधीन ही क्यों हुआ। उसके दो कारण हैं—पश्चिम वालों की स्वर्णलोभ की वृत्ति एवं हिन्दुओं का असंगठित होना। पश्चिम वाले भूखे भेड़ियों के समान इस देश को लूटने के लिए आक्रान्ता बनकर आये।

कुछ लोगों ने भूल से हमारे अध्यात्म, आध्यात्मिक सद्‌गुणों को ही हमारी दुर्बलता का कारण मान लिया। यह उनका गलत ढंग है सोचने का। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, दम, तप, अद्रोह आदि हमारे आध्यात्मिक सद्‌गुण हैं। अपने घर को सजा-संवार कर रखना एक अच्छा

गुण है। उसमें सुन्दर पुष्पवाटिका लगाना, उसमें तरह-तरह के फूल-पत्ते, लतायें पुष्पवाटिका का गुण है। शत्रु हमारी पुष्पवाटिका को उजाड़ देगा, आक्रमण करेगा, हम पुष्पवाटिका ही न लगायें यह तो कोई बात नहीं। हमारी मां, बहिन, पुत्री के सुन्दर चेहरे को गुण्डे के भय से उसके चेहरे पर तेजाब डालकर उसकी सुन्दरता नष्ट नहीं कर दें, सुन्दरता उसका गुण है। उसी प्रकार अध्यात्म हमारी दुर्बलता का कारण नहीं। अध्यात्म, आध्यात्मिक गुण हमारी सुन्दरता है। उसे नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। जैसे सुन्दर वाटिका की रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है जिससे कि पशु या नरपशु उसको उजाड़ न दे। हमने भूल यही की। हमने आध्यात्मिक पुष्प तो बहुत लगाये, किन्तु उसकी रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ नहीं लगाई। अतः कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है। हम यथार्थ व्यावहारिकता को भूल गये कि कहाँ हिंसा का प्रयोग करना चाहिए, कहाँ नहीं; कहाँ क्षमा, दया आदि सद्‌गुणों का प्रयोग करना चाहिये, कहाँ नहीं; कहाँ अतिथि धर्म का पालन करना चाहिए, कहाँ नहीं आदि-आदि।

इसी कारण हमारे मंदिर लूटे गये, हमारी पुस्तकों से हमाम जलते रहे, स्नान के लिये पानी गरम होता रहा, आदि-आदि। यथार्थ व्यावहारिकता का अभाव और सद्‌गुणविकृति के कारण हमारी आज तक यह दुर्दशा बनी हुई है। देश-काल-पात्र-परिस्थिति का बिना विचार किये ही हम सद्‌गुणों का प्रयोग करते आये हैं, तब ये सद्‌गुण न रहकर सद्‌गुणविकृति हो जाते हैं। हमारी उदारता और सद्‌गुणों का दुरुपयोग ईसाई, मुसलमान, कम्युनिस्ट और राजनीतिक स्वार्थ के लोभ से राजनेता कर रहे हैं।

विल डूरेन्ट की उक्ति—हे भारत! इससे पहले कि अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शांति के लिये तरसता हुआ अतिव्याकुल पश्चिम तुम्हारी शरण में आ जावे, कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिये अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।

स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुदण्ड टूट जाएगा, राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इस सबका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश। **—स्वामी विवेकानन्द**

आम मुसलमान गुंडा है और आम हिन्दू कायर है। और जब तक दुनिया में कायर रहेंगे, तो गुंडे भी रहेंगे। **—महात्मा गाँधी**

भारत राष्ट्र की विशेषता और उसका भवितव्य

विश्व में दो सौ देश हैं। इसमें केवल भारत के लिये ही माता शब्द प्रयोग होता है और अन्य ग्रहों में केवल पृथ्वी को माता कहा गया है, क्यों? सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, रवि को माता क्यों नहीं कहा गया। पृथ्वी को ही माता क्यों कहा गया है।

वर्ष प्रतिपदा सृष्टि का प्रारम्भ। आज से सृष्टि प्रारम्भ हुई। भारत देव निर्मित, ईश्वर निर्मित देश है, अतः इसकी सीमा भी प्राकृतिक है–उत्तर में हिमालय और तीन ओर समुद्र। उत्तर में हिमालय दक्षिण में विंध्याचल इसके मध्य में रहने वाले लोग भारतीय कहलाते हैं।

हिमालय के 'हि' और इन्दु सरोवर के 'न्दु' से हिन्दू शब्द बना है। इसी से हिन्दुस्तान शब्द बना है।

हमारा पहला प्रकटन मनु-शतरूपा है। आदि (प्रथम) राजधानी अयोध्या है और प्रथम तीर्थ काशी है।

भारत देश स्वयं ईश्वर निर्मित होने से, भगवान् ने इस देश को वचन दिया है–जब-जब धर्म की ग्लानि होगी मैं धर्म की रक्षा करने आऊंगा। ग्लानि के स्वरूप के अनुसार कभी महापुरुषों को कभी अंशावतार मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन। पूर्णावतार दो ही हैं जिनमें स्वयं भगवान आते हैं। राम और कृष्ण के रूप में। एक त्रेता युग में और एक द्वापर युग में। अवतार अन्य ग्रहों में न होकर पृथ्वी (ग्रह) में हुआ। और पृथ्वी लोक में भी केवल भारत में हुआ। दुनिया के दो सौ देशों में केवल भारत में होने के कारण यह भूमि भारतमाता कहलायी। अन्य ग्रहों में नहीं होने के कारण पृथ्वी पर ही भगवान का अवतार हुआ, धरती भगवान की गोद बनी इसलिये माता कहलायी। धरती में भी भारत भगवान की गोद बना इसलिये दुनिया में केवल भारत भूमि ही माता कहलायी अन्य देश नहीं।

हम इस देश के मूलवासी हैं। हम भारतीय हैं, हिन्दू हैं। पर जो हिन्दू 10-20 या 50-100 साल से भारत छोड़कर, इंग्लैण्ड, अमेरिका में बस गये, वहाँ की नागरिकता मिल गयी। नयी पीढ़ी का जन्म वहीं हुआ पर वे हिन्दू अमरीकन

कहलायेंगे, केवल अमरीकन नहीं। उनकी मातृभूमि तो भारत है, अमेरिका के नागरिक हैं। अतः विश्व के जिस देश में भी बस गए वह हिन्दू ही कहलायेगा। भारत के मुसलमान जिस किसी भी मुस्लिम देश में बस जाये, नागरिकता प्राप्त हो जाए पर वह भारतीय मुसलमान कहलाएगा।

घर में मालिक भी रहता है, भाड़ेदार भी रहता है? रहने की दृष्टि से सब एक हैं। पर मिल्कीयत की दृष्टि से सब एक नहीं है। मिल्कीयत की दृष्टि से सबको एक मानेंगे तो जो वास्तविक मालिक है उसको हानि उठानी पड़ेगी।

अतः गांधीजी का यह प्रयोग कि हम हिन्दू नहीं हिन्दुस्तानी हैं यह प्रयोग गलत है–इसी आधार पर उन्होंने ध्वज को, हिन्दी भाषा को, इतिहास को, महापुरुषों को प्रदूषित किया। हिन्दी भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी जो हिन्दी, उर्दू का मिला-जुला रूप है, स्वीकारना अपने मूल रूप को नष्ट करना है। अपने मूल को सुरक्षित रखते हुए किसी को आत्मसात करने का प्रयास तो किया जा सकता है। पर, अपने को बिगाड़ने का अर्थ अपनी नींव को कमजोर करना है। अपनी ही नींव को ध्वस्त करना है।

हमारा ध्वज भगवा होना चाहिये तिरंगा नहीं।

हमारी भाषा हिन्दी होनी चाहिये हिन्दुस्तानी नहीं।

हमारे महापुरुष राम-कृष्ण, राणा प्रताप, शिवाजी है–अकबर और औरंगजेब नहीं।

राणा प्रताप के साथ हाकिम खां, शिवाजी के साथ मदारी, नाना साहेब के साथ बहादुर शाह जफर, रामप्रसाद बिस्मिल के साथ उशा उल्ला खां ने इसे हिन्दू राष्ट्र मानकर ही स्वाधीनता संग्राम में साथ-साथ अपनी आहुति दी।

हमें धरती पर आने के लिये माता की कोख और धरती मां की गोद चाहिये। अतः बेटी को मारो मत। बेटी उत्पन्न होगी तो हमें बहिन मिलेगी। युवा होने पर किसी की पत्नी बनेगी। तब वह मां बनेगी और हमें धरती पर आने का अवसर मिलेगा।

पश्चिम में निर्बन्ध काम-भोग की छूट है। वहां दो ही रिश्ते हैं–पति-पत्नी। वहां किसी के साथ गमन अपराध नहीं मान्य है।

भारत में मर्यादित भोग है। रिश्तों की भरमार है। हम बहन, चाची, मौसी, कन्या किसी के साथ रहते हैं कोई दुष्कर्म नहीं होता है। जीवन का आनन्द-मंगल के साथ इनके साथ (Enjoy से, आनन्द से) रहते हैं पर कोई दुष्कर्म नहीं होता है। क्योंकि भाव है यह भाभी है, मामी है, बहन है। सब भाव का खेल है।

हिन्दू और भारतीय शब्द पर्यायवाची हैं—भारतीय और हिन्दू पर्यायवाची शब्द हैं। भारतीय के साथ हिन्दू नहीं लगता है। मैं भारतीय हिन्दू हूँ कोई नहीं

कहता। पर मुसलमान, ईसाई के साथ भारतीय मुसलमान, भारतीय ईसाई लगता है। स्पष्ट है हिन्दू और भारतीय पर्यायवाची है।

1947 में भारत को आजादी मिली। भारत की आजादी से ही विश्व के 117 देशों की आजादी जुड़ी हुई है। भारत की स्वाधीनता से इन देशों को प्रेरणा मिली और उन्होंने भी आजादी हासिल की। हिन्दू राष्ट्र भारत को भी आजादी मिली और मुस्लिम राष्ट्रों को भी। भारत ने लोकतंत्र को स्वीकारा। भारत का इतिहास एवं धर्म ग्रन्थों ने लोकतंत्र को आदर्श माना जबकि इस्लामिक धर्म-ग्रन्थ और उनका इतिहास तानाशाही का प्रबल समर्थक है। इस मूलभूत अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए।

पश्चिमी यूरोपीय देशों का इतिहास दो सौ वर्षों का है। इनकी जो विकास यात्रा, राष्ट्रीय उद्भव की जो यात्रा है वह दो सौ-तीन सौ वर्षों की यात्रा है। इसलिये इसके पीछे वे जाना नहीं चाहते। यूनान का भी इतिहास आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व का है। इनके यहां सृष्टि का इतिहास अधिक से अधिक छः हजार वर्ष का है। और, विकास का इतिहास तो मात्र दो सौ-तीन सौ वर्षों का है इसलिये वे पीछे झांकना नहीं चाहते।

पर हमारा इतिहास तो करोड़ों वर्षों का है। दो अरब वर्षों का है। हमारी कालगणना दो अरब वर्ष की है। और प्रारम्भ से ही हम विकसित राष्ट्र के रूप में रहे हैं। क्योंकि यह स्वाभाविक ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक राष्ट्र है, इसकी सीमा भी प्राकृतिक है। अतः हमारा अतीत पर गौरव होना स्वाभाविक है।

हमारा राष्ट्र अजन्मा ईश्वर प्रदत्त है देवनिर्मित होने से, प्राकृतिक होने से शाश्वत सनातन राष्ट्र है। इसका कभी नाश नहीं हो सकता। यही कारण है सभी प्रकार के झंझावतों को झेलकर भी जीवित है। हिन्दू वैदिक आर्य सनातन धर्म भी अजन्मा है। तो इसकी मृत्यु भी नहीं, यह अमर है। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। इसलिये ईसाई-इसलाम की मृत्यु निश्चित है। पाकिस्तान का जन्म 14 अगस्त 1947 में हुआ, बंग्ला देश का 1972-1973 में हुआ अतः इनकी मृत्यु भी निश्चित है। स्वयं मुहम्मद साहब ने इसलाम की आयु 1400 वर्ष बतायी है। इसलिये इसलाम अब बोनस पर, आक्सीजन पर जी रहा है। अब समाप्ति का समय आ गया है। और ईसाइयत तो समाप्ति पर है।

यहां के मुसलमानों के पुरखे–गौरी, गजनी और बाबर नहीं राम-कृष्ण, गौतम हैं। वापस आने पर अमरता मिलेगी, प्यार मिलेगा। भय और लोभ से आप गये थे अतः वापस अपने मूल में आ जाओ।

हमारे यहां मल ढोने की परम्परा नहीं रही। प्राचीन एवं मध्य भारत में पाखाने नहीं बनते थे। शौच के लिये खेत में, जंगलों में जाते थे। घर में शौचालय बनाने

की परम्परा तो इसलाम की देन है। क्योंकि ये अपनी पत्नी को घर से बाहर नहीं जाने देते थे। किसी की नजर नहीं पड़नी चाहिये। इसलिये इसलाम स्वीकार करो नहीं तो मल ढोओ। राजपूतों ने इसलाम नहीं स्वीकारा मल ढोना स्वीकारा। देश का बंटवारा भी हो गया और मुसलमान भी रह गये। इन्हें भारत से प्रेम था इसलिये नहीं रह गये। वे मात्र पाकिस्तान से संतुष्ट नहीं थे। वे शेष भारत को भी इसलाम में परिवर्तित करना चाहते थे। दारूल इसलाम बनाने के लिये रह गये। कुछ अति उत्साही मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे तब उन्हें मौलाना अब्दुल कलाम ने रोका यह कह कर कि आपको कुछ समय में यहां बैठे-बैठे ही पाकिस्तान मिल जायेगा। यहां से जाकर यहां के मुसलमानों की स्थिति कमजोर न करें।

अंग्रेजों का साम्राज्य 70 देशों में था। इसलिए कहा जाता था उनके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। पर द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उनकी आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी। और आज भी इंग्लैण्ड और अमेरीका, दोनों ने जो विदेशी और घरेलू ऋण ले रखा है उस दृष्टि से दिवालिया होने की स्थिति है। उसके बाद भी दोनों देश सारे विश्व में अपनी धाक जमाये हुए हैं, उनकी दादागिरी चल रही है। अंग्रेजों ने अपनी भाषा हम पर लाद दी जो हिन्दी, संस्कृत की तुलना में बहुत अधिक दुर्बल और अवैज्ञानिक है। उन्होंने अपना अवैज्ञानिक संवत् भी हम पर लाद दिया, अपनी सारी व्यवस्थाओं को हम पर थोप दिया, अपनी बौद्धिक धूर्तता के बल पर बौद्धिक छल के बल पर। सारी समस्याओं की जड़ स्वयं यूरोप है, पश्चिम है और उसने U.N.O. बनाया और अन्य देशों को इसका सदस्य बना रहा है और Vito Power अपने पास रख लिया। वर्ल्ड बैंक आदि अनेक संस्थाएं बनाकर हमें इसका सदस्य बना रहा है। इस प्रकार सारी दुनिया पर अपनी दादीगिरी और धौंस बनाये हुए हैं। पर अब यह ज्यादा समय चलने वाला नहीं है। पश्चिम का पतन और भारत का उदय होना अब अवश्यंभावी है। भारत के पास ही वह दृष्टि, वह भावना, वह कर्तृत्व व्यक्तित्व है जो सारे मनुष्यों को एक ही ईश्वर की संतान मानता है। अतः सारे विश्व को परिवार के रूप में देखता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक की हित चिन्ता करता है। इस प्रकार पूरे परिवार में सुख, शान्ति, मैत्री का भाव रहता है। अतः भारत के उदय से ही सारे विश्व में सुख, शान्ति एवं मैत्री का साम्राज्य स्थापित होगा।

1945 से इंग्लैण्ड का व 1990 से अमेरीका का पतन प्रारम्भ हो चुका है। और पचास वर्षों में ये दोनों देश धाराशायी हो जाएंगे। पचास वर्षों तक भारत को इनका सामना करना पड़ेगा। इन्हें मृत्यु का भय सता रहा है। भारत धीरे-धीरे उठ रहा है।

उपसंहार

प्रत्येक देश का अपना एक वैशिष्ट्य होता है, एक अपूर्वता होती है, एक मूल चेतना होती है, उसका एक कर्तृत्व और एक व्यक्तित्व होता है, उसके आधार पर सारे विश्व में उसकी अपनी एक पहचान बनती है, वह समादर या घृणा का पात्र बनता है।

भारत की मूल चेतना धर्म है, अध्यात्म है, योग है, संस्कृति है। यह इस देश का प्राण बिन्दु है, केन्द्र बिन्दु है जिसके आधार पर हमारा व्यक्ति जीवन, परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन गुंथा हुआ है। गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, जन्म से जन्मान्तर तक कल्प से कल्पान्तर तक। हमारे जीवन का कोई भी कण और कोई क्षण धर्म से रहित नहीं है, धर्मनिरपेक्षता की कोई भी कल्पना, कोई भी आधार भारत में नहीं है? धर्म निरपेक्षता पश्चिम की आवश्यकता है और वहीं की कल्पना है। भारत में धर्मनिरपेक्षता शब्द एक राजनैतिक षड्यंत्र है, एक साजिश है जो भारत और हिन्दुत्व को नष्ट करने के लिए अंग्रेजों और पंडित नेहरू श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं तद् सदृश राजनेताओं की देन है।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान है। पूरे यूरोप का भूखण्ड लगभग भारत जितना ही है फिर भी बीसियों राष्ट्र हैं। और नया राष्ट्र बनने की सम्भावना सदा बनी रहती है। भारत में सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व भी देश में हजारों छोटे-बड़े राज्य रहे होंगे। मारवाड़, मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य तो अनेक थे किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था।

भारत में राज्य कभी केन्द्र में नहीं था। राष्ट्र जीवन के संचालन की अनेक संस्थाओं में वह एक संस्थाविशेष थी। भारत में परिवार एक संस्था है, विवाह एक संस्था है, ग्राम पंचायत एक संस्था है, गुरुकुल एक संस्था, आर्थिक संघ एक संस्था है। वैसे ही राज्य भी एक संस्था मात्र थी जिसका काम राज्य की

आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा, राज्य में कानून और व्यवस्था Law and Order बनाए रखना, इतना ही दायित्व राज्य का था। कम-से-कम शासन यह भारत का आदर्श रहा है।

भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु, सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम-सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम-सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जाएगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम-सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम-सूत्र ने ही भारत को जगद्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। यदि समस्त दक्षिण-पूर्व व उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत के कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं; यदि फिजी, गियाना, मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनीडाड के लोग गंगास्नान के लिए हजारों मील दूर से भारत की यात्रा पर आते हैं; इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मनाते हैं; अपने देश में सबसे पहले अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन रखते हैं तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण ही।

भारत में विधिवेत्ता राजा या राजनेता नहीं ऋषि-मुनि होते थे, जो राग-द्वेष से रहित होकर मानव मात्र के हित को ध्यान में रखकर विधान रचते थे। अंग्रेजों के पूर्व तक यही स्थिति देखते हैं। जिन्होंने स्वयं का निर्माण किया है और स्वयं शासित हैं, वही दूसरों पर शासन करने के लिये विधान रच सकते हैं।

भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था, वर्ण भेद नहीं, जाति व्यवस्था जातिभेद नहीं, पर आधारित है। इसके आधार पर भी हमारा समाज संगठित रहा है। और विदेशी आक्रान्ताओं को पराभूत कर सका।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है। किन्तु, हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमणों के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा एक बनाये रखने वाली यह सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति है।

इसलिए हमारे राज्य जब पराधीन हुए तब भी हमारी परिवार व्यवस्था, आर्थिक संघ, गुरुकुल, आश्रम व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था अक्षुण्ण रही। फलतः राज्य भले ही पराधीन हुआ हो, राष्ट्र जीवन अखण्ड चलता रहा। और कुछ समय पश्चात् राज्य की परतंत्रता को भी उखाड़ फेंका।

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

रोम, यूनान, मिस्र, असीरिया, बेबिलोनिया, ग्रीक आदि की सभ्यताएं जिसने एक समय अपने साम्राज्य का विस्तार विश्व के बड़े भूभाग में स्थापित किया। ऐसी विश्वव्यापी सभ्यताएं कोई 20 वर्ष के थपेड़ों में तो कोई 50 वर्षों के थपेड़ों में तो कोई 100 वर्षों के थपेड़ों में, तो कोई 200 वर्षों के थपेड़ों में सदा के लिए समाप्त हो गईं। देश नष्ट होने का तात्पर्य वहां की भूमि या जन समाज नष्ट नहीं हो गया। वरन् उनकी सभ्यता, संस्कृति नष्ट हो गई। उनका प्राचीन संस्कृति की धारा से, दर्शन से कोई सम्पर्क नहीं रह गया। अब इन सभ्यता-संस्कृति का मात्र नामशेष है। उनकी सभ्यता-संस्कृति को जानने के लिए म्यूजियमों में, पुस्तकालयों की पुस्तकों के पृष्ठों में जाना होगा। मिस्र के वर्तमान निवासियों का मजहब और संस्कृति का अपने देश के उन प्राचीन लोगों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, जिन्होंने नील नदी की घाटी में गगनचुम्बी विशाल पिरामिडों का निर्माण कराया था और जिन्होंने अपने पितरों को अमर जीवन प्रदान करने के लिए उनके शरीरों की ममी बनायी थी।

ग्रीस और रोम के मजहबों का आज कोई अनुयायी नहीं है। जो विचारधारा प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों को देवी-देवताओं के रूप में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के लिए प्रेरित करती थी, ग्रीस एवं इटली के वर्तमान निवासियों के लिए वह कोई अर्थ नहीं रखते। आज ग्रीक में रहने वालों का प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, पाइथोगोरस से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। उनके प्रेरणास्रोत वो नहीं रह गये। जो यूनान यूरोपीय विचारों की जननी माना जाता है उस विचार से आज के यूनानवासी का कोई सम्पर्क नहीं है। सम्बन्ध नहीं है। उनके प्रेरणा के वे स्रोत नहीं रहे।

युग पर युग बीत गए, युग पर युग बीत रहे हैं तथा युग पर युग बीतते चले जाएंगे पर भारत की मृत्युंजयी संस्कृति भूत-भविष्य तथा वर्तमान के लिए चुनौती बनी हुई आज तक जीवित है। काल और दुर्भाग्य के सभी प्रकार के थपेड़े खाकर भी आज न केवल जीवित है वरन् यशस्वी है। आज स्वतंत्र भारत में अपने देश के सत्ताधीशों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा अपनी संस्कृति सब प्रकार से उपेक्षित एवं प्रताड़ित होने के बावजूद भी विश्व के सुलझे हुए मनीषियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। आज भी हमारी प्रेरणा के स्रोत—वेद, उपनिषद्, गीता ही हैं। राम भी इनसे प्रेरणा पाते थे। उनके पितृपुरुष रघु, हरिश्चन्द्र भी प्रेरणा पाते थे।

ऐसी कौन-सी विशेषताएं हैं जिससे भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है? जबकि विश्व की बड़ी-बड़ी विशाल सभ्यताएं नष्ट हो गईं। एक

अमेरीकन John B. Sparks ने एक विशाल मानचित्र 'The Histomap of history' The Rise and fall of peoples and nations four thousand years में जन समाज एवं देशों का चार हजार वर्षों का उत्थान एवं पतन का इतिहास दर्शाया है। जिसमें प्राचीनतम सभ्यताओं का नक्शा बनाते हुए दिखाया गया है कि ग्रीक, यूनान, रोम व मिस्र, असीरिया, बेबीलोन की सभ्यताएँ उदित हुई, फली-फूली, विकसित हुई और अपने वैभव और राजनीतिक उत्कर्ष काल में राजनीतिक साम्राज्य के अन्तर्गत विश्व के अधिकांश देशों पर छा गयी। अपने अंक में ले लिया। इस प्रकार इनका इतना पेट फूला कि शेष में पेट फट कर वह सभ्यता सदा के लिए विलीन हो गई। पर भारत का पेट न इतना पिचका कि अनाहार से मर जाए और न इतना फूला कि पेट फट जाए। प्रारम्भ से आज तक निरन्तर अविच्छिन्न धारा बनी रही और अपने राजनीतिक उत्कर्ष काल में भी उसने कभी भी विश्व पर न अपना राजनीतिक साम्राज्य विस्तार किया, न किसी के अर्थ पर डाका डाला है, न किसी की स्वाधीनता छीनी, न धर्म ही छीना और न किसी के शील पर ही डाका डाला। हमने दिया तो संस्कृति का दान दिया। सभ्यता का, कला का, विज्ञान का दान दिया और आज भी हमारा सांस्कृतिक साम्राज्य अनेक अंशों में अक्षुण्ण है। सुरक्षित है।

ये बड़ी-बड़ी विशाल सभ्यताएँ आखिर नष्ट क्यों हो गई और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति आज भी जीवित क्यों है? इसका रहस्यमय कारण है कि जो सभ्यता मात्र भौतिकता पर आधारित होती है वह नश्वर होती है और आध्यात्मिकता पर आधारित सभ्यता-संस्कृति चिरंजीवी होती है। सिर्फ भौतिकता के आधार पर जीवन में कोई महत् लक्ष्य या परोपकार की कोई प्रेरणा नहीं रहती। उनके पास लक्ष्य अर्थ और काम रह जाता है। ये दो ही प्रेरणायें रह जाती हैं। उस राष्ट्र के व्यक्ति का जीवन निरा भोगवादी बन जाता है। उसके जीवन में दो ही आकर्षण शेष रहते हैं— अर्थ और काम। रोम में बड़े-बड़े गुसलखाने (वमन कक्ष Vomiting Room) बने हुए थे। जहां खाना और वमन करना ही उनका कार्य था।

रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। और गुलामों का सबसे बड़ा देश था। कालान्तर में वहां के मूल निवासी सभी के सभी भोगी विलासी, लम्पट बन गए एवं अकर्मण्य बन गए। सारा कार्य व्यापार गुलाम ही चलाते थे और मूल निवासी भोग-विलास में मत्त रहते थे। ऐसी अवस्था में विदेशी आक्रमणों के छोटे-छोटे झटकों में ही ये राष्ट्र समाप्त हो गए। गुलामों में राष्ट्र की रक्षा की प्रेरणा नहीं थी। वे तो गुलामी से मुक्त होना चाहते ही थे एवं मूल निवासी अकर्मण्य, निकम्मे बन जाने से यह दुर्गति हुई। अत: केवल भौतिकता का आश्रय लेकर हम अपने राष्ट्र जीवन को चिरंजीवी, दीर्घजीवी नहीं बना सकते। जबकि भारत सब प्रकार

के संकट झेलकर, उसका सामना कर जीवित है। सब प्रकार के संकट झेलने की प्रेरणा सदैव धर्म एवं संस्कृति ने दी। चाहे हम वर्तमान स्वाधीनता आन्दोलन के कर्ता पुरुषों को ही देख लेवें—विवेकानन्द, तिलक, मालवीयजी, गांधी आदि सब धार्मिक पुरुष थे।

ये प्राचीन विशाल सभ्यताएं नष्ट हो गईं क्योंकि ये राष्ट्र राजनीति पर अधिष्ठित और जीवन का एक पक्षीय चिन्तन होने से निरी भौतिकता पर, दो जीवनमूल्यों, अर्थ और काम पर आधारित होने से नश्वर सिद्ध हुई और भारत अध्यात्म पर और जीवन का समग्र चिन्तन होने जैसे चार जीवन मूल्यों यथा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर आधारित होने से अविनश्वर, चिरंजीवी सिद्ध हुई है, और वर्तमान में पश्चिम पुनः क्षय की ओर अग्रसर है। क्योंकि आज पश्चिम ने अध्यात्म को तिरस्कृत करके और कोरी भौतिकता पर बल देकर भौतिक सुखों का अम्बार तो लगा दिया पर जीवन कला के अभाव में, उसके उपयोग की यथार्थ बुद्धि के अभाव में भौतिक सुखों के शैल पर खड़ा होकर जितना दु:खी आज है। उतना पहले कभी नहीं था। आज उसका सुख ही उनके लिए नरक बन गया है। आज वह शरीर से जितना निकट है, मन से, हृदय से उतना ही दूर हो गया है। वह आज भीड़ में अकेला है, न वह किसी का है, न कोई उसका। आज वह सारे विश्व के लिए संकट बन रहा है। क्योंकि पश्चिम ने जो विकास साधित किया है वह अपने अन्तर-जीवन, परिवार जीवन और समाज जीवन को खोखला करके।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे। विवेकानन्द भी अपनी पहली यात्रा में अमेरीका और यूरोप के शौर्य, संगठन और मिथ्या लोकतंत्र के भुलावे में आ गए थे। पर दूसरी यात्रा में पश्चिमी सभ्यता की निरर्थकता समझ में आ गई थी। विवेकानन्द पहले व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अनुभव किया कि यूरोपीय सभ्यता के ऊपर संकट की छाया चुपचाप घिरी आ रही है। बाहर से वह सभ्यता अपनी सफलता के चरम शिखर पर थी। उस समय के अधिकांश भारतीय लेखकों ने पश्चिम में समृद्धि, आशावाद, विज्ञान और तकनीकी प्रगति के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा था। क्योंकि अर्थ, काम और शक्ति के सिद्धान्त ने मनुष्य को बहिर्मुखी बनाकर अहर्निश कर्म करने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप अपार भौतिक वैभव प्राप्त हुआ जो किसी भी युग में इसके पूर्व शायद सम्भव नहीं हुआ था। पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने के बजाय पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिणत कर दिया और यह आशा की जाने लगी कि अब एक पूर्ण जगत् का आगमन होने ही वाला है। दु:ख, दैन्य, अज्ञानता की सदा के लिए समाप्ति होने ही वाली है। प्रगति की शताब्दी की इस मनोदशा को प्रकट करते हुए ब्राउनिंग ने गाया था—

ईश्वर अपने स्वर्ग में है और संसार में सब कुछ ठीक ठाक है।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे उस समय विवेकानन्द ने पश्चिमी सभ्यता की दुर्दशा को दूरदृष्टि से देखकर भौतिकता के गढ़ में ही घुसकर यह सावधान वाणी दी तो उस समय कुछ लोगों को विवेकानन्द के विचार अमंगल सूचक लगे थे। उन्होंने घोषणा की कि पश्चिम की जीवन यात्रा एक अट्टहास है। किन्तु उसके पीछे रुदन है और रुदन में ही इसकी परिसमाप्ति होगी।

पश्चिमी राष्ट्र ज्वालामुखी पर्वत पर टिका हुआ है जो अपने होंठों में लिपिस्टिक लगाए हुए कृत्रिम मुसकान बिखेर रहा है। जिसके अन्दर रुदन ही रुदन, हाय-हाय ही, व्यथा ही व्यथा, पीड़ा ही पीड़ा भरा है। जबकि भारत में (गरीबी के मार से अंग्रेजों के कारण) ऊपर में तो रुदन है, पर भीतर में आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। क्योंकि उसे आत्मा की अमरता, कर्म के सिद्धान्त, पुनर्जन्म में विश्वास है। पिछले कुछ हीन कर्मों के कारण अंग्रेजों की मार पड़ रही है। पुनः अपने कर्मों को सुधार कर, अंग्रेजों को भगा कर पूर्व की भांति विश्वविजयी बन जायेंगे। यदि 50 वर्षों के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं अपनाया तो यह सभ्यता फटकर चिथड़े-चिथड़े में बिखर जाएगी।

जिस यूरोप के विषय में स्वामी विवेकानन्दजी ने सावधान किया वहीं पं. नेहरू ने भारत में ही भारत के आध्यात्मिक आधार को तिलांजलि देकर पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण प्रारम्भ करने का दौर प्रारम्भ किया। गांधीजी ने अपने हिन्द स्वराज्य में जिसे राक्षसी सभ्यता, पैशाचिक सभ्यता कहा। स्वामी रामतीर्थ ने पश्चिमी सभ्यता को गोबर में लिपटी हुई मिठाई कहा, उसे प्रश्रय मिलने लगा। पश्चिमी सभ्यता अर्थ और काम की अनन्त भूख को जगा देती है। इसी कारण आज देश में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, महँगाई-मिलावट आदि हैं। क्योंकि इसमें श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता। यही कारण है कि धर्म के प्रति, सत्य के प्रति, कर्म के प्रति, सिद्धान्त के प्रति, पुनर्जन्म के सिद्धान्त के प्रति, पूर्वजों के आदर्श के प्रति वह आस्था शेष नहीं है। मैक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी है—भारत से हम क्या सीख सकते हैं। India : what can it teach us उसमें हिन्दुओं के चरित्र पर एक अध्याय है। जिसमें वह कहता हैं—प्रायः हिन्दू सत्यपरायण, धर्मवीर, ईमानदार है। वह गंगा की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता, मन्दिर की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता चाहे उसके प्राणों की, सारी धन सम्पदा की बलि चढ़ जाए। मैक्समूलर कहता है यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है कि चाहे यूनानी हो या चीनी, ईरानी हो या अरब का,

किसी भी विदेशी यात्री ने भारत के बारे में कुछ भी लिखा हो हमें उसमें भारत के राष्ट्रीय चरित्र के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में भारतवासियों की सत्यनिष्ठा एवं न्यायप्रियता की चर्चा सर्वप्रथम सर्वत्र समान रूप से मिलती है। यही विदेशी यात्री अन्य देशों के विषय में ऐसा मन्तव्य व्यक्त नहीं करते। वह कहता है—फ्रांस की यात्रा पर गये किसी अंग्रेज लेखक के यात्रा विवरण को पढ़ें तो हमें उसमें फ्रांसीसियों की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा आदि की चर्चा शायद ही कहीं मिल पायेगी। इसी प्रकार इंग्लैंड का भ्रमण करने वाले किसी फ्रांसीसी के यात्रा विवरण में अंग्रेजों में इन गुणों की विद्यमानता का नाममात्र के लिए भी उल्लेख कठिन है। पर भारत की सच्चरित्रता के विषय में सब एकमत हैं। पर आज देश में क्या स्थिति हो गयी है? सत्य बोलने वाले, ईमानदारी बरतने वाले आज मूर्ख समझे जाते हैं। उन्हें ही सिर झुकाकर चलना पड़ता है। आज भले ही लोग मन्दिर जाते हों, तीर्थ यात्रा करते हों, तीर्थों में भीड़ भी बढ़ती जा रही है पूजा-पाठ भी करते हों पर आज वह आस्था शेष नहीं है। अतः भ्रष्टाचार भी कर रहे हैं, बेईमानी भी कर रहे हैं। घूसखोरी, मिलावट भी साथ-साथ कर रहे हैं। स्पष्ट है हिन्दू अध्यात्म को बाद देकर इसलाम एवं ईसाइयत के विकृत पैशाचिक अध्यात्म जिनके कारण भारत हजार वर्ष तक पद दलित रहा, गुलाम हुआ, देश विभाजित हुआ उनको मान्यता देकर उन्हें सरकारी एवं संवैधानिक सुविधा, संरक्षण देने के दुष्परिणाम आज के अलगाववाद, आतंकवाद, आगजनी आदि हैं। क्योंकि ये भारत को मातृभूमि नहीं भोग भूमि, शत्रु भूमि मानते हैं जिसे ईसाई ईसा की झोली में, मुस्लिम मुहम्मद की झोली में डालने के लिए लगे हुए हैं। और यह सारी दुनिया में अभूतपूर्व स्थिति है। इन्हें धर्मान्तरण से राष्ट्रांतर की खुली छूट मिली हुई है। जो दुनिया के और किसी देश में सम्भव नहीं है सिवाय भारत के। इनकी सारी योजनाएं और क्रियाकलाप और घोषणाएं खुली हुई हैं स्पष्ट है कोई छिपाव-दुराव नहीं पर हमारे सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी एवं प्रगतिवादी राजनेता इससे मुंह चुराये, देखना ही नहीं चाहें, आंख मूंद लें तो कोई क्या कर सकता है?

और बड़े मजे की बात है, जब से ईसाइयत में आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तब से उन्होंने ईसाई धर्म को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है, क्योंकि अन्धविश्वास और अज्ञान के अलावा और कोई आधार नहीं है इनके पास—न दार्शनिक, न नैतिक, न बौद्धिक, न समाजिक, न मनोवैज्ञानिक, न वैज्ञानिक आधार है। यह प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी, नारी विरोधी धाराएं हैं। न दैनिक जीवन की समस्याओं का ही कोई समाधान देती हैं। अतः आज के ज्ञान-विज्ञान के युग में किसी भी प्रकार से अपनी प्रासंगिकता सिद्ध नहीं कर पाती। आज के समय में इनकी सारी मान्यताएं बचकानी-सी, हास्यास्पद-सी, अनर्गल प्रलाप-

सी, प्रतीत होती हैं। अतः ईसाइयत से आस्था हटती जा रही है, उसे छोड़ते जा रहे हैं और हिन्दू धर्म के प्रति आस्था बढ़ती जा रही है, उसे अपनाते जा रहे हैं। और ऐसे देखें तो ईसा के पूर्व यूरोप में सूर्य पूजा ही प्रचलित थी, हिन्दू धर्म का प्रभाव था। सूर्य मन्दिरों, सूर्य पूजा को नष्ट करके यह ईसाइयत आगे बढ़ी है। और जो ईसाई मिशनरियां भारत में काम कर रही हैं वे तो भारत को यूरोप का बाजार बनाने, यूरोप का उपनिवेश बनाने, यूरोप का मानसिक गुलाम बनाने के लिए उद्यत हैं। इसलिए वे भारत को जड़मूल से नष्ट करने में लगे हैं। गाँधीजी ने ईसाइयत का गम्भीर अध्ययन किया था। वे ईसाइयत के घोर विरोधी थे। उनके सभी कार्यों को, गतिविधियों को प्रतिबंधित करना चाहते थे। आज उन्हें ही धर्म प्रचार के साथ धर्मान्तरण की सुविधा संविधान द्वारा दे दी गयी।

पर इसलाम में आत्ममंथन की प्रक्रिया आरम्भ होते ही मौत का फतवा जारी हो जाता है। इससे स्पष्ट है इसके अलावा अपने बचाव का और कोई आधार इनके पास नहीं है। इस आधार पर इसलाम अपने आप को बहुत दिन तक नहीं बचा पायेगा। जो हाल ईसाइयों का हो रहा है वही इसलाम का होने वाला है। क्योंकि दोनों के विचार और कार्य प्रायः समान ही हैं। यहां के 99 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू ही हैं। जिन्हें भय और लोभ के आधार पर मुसलमान बनाया गया था। अतः केवल पूजा पद्धति बदली है, और पूजा पद्धति के आधार पर भारत में कभी कोई भेदभाव नहीं हुआ। भारत में अनेकों पूजा पद्धति है। इसमें कोई समस्या नहीं है। इसके अलावा हिन्दू-मुसलमान में एक ही पूर्वजों का रक्त बह रहा है। अतः दोनों का इतिहास, महापुरुष, आस्था बिन्दु समान है। और अरब की दृष्टि से देखें तो ये सब शैव हैं, शिव के उपासक हैं। पैगम्बर मुहम्मद के पूर्व अरब में शिव पूजा प्रचलित थी, हिन्दू धर्म का प्रभाव फैला हुआ था। और आज भी सारे विश्व के मुसलमान हज यात्रा के माध्यम से प्रकारांतर से शिव पूजा ही करते हैं। मुस्लिम संगठन जमीयत उलेमा के प्रमुख नेता मुफ्ती मोहम्मद इलियास ने कहा कि भगवान शिवशंकर पहले पैगम्बर थे। बीती 19 फरवरी 1915 को श्रीराम की नगरी अयोध्या में उन्होंने यह भी कहा कि मुसलमान शिव-पार्वती की संतान हैं और इस देश के मुसलमान भी हिन्दुओं की तरह सनातनी ही है। उन्होंने दोहराया कि जैसे चीन में रहने वाला चीनी और जापान का हर व्यक्ति जापानी है वैसे ही हिन्दुस्तान में रहने वाला हर व्यक्ति हिन्दू है। अतः रहिम, रसखान, दाराशिकोह हरिदास आदि की तरह मुसलमान रहते हुए भी भारतीय संस्कृति को अपना सकते हैं जैसा कि हम इंडोनेशिया में देखते हैं। इंडोनेशिया मुस्लिम राष्ट्र होते हुए भी राम-कृष्ण को अपना National Hero मानते हैं। रामायण के कथानक पर नाटक खेलते हैं जो विश्व प्रसिद्ध हैं।

स्वतंत्र भारत मिली-जुली संस्कृति या गंगा-जमुनी संस्कृति की एक घातक राजनीति चल रही है। यदि इसलामी योगदान से यह 'मिश्रित संस्कृति' भारत में बनी, तो ऐसी कोई संस्कृति किसी और देश में क्यों नहीं बनी जहां-जहां इसलाम पहुंचा? उदाहरण के लिए मेसोपोटामिया (इराक), फारस (इरान), गंधार (अफगानिस्तान) में भी इसलामी सत्ता बनने से पहले महान् संस्कृतियां मौजूद थी। वहां मिश्रित संस्कृति क्यों नहीं बनी। इन देशों में इसलाम पूर्व सभ्यता के चिह्न तक कहां लुप्त हो गये? स्पेन से लेकर मध्य एशिया तक इसलाम का प्रसार हुआ, किसी भी देश में मिश्रित संस्कृति की बात सुनने को नहीं मिलती। इसलाम से पहले स्वयं अरब में एक विकसित सभ्यता थी। उसे मुहम्मद के बाद के सिर्फ बीस वर्षों में इसलाम ने रौंद डाला। यहां तक कि भारत से अलग हुए हिस्से पाकिस्तान और बंगला देश में भी मिश्रित संस्कृति के दर्शन नहीं होते। इन सब देशों में इसलाम पूर्व सभ्यता का कोई अवशेष तक नहीं रहा। और भारत में इसलाम के योगदान से मिश्रित संस्कृति की कहानी गढ़ दी गई है। बात निपट उलटी है। इसलामी प्रहार भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सका, मात्र घायल कर सका और यह मिश्रित चिह्न उसी के घाव हैं। प्रसिद्ध चिंतक शंकर शरणजी कहते हैं 'इस गंगा-जमुनी संस्कृति के नाम पर मुस्लिम समुदाय तो वेश-भूषा, खान-पान, भाषा-संस्कृति, जीवन चर्या, कानून, इतिहास, शिक्षा साहित्य, राजनीति हर मामले में मात्र इसलामी मानदण्ड से चलने के लिए स्वतंत्र है। जबकि हिन्दू समुदाय से आशा की जाती है कि वह हर विषय में सेक्युलर, हिन्दू विरोधी और आत्म-घृणा की हद तक सेकुलर रहे। यह पाखण्डी परिदृश्य केवल भारत की ही विशेषता नहीं हर उस देश में जहां इसलामी सत्ता नहीं है, इसलामी प्रतिनिधि अन्य लोगों से यही मांग करते हैं जो मांगें भारत में मिली-जुली संस्कृति या सेकुलरिज्म के नाम पर की जाती हैं। ये बातें हिन्दू बिना विचारे अपने भोलेपन में या राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए स्वीकारता रहता है। और मुसलमान षड्यंत्र पूर्वक हिन्दुत्व के सम्पूर्ण लोप करवाने के लिए ये पाखण्ड करते हैं। अतः इन सब तथ्यों से हमें सावधान रहना है। हमारी संस्कृति मिली-जुली मिश्रित संस्कृति नहीं वैदिक सनातन आर्य हिन्दू संस्कृति है। इसे ही विश्व के सुलझे मनीषी भविष्य की आशा की दृष्टि से देख रहे हैं। उन्हें खिचड़ी संस्कृति की कल्पना तक स्वीकार नहीं। उन्हें नवीन भारत नहीं जो स्वयं ही पथच्युत हैं उन्हें वेदोक्त गीतोक्त भारत ही अभिष्ट है।

ईसा स्वयं भारत का दीक्षित शिक्षित शिष्य होने, बौद्ध दर्शन, गीता, वेदान्त से प्रभावित होने से बाइबिल में कुछ प्रसंग है जो आधुनिक मन को प्रभावित करते हैं जैसे गिरि प्रवचन जो गीता के स्थितप्रज्ञ दर्शन से लिया गया है। ऐसे कुछ और भी प्रसंग हैं यथा पड़ोसी को अपने समान प्रेम करो।

ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।

God ने मनुष्य को अपने अनुरूप बनाया है।

सूई के छिद्र से ऊँट निकल सकता है पर धनी स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता। आदि-आदि।

और कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो बाइबिल के पुराने संस्करणों में तो नहीं है जैसे इस ब्यभिचारणी स्त्री पर पहला पत्थर वह फेंके जो जिसने स्वयं कभी कोई पाप न किया है। दूसरा प्रसंग जब ईसा को सूली पर लटकाया गया तो ईसा ने कहा है गॉड इन्हें क्षमा कर देना, इन्हें पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। ये दोनों प्रसंग बाइबिल के पुराने संस्करणों में नहीं है जो बाद में ईसा की महिमा बताने के लिए जोड़े गए हैं। इस प्रकार बाइबिल में कुछ प्रसंग है जो नैतिकता से सम्बन्धित है, और कुछ है जो बाद में जोड़े गए हैं जो हमारे मन को आकृष्ट करते हैं। भले ही ईसाइयत इन पर एक दिन भी न चली हो डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—

'ईसाइयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह है। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाए तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नीत्से (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

ये सारे प्रसंग Drawing Room में सजावट के लिए हैं। इनका जीवन में कोई स्थान नहीं है।

दूसरा इन प्रसंगों का कोई दार्शनिक आधार बाइबिल में नहीं है। जर्मन दार्शनिक पाल डूयसन कहते हैं इनका दार्शनिक आधार केवल वेदान्त के पास है। 'तत्वमसि' तुम वही हो जो परम मूल तत्त्व है। अतः इनका उत्तर वेदान्त में है बाइबिल में नहीं।

फिर ये प्रसंग स्वनिरोधी भी है।

एक तरफ कहना कि मनुष्य को God ने अपने अनुरूप बनाया है। ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। फिर मनुष्य को जन्म से पापी मानना, केवल पुरुष शरीर में ही आत्मा मानना नारी सहित अन्य सारी सृष्टि मनुष्य की सेवा, उपभोग,

मनोरंजन के लिए है। फिर मानव समाज को दो भागों में विभक्त कर देना जो ईसाइयत को मानता है वह विश्वासी, जो नहीं मानता है वह हिडेन (Hidden) है, इस लोक में निर्मम वध का और परलोक में अनन्त नरक में अनन्तकाल तक जलने का अधिकारी है।

ईसाइयत में न प्रकृति मार्ग को सम्यक् स्थान है क्योंकि काम उनके यहां शैतान है, विवाह भी न्यूनतम अपराध है। विवाहित स्त्री-पुरुष सहवास में अनेक विधि-निषेध है। और मां बनना भी अपराध है, गाली है। और न निवृत्ति की सम्यक् आधार है क्योंकि पादरी, विशप, सिस्टर सब Paid Servnet है और संत चर्च द्वारा प्रदत्त पदवी है जो किसी भी उपाय (साम-दाम-दण्ड-भेद) से अपने पथ का विस्तार करता है।

पर कुरान में तो ऐसा कोई प्रसंग भी नहीं जो हमारे मन को आकृष्ट करे। इसलामी इतिहास और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान शंकर शरण कहते हैं, मुहम्मद की कोई भी जीवनी उठाएं, उसमें उनके द्वारा लड़े गए युद्धों का वर्णन सविस्तार मिलता है। वे युद्ध भी अधिकांश दूसरों पर हमले और छल-बल-हिंसा द्वारा अधिकार जमाने के हैं, दूसरे द्वारा हमले पर बचाव के लिए नहीं। युद्ध और विस्तार के इस दृश्य की तुलना में मुहम्मद को कहीं दार्शनिक प्रवचन देते या लोगों को अपने विचारों से कायल कर लेने का कोई उदाहरण शायद ही मिलता है। उनको अपना दावा तलवार के बल पर ही मनवाया, उसी तरह आज भी इसलामी नेता, शासक आलिम प्रवक्ता सभी केवल हिंसा और हिंसा की धमकी के सिवाय कोई उपाय नहीं जानता। सच्चा ज्ञान धार्मिक वैज्ञानिक या दार्शनिक, वह स्वतः अपने बूते खड़ा होता है। जैसे—विज्ञान का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त, उपनिषद, गीता का ज्ञान स्वयं अपनी उपयोगिता सिद्ध करता रहा है। उसे दुनिया में फैलाने, पढ़ाने के लिए किसी लाठी या बंदूक दिखाने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी। और वह उपनिषद और गीता मानवता के साथ हजारों वर्षों से हैं। यह उसी की अपनी सामर्थ्य है।

पर हमारे सेकुलर, वामपंथी तथा मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादी राजनेताओं को इन सबसे कोई लेना-देना नहीं है। उन्हें तो किसी भी प्रकार से शासन पर पकड़ बनी रहे इससे अधिक उनकी सोच नहीं है, चाहे देश पतन के गर्त में ही क्यों न पड़ा रहे। अब आवश्यक है कि प्रबुद्धजनों का एक आयोग गठित हो जो यह विचार करे ईसाई और इसलाम कोई पंथ, धर्म या दर्शन है क्या? क्या दर्शन, धर्म, पंथ की कसौटी पर उतरता है और इनका स्वयं के संदर्भ में और विश्व के संदर्भ में क्या अवदान है। भारत के सदर्भ में क्या अवदान है। किस आधार पर पिछले सौ सालों से इन्हें हिन्दू धर्म के समकक्ष रखा गया। संविधान सभा ने किस आधार पर धर्मान्तरण की जो छूट ब्रिटिश राज्य में उपलब्ध नहीं थी वह स्वतंत्र

भारत में दोनों को प्राप्त हो गई। जो सुविधा इस देश के एकमात्र राष्ट्रीय बहुसंख्यक हिन्दू समाज को प्राप्त नहीं है यह इन्हें किस आधार पर प्राप्त हो गई। पिछले 70 सालों में इसका क्या नतीजा निकला इस पर खुलकर विचार होना चाहिए। तदनुसार आगे का निर्णय लिया जाना चाहिए व नीति निर्धारित होनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्दजी ने सावधान किया था अपने आध्यात्मिक आधार को छोड़ने का दुष्परिणाम तीन पीढ़ी जाते न जाते विनाश को प्राप्त होओगे। आज स्वामीजी का कथन सत्य सिद्ध हो रहा है। स्वाधीनता का 70वां वर्ष चल रहा है। आज देश स्वाभिमान के साथ खड़े होने के स्थान पर सब प्रकार से बिखर रहा है, जर्जर हो रहा है क्योंकि इस देश में उत्पन्न सभी मत-पंथ को जोड़ने वाला सूत्र हिन्दुत्व, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति थी जिसकी उपेक्षा का यह दुष्परिणाम है।

जिस संस्कृति के स्वर्णिम सूत्र से देश जुड़ा हुआ था। संस्कृति को, हिन्दू धर्म को बाद देने से न देश की एकता का आधार बचा और न सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय मैत्री का आधार बचा। जो पड़ोसी शिष्य देश भारत को अपना गुरु मानकर शीश नवाते थे आज वे ही आंख दिखा रहे हैं। लात-जूते से प्रहार कर रहे हैं।

जब से मोदी सरकार आयी है भारत-भारतीयता पर आस्थान्वित है। उसके लिए सचेष्ट है। गीता की महत्ता को समझ विश्व के राजनेताओं को गीता भेंट में दे रहे हैं। अमेरीका के राष्ट्रपति ओबामा को गीता भेंट देते हुए कहा—भारत के पास इससे बड़ा कोई उपहार नहीं है अमेरीका को देने के लिए। और अमेरीका के पास भी भारत से लेने के लिए इससे बड़ा कोई उपहार नहीं है। योग को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा दिलवाई। आज विश्व में 21 जून को योग दिवस के रूप में पालन किया जा रहा है। पड़ोसी देशों और सारे विश्व से सांस्कृतिक सम्बन्ध को पुनः सुदृढ़ करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर अब समस्या है कि पृथ्वीराज के समय एक जयचन्द था अब तो जयचन्दों रूपी की सेकुलरों, वामपंथियों एवं मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादियों के रूप में राजनेताओं की जमात खड़ी है जिन्हें हर बात में भगवाकरण की, हिन्दूकरण की बू आती है। पता नहीं इस देश का भगवाकरण, हिन्दूकरण, राष्ट्रीयकरण, मानवीकरण नहीं होगा तो क्या होगा? इस देश के ही नहीं सारे विश्व के सुलझे हुए नेता जिन्हें पूरे विश्व की हित चिन्ता है वे भारत और भारतीयता को सारे विश्व के लिए एक आशा की किरण के रूप में देख रहे हैं, एकमात्र विकल्प के रूप में देख रहे हैं। सारा विश्व भारत के आगे झुकना चाहता है, भारत को अपनाना चाहता है। क्योंकि हिन्दूकरण, भारतीयकरण का अर्थ मानवीकरण है जहां सारा विश्व एक नीड़ के तुल्य है, कुटुम्ब के तुल्य है, तीनों भुवन ही मेरा अपना ही घर है, अपना ही स्वरूप है, तब किसको लूटें, किसको ठगे किस पर अत्याचार, हिंसा, शोषण, पापाचार, व्यभिचार करें। इनकी दृष्टि नवीन भारत पर नहीं है जो स्वयं पथच्युत है,

उनकी दृष्टि प्राचीन भारत, वेदोक्त भारत, गीतोक्त भारत पर है। इसके लिए हमें इस दृष्टि से आगे बढ़ने की है। अतः विश्वमनीषा की भारतीयमनीषा से अपील है कि इससे पूर्व कि पश्चिमी जड़वाद की अन्धी दौड़ से हताश पश्चिम पुनः भारत के चरणों में नतमस्तक हो सके, हमें अपनी आध्यात्मिक परम्परा से ऊबकर जल्दबाजी में अपनी महान् सांस्कृतिक निधि को प्राचीन काल का साम्प्रदायिक कूड़ा-कचरा समझकर आग नहीं लगा देनी चाहिए क्योंकि आज के युग की प्रायः समस्याओं का यथा आर्थिक दासता, अतिकामुकता, पशुता, नग्नता, अश्लीलता, अनास्था, चारित्र्यहीनता, अनुशासनहीनता आदि का सम्यक् उपचार भारत के पास है। इसलिए योगीराज अरविन्द ने कहा है—'मानवता को यदि सचमुच महानतम जीवनमूल्य चाहिए जिसके आधार पर मानवता का त्राण हो सकता है तो वे जीवनमूल्य जगद्गुरु भारत की महान् मृत्युंजय संस्कृति ही प्रदान कर सकती है। संसार के दुःखी प्राणियों को संस्कृति की सुधा पिलाकर अमरत्व का वरदान भारत ही दे सकता है।' पर उसमें आगे बढ़ने में बाधक बनी है—सेकुलरों, वामपंथियों, मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादियों की जमात। इसको दूर करने के लिए संविधान में एक छोटे-से संशोधन की आवश्यकता है जो संवैधानिक मान्यता, संरक्षण और सुविधा इसलाम और ईसाई पंथ को मिली हुई जिनमें धर्म और आध्यात्मिकता की गंध भी नहीं है, जो न केवल त्रुटियों और विकृतियों को लिए हुए हैं वरन् पैशाचिकता को लिए हुए हैं। इतनी सुविधा और संरक्षण हिन्दू धर्म और संस्कृति को भी मिलना चाहिए। दुनिया के सभी देश अपने बहुसंख्यक समाज को, मूल राष्ट्रीय समाज के धर्म को संवैधानिक संरक्षण देते हैं। इसमें सभी ईसाई देश भी शामिल हैं जहां के लोग स्वतः ईसाइयत को छोड़ रहे हैं, और हिन्दूत्व से आकृष्ट हो उन्हें अपनाते जा रहे हैं। और हिन्दू धर्म जो सारे चराचर की हित चिन्ता करने वाला विश्व धर्म है, सारे विश्व के लिए एकमात्र आशा की किरण है इससे वंचित है। भारत विश्व का एकमात्र देश है जिसका संविधान यहां के बहुसंख्यक, मूल निवासी हिन्दुओं के धर्म-हिन्दू धर्म को अधिकृत वैधानिक संरक्षण नहीं देता। इस प्रकार हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति के विशेष संरक्षण के राजधर्म का पालन भारत में नहीं किया जा रहा है। इस विषय में प्रबुद्ध जनमत जागृत किया जाना चाहिए और वर्तमान संविधान के भाग 4 अनुच्छेद-38 में एक छोटा सा संशोधन लाया जाना चाहिए कि 'भारत का राज्य भारतीय संस्कृति का संरक्षण करेगा और समाज में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उत्कर्ष के लिए काम करेगा। इस प्रकार राजधर्म का पालन करता हुआ भारतीय राज्य भारत के गौरवशाली इतिहास को वर्तमान और भविष्य में भी चरितार्थ करना अपना धर्म मानेगा।

इस संशोधन का दूरगामी परिणाम होगा। भारत-भारतीयता के विकास में जो सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी एवं प्रगतिवादियों की जमात और

ईसाई-मुसलमान अवरोधक बनकर, रोड़े बनकर खड़े हैं, वे दूर हो सकेंगे। सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादियों की जमात, ईसाई और मुसलमानों के कारण ही विश्व में एकमात्र देश भारत ही ऐसा है जो स्वाधीनता के पश्चात् भी अभी तक न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना धर्म, न ही अपनी संस्कृति-अपनी जाति, न अपनी भाषा, न अपना इतिहास, न अपना अर्थतंत्र, न अपना शिक्षातंत्र, न अपना न्याय तंत्र, न रक्षा तंत्र , न अपने संविधान की भारतीय आधारशिला, न अपना राजतंत्र है, न महापुरुषों, न श्रद्धाबिन्दु, न तीर्थ, न राष्ट्रीय ग्रंथ, न राष्ट्रीय या जातीय लक्ष्य, कौन अपने है, मित्र हैं, राष्ट्रीय है, कौन पराये हैं, शत्रु हैं, अराष्ट्रीय है, कौन दण्ड के पात्र हैं, कौन पुरस्कार के पात्र हैं आदि के मानदंड तय नहीं हो पाए हैं। इस देश की पहचान राम से है या बाबर से, गाँधी से है या जिन्ना से? इन सबके अभाव में कोई राष्ट्र कैसे विकास कर सकता है और कैसे सुरक्षित रह सकता है। जो इन मानदंडों के विरुद्ध चलता है उनको कैसे दण्डित कर सकता है? और कैसे देश भक्ति की भावना पनपेगी।

इस संशोधन के दूरगामी परिणाम होंगे और भारत-भारत और भारतीयता की ओर बढ़कर पुनः वैभवशाली, गौरवशाली राष्ट्र के रूप प्रतिष्ठित हो सकेगा। भारत में सुख-शान्ति, मैत्री का भाव स्थापित होगा और सारे विश्व में भी सुख-शान्ति और सामंजस्य प्रतिष्ठित होगा।

शोपेनहावर एवं गांधीजी की भविष्यवाणी सत्य होती प्रतीत होती है। उन्होंने कहा था—'मैं विश्वास करता हूं कि जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य के अनुशीलन ने पुनर्जागरण किया था, उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य न रहा होगा।' गांधीजी कहते हैं—'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय निष्क्रिय विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।' सारा विश्व निरन्तर इस ओर बढ़ रहा है।

श्री मां कहती हैं—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगद्गुरु है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर ही निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिए।

ऋषि अरविन्द सनातन भारत निर्जीव नहीं है और न उसने अपने अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहे, वह जीवन्त है और उसे अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है।

शंकराचार्य जयन्ती

डॉ. राधाकृष्णन् ने टी.एन.बी. कॉलेज भागलपुर के प्रांगण में कहा था–

दुनिया में इक्कीस तरह की सभ्यतायें आई और चली गई। आज उनके कब्रों पर सियार भौंक रहे हैं। केवल भारतीय संस्कृति पूर्व में थी, आज भी है और आने वाले युगों में भी रहेगी क्योंकि यह सनातन पर आधारित है।

वस्तुतः हिन्दू धर्म पूर्ण धर्म है तभी हर युग के अनुकूल अपने को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। देश, काल, पात्र, परिस्थिति की मांग के अनुसार अपनी व्याख्या करने में समर्थ है। जितनी विपरीत परिस्थिति आती है उसमें उतनी पूर्णतम अभिव्यक्ति करने में समर्थ है।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियां होती है। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

भारतीय संस्कृति में ऐसी क्षमता है कि अपने देश में हर युग में ऐसे युग पुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् विश्व को प्रभावित किया है।

शंकराचार्यजी को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जाना होगा। काल का प्रवाह सदा एक-सा नहीं रहता। वह सीधी रेखा में नहीं, चक्राकार घूमता रहता है। उसमें उत्थान-पतन के दौर आते हैं जिसमें हम वस्तुओं, श्रेष्ठ विचार व परम्पराओं के रहते हुए भी किंकर्तव्यविमूढ़ता किंवा जड़ता में चले जाते हैं। वेद हमारे आधार हैं जिन पर हमारी संस्कृति टिकी हुई है, उसको लेकर जड़ता में चले गये। उससे उबारने के लिए भगवान बुद्ध आते हैं।

भगवान बुद्ध ने हिन्दू परम्परा से थोड़े भिन्न विचार रखे पर उसको चार आर्य सत्य कहा। हमारे यहां परम्परा को श्रेय दिया जाता है। स्वयं श्रेय लेने की परम्परा नहीं है। हमसे जो कुछ भी अच्छा होता है उसका श्रेय गुरुजनों को, पूज्यजनों को,

माता-पिता को देते हैं। हमसे त्रुटि हो जाती है तो उसके लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हैं। अतः भारत में स्वयं को श्रेय देने की परम्परा नहीं है जबकि पश्चिम में स्वयं को श्रेय देने की परम्परा है। भारत में परम्परा पर जोर है, पश्चिम में नवीनता पर जोर है। भगवान कृष्ण ने जो ज्ञान अर्जुन को दिया उसका श्रेय स्वयं पर नहीं लिया और न ही नवीनता का ही दावा किया। अभी अमेरीका ने नीम, हल्दी, तुलसी आदि पर पेटेन्ट करवा लिया कि इसकी खोज हमने की है जबकि बहुत पहले से हमारे ही आयुर्वेद के ग्रन्थ इस पर भरे पड़े हैं।

भगवान बुद्ध ने हिन्दू परम्परा से किंचित भिन्न विचार रखे पर श्रेय स्वयं को नहीं दिया। वरन् अत्यन्त विनय से कहा—मैंने प्राचीन ऋषियों के सनातन मार्ग को खोज निकाला है और उसे चार आर्य सत्य कहा।

दुःख है, दुःख के कारण हैं, दुःख के कारण का निवारण कर दुःख से मुक्त हो सकते हैं एवं दुःख से मुक्ति के लिए पतंजलि से किंचित भिन्न अष्टांग योग की विधि दी। समाज को व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों से हटाकर नैतिक जागरण का आन्दोलन चलाते हैं। समाज व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों में उलझा हुआ था पर सदाचरण से दूर था। इसलिए भगवान बुद्ध दार्शनिक वाद-विवादों पर मौन हो गए। सदाचरण के द्वारा स्वतः ही सत की उपलब्धि हो जायेगी इसलिए Be good, Do good का आन्दोलन चलाया।

भगवान बुद्ध वेद विरोधी नहीं थे। उनका वेद के उतने अंश से विरोध था जितने अंश में यज्ञ में पशु हिंसा का विधान था।

उन्होंने अपने बौद्ध संघ में ब्राह्मण धर्म को ही स्वीकारा, बोद्धों के लिए पृथक् से कोई सम्पूर्ण जीवन का विधान नहीं दिया, न ही किसी नये धर्म का आह्वान ही किया था। उन्होंने अपने पुत्र राहुल को आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन करके ब्रह्मचर्य से सीधे भिक्षुक (संन्यासी) की दीक्षा दे दी। अपने पिता को भी दीक्षा दे दी। तब उनकी पत्नी और माता ने भी उनसे दीक्षा मांगी क्योंकि उनके तीन आधार थे। पति-पिता और पुत्र सब भिक्षुक बन गए। अतः अब हमें भी दीक्षा दे दो। यह बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया। पर जब आम्रपाली दीक्षा के लिए आयी और उसको भी मना करने पर आनन्द ने विरोध किया। आप स्त्री-पुरुष में भेद कर रहे हैं। आप स्त्री को क्या मोक्ष की अधिकारी नहीं मानते हैं। तब बड़े दुःखी मन से कई प्रतिबन्धों और कड़े नियमों के साथ स्त्रियों को भी दीक्षा दी और उन्हें संघ में शामिल कर लिया। और दुःख के साथ कहा था अब यह आन्दोलन 500 साल में भ्रष्ट होकर समाप्त हो जाएगा नहीं तो शुद्धता से 1500 वर्ष चलता।

वर्ण व आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन करके उन्होंने सबको संन्यास का अधिकार दे दिया। और उन्होंने अपने अन्तिम समय में 'आत्मदीपो भव' की बात कही, तुम अपना प्रकाश स्वयं बनो। यह बात तो ऊँच साधकों (आनन्द आदि जैसों के लिए है) पर सबको चिन्तन के लिए खुली छुट दे दी, उस पर श्रुति, स्मृति एवं अनुभूति का नियंत्रण रखा नहीं। और प्रकरण ग्रंथों के अभाव में दुष्परिणाम आए। उनके मौन का मनमाना, गलत अर्थ लगाकर चार-चार नास्तिक मतवाद चल पड़ा। जिन दार्शनिक सिद्धान्तों से बचना चाहते थे, उनके नाम पर चार-चार दार्शनिक सिद्धान्त चल पड़े। जिस मूर्तिपूजा से बचना चाहते थे उन्हीं की मूर्तियां बनाकर भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया और देश-विदेश में इतनी मूर्तियां बनायी जिससे अरबी भाषा में बुत शब्द बन गया। और जिस कर्मकाण्ड से बचना चाहते थे उन कर्मकाण्डों का विस्तार हो गया। मूर्ति स्थापित होते ही कर्मकाण्डों का विस्तार हो गया। क्योंकि कोई भी धार्मिक आन्दोलन बिना दार्शनिक आधार भूमि के नहीं चल सकता। इन्द्रियां मन द्वारा नियंत्रित होती है, मन बुद्धि के द्वारा, बुद्धि नैतिकता के द्वारा और नैतिकता आत्मा यानी अध्यात्म के द्वारा। अध्यात्म या आत्मा की जंजीर पकड़े बिना नैतिकता में स्थिर नहीं रह सकते। पर भगवान बुद्ध के मौन, आत्मदीपो भव के भाव एवं प्रकरण ग्रन्थ का अभाव ने, मौन और आत्मदीपो भव का मनमाना अर्थ निकाल कर चार-चार नास्तिक मतवाद चल पड़ा। जबकि भगवान बुद्ध का चरित्र ऐसे आस्तिक का चरित्र है जो भी उनके सम्पर्क में आया उसकी नास्तिकता सदा के लिए घुल गई। ईश्वर के विषय में आपके मौन का तात्पर्य केवल यह है कि अनादि अनंत ब्रह्म का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। वैदिक ऋषियों ने भी उस निरुपाधिक ब्रह्म के वर्णन में अपनी हार मानकर 'नेति-नेति' कहा।

भगवान बुद्ध स्वयं क्षत्रिय राजपुत्र होने से राजा आकृष्ट हुए और बौद्ध धर्म को राज्याश्रय मिल गया। इससे बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान बहुत बढ़ गया, भोग सामग्री का ढेर आश्रमों में लग गया।

सहज के प्रति सबका आकर्षण होता है क्योंकि आश्रमों में स्वादिष्ट भोजन से सबकी पेट पूजा और पैर पूजा की सहज पूर्ति होने से तब युवक-युवतियों के दल के दल, झुण्ड के झुण्ड बौद्ध संघों में शामिल होने लगे और उनके मठ आमने-सामने बन गए। दीर्घकाल तक वे संयम का पालन नहीं कर सके, गृहस्थाश्रम जैसी बीच की कड़ी और स्वयं बुद्ध के न होने से वामाचार की ओर झुके जिसमें पंचमकार का सेवन सहज मान्य था, फलतः बौद्ध संघ व्यभिचार के अड्डे बन गए।

वामाचार की प्रवृत्ति से सिद्धि और कापालिकों के संघ बन गए और राजा लोग सैन्य शक्ति की उपेक्षा करके सिद्धों-कापालिकों पर भरोसा करने लगे, उनकी सेना पालने लगे। और विदेशी आघात के समय वे रक्षा नहीं कर पाये।

राज्याश्रम पाकर बौद्ध धर्म विश्व के अनेक देशों में फैल गया। इससे बौद्ध धर्म अपने को बड़ा, वैदिक धर्म को छोटा मानने लगे, उनसे ईर्ष्या करने लगे, वेदों की अनावश्यक रूप से आलोचना करने लगे, उनसे घृणा करने लगे। वैदिकों का उच्छेद हो जाए यह भाव पालने लगे। इस दुर्बलता को विदेशी देशों ने ताड़ लिया। और वे स्वयं को बौद्ध घोषित कर देते थे। और बौद्ध लोग वैदिक शासकों को पराजित करने में उन विदेशियों का साथ देकर देश-द्रोह का आश्रय लेने लगे।

इस प्रकार बौद्ध धर्म अपने कल्याणकारी रूप को छोड़कर विकृत रूप धारण कर लिया और अपने मातृधर्म का ही शत्रु बन गया जिससे अब तक पोषण मिलता आया था। दोनों साथ-साथ देश-विदेश में बढ़ रहे थे। अब अपने मातृधर्म से द्वेष कर के स्वयं अपने और देश के पतन का, पराजय मार्ग खोल दिया। तो इस चुनौती को स्वीकारते हुए कुमारिल भट्ट को पाते हैं। काशी में एक बार वे सड़क पर जा रहे थे तो उनके गाल पर गरम-गरम आंसू पड़े। सुन्धवा रानी बौद्धों के उत्पात एवं वेदों की उपेक्षा और दुर्दशा देखकर रो रही थी। चिन्ता कर रही थी कि वेदों की कौन रक्षा करेगा। तब रानी को आश्वस्त कर कुमारिल भट्ट ने प्रतिज्ञा की कि वेदों की रक्षा मैं करूंगा। तब उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए शिखा-सूत्र का त्याग कर बौद्ध बनकर बौद्ध आचार्यों की सेवा में उपस्थित हुए। रानी ने उन्हें 'बौद्ध संघ में प्रवेश दिला दिया बौद्ध धर्म के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने बौद्धों को शास्त्रार्थ में ललकारा और पुनः वेद व वैदिक धर्म की पताका लहरानी प्रारम्भ हुई। कुमारिल भट्ट कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् थे और उनके शिष्य मदन मिश्र भी। वेद के दो विभाग है कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड पूर्वांग है, इसकी स्थापना तो हुई, पर वेद का उत्तरार्ध ज्ञानकाण्ड अभी भी उपेक्षित था। दोनों मिलकर वेद पूर्ण होता है। उसी समय भगवान शंकराचार्य का आविर्भाव होता इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने के लिए।

भगवान् शंकराचार्यजी ने भगवान् बुद्ध को तो भगवान् विष्णु का करुणावतार के रूप में स्वीकारा पर बौद्धों को नहीं स्वीकारा। क्योंकि हमारे यहां देव भक्ति और राष्ट्रभक्ति को कभी पृथक् नहीं किया गया है। हमारे यहां वेदकाल से आज तक देवभक्ति और देशभक्ति की अखण्ड अविचल परम्परा रही है। देवभक्ति के नाम पर देशद्रोह को कभी भी स्वीकार नहीं किया है। शंकराचार्यजी ने बौद्धों से कहा कि शक, हूणों, कुशाणों ने बौद्ध धर्म इसलिए नहीं स्वीकारा कि वे भगवान बुद्ध के द्वारा अपनी आत्मा को, अपने जीवन और चेतना को प्रकाशित करना चाहते थे वरन् वे तो इस देश में गुलामी थोपने के लिए आपका सहयोग चाहते थे। इसलिए आपको राजनीतिक कुटनीति का शिकार बनाया। अधिकांश बौद्धों को पुनः व्यापक वैदिक धर्म की, मातृधर्म के अंक में समा लिया है और कुछ जो कट्टर थे विदेश पलायन कर गए। इस प्रकार बौद्धों के रूप में दण्डित कर पुनः वैदिक,

सनातन मातृधर्म में समा लिया। विश्व के विद्वानों को आश्चर्य होता है, अहिंसा के लिए बौद्ध दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त भूमि भारत में ही बौद्ध नाम शेष हो गए और विश्व में बढ़ते रहे। कालान्तर में भारत में रहे-सहे बौद्ध मठ इसलाम के आक्रमण से नष्ट हो गए। मुसलमानों ने समान रूप से बौद्ध और हिन्दू मठों पर आक्रमण करके नष्ट किया। पर हिन्दुत्व में आस्था रहने से हिन्दू मठ-मन्दिर पुनः उठ खड़े होते थे। लेकिन बौद्धों पर आस्था शेष नहीं रहने से वे पुनः उठ नहीं पाये और वे सदा के लिए नष्ट हो गए।

इस प्रकार अपने देश में मातृधर्म से द्रोह को, धर्म पंथ या मजहब के नाम पर देश द्रोह को कभी सहा नहीं, संरक्षण नहीं दिया वरन् समुचित रूप से दण्डित किया। चाहे परदेशी रावण हो, चाहे स्वदेशी दुर्योधन हो, चाहे इन्द्र पुत्र जयन्त हो, चाहे बौद्ध धर्मावलम्बी हो। यह स्थिति प्राचीन और मध्यभारत में पाते हैं। स्पष्ट है धर्म के नाम पर राष्ट्र द्रोह अक्षम्य अपराध था। आज के सेकुलर भारत की बात मैं नहीं कर रहा हूं। आज के सेकुलर भारत में स्थायी रूप से शत्रुभावापन्न इसलाम और ईसाइयत को हम समझना ही नहीं चाहते। इनके राष्ट्रद्रोह को अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ फूट डालो और शासन की नीति के तहत और वे स्वयं ईसाई होने से ईसाइयत के अपराध तो उनके लिए अपराध नहीं वरन् उनके शासन के लिए आवश्यक थी। इन कारणों से वे बढ़ावा देते रहे, गांधीजी भारत के मुसलमानों का राष्ट्रद्रोह को भारतीय राष्ट्रीय धारा में लाने के भाव से सहते रहे। और नेहरू स्वयं इसलाम, ईसाइयत एवं समाजवादी भावापन्न थे और इन्हें तो इस देश की मूल चेतना हिन्दुत्व से ही चिढ़ थी, घृणा थी। इसलिए इन तीनों के राष्ट्रद्रोह को सहते रहे और संविधान में उल्टी गंगा बहाई गई। नेहरू तो कम से कम Accidently हिन्दू तो थे पर सोनियाजी का तो वे हिन्दुत्व से कहीं दूर का भी रिश्ता नहीं है। सोनियाजी स्वयं ईसाई और मुसलमानों एवं कम्यूनिस्टों से गठजोड़ कर रखा है। अतः इन तीनों द्वारा जो अपराध होते हैं वह अपराध की श्रेणी में आते ही नहीं, वे हर स्थिति में पुरस्कार की श्रेणी में आते हैं। इसलिए इसलामी आतंकवादी विदेशों में उनकी सरकार द्वारा पकड़े जाकर दण्डित होते हैं तो हमारे पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह को नींद नहीं आती। मुसलमान अपराध पर अपराध करते रहे उसके बाद भी भारत के सभी प्राकृतिक संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है ऐसा पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह का मानना है। और ये सब धर्म निरपेक्षता के नाम पर, अल्पसंख्यकों के नाम पर चल रहा है, हिन्दू धर्म और देश एक मजाक की वस्तु बनकर रह गयी है। पर प्राचीन भारत में धर्म या पंथ के नाम पर राष्ट्रद्रोह स्वीकार नहीं था।

गत 1000 वर्षों से हम स्वयं धर्माभास के शिकार होकर जिनमें धर्म और अध्यात्म की गंध भी नहीं उनके राष्ट्रद्रोह को सहते रहे हैं, और अंग्रेजों के काल में

इसको बढ़ावा अंग्रेजों से मिला—गांधीजी भारत की राष्ट्रीय धारा में लाने के लिए बिना उनकी मानसिकता और मनोविज्ञान को समझे और नेहरू तो स्वयं उनके रंग में रंगे थे। और यही परम्परा अब तक चली आ रही है, एकाध पार्टी छोड़कर सत्ता और वोट के अलावा और कोई दृष्टि ही नहीं है। शंकराचार्य को पुनः आदर्श मानकर ही इससे उबर सकते हैं।

सारे देश में भ्रमण कर पुनः वैदिक शासन की प्रतिष्ठा का, सांस्कृतिक ऐक्य संवर्धन के लिए लुप्त तीर्थ परम्पराओं को जो बौद्धों के प्रभाव से निष्प्राण हो गए थे उन्हें पुनः पुनर्रुजीवित किया, मन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं सारे देश का सांस्कृतिक ऐक्य में बांधने के लिए देश के चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए—बद्रिकाश्रम, रामेश्वर, पुरी एवं द्वारका में। ऐसा क्यों किया?

क्योंकि भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है, यूरोप में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई होने से 20 राष्ट्र बने हुए हैं, और नये राष्ट्र बनने की सम्भावना सदा बनी रहती है जबकि उनका मजहब और संस्कृति एक है।

अंग्रेजों ने यह दुष्प्रचार किया कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था, क्योंकि इसमें राजनीतिक एकता नहीं थी अब अंग्रेजों की कृपा हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई मिलकर एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है। इस दुष्प्रचार में कम्युनिष्ट भी शामिल थे और आज भी है।

पर बाद में केरल के कम्युनिष्ट मुख्यमंत्री अच्युत मेनन अपनी भूल सुधारते हुए 1985 में मलयाली पत्रिका कॅरिअर में लेख लिखते हैं—जिसमें कहते हैं जिस समय कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई उस समय हमने कहा था भारत एक राष्ट्र कभी नहीं रहा क्योंकि यहां राजनीतिक एकता नहीं थी। यह हिन्दुस्तान एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा कहना गलत था। अब हमें यह अनुभव होने लगा है कि भारत एक राष्ट्र ही है। यहां राजनीतिक एकता भले ही न रही हो, किन्तु सांस्कृतिक एकता थी। यहां अलग भाषायें थी, इसलिए अलग-अलग राष्ट्र थे ऐसा भी हमने सोचा। लेकिन अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है कि अलग-अलग भाषायें रहते हुए भी भाव एक था और सांस्कृतिक एकता यहां रही है और अगर वह सांस्कृतिक एकता न होती तो क्या केरल से निकल कर आदि शंकराचार्य सारे भारत में भ्रमण करते हैं और हिन्दुस्तान के चार कोनों में चार मठों की स्थापना करते हैं। यदि सांस्कृतिक एकता न होती तो चार मठों की स्थापना न की गई होती। और अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है जिसको हम तीर्थ कहते हैं वह वास्तव में राष्ट्रीय एकात्मता के केन्द्र हैं। सांस्कृतिक एकता पर आधारित यहां के राष्ट्रीयत्व का आधार यदि कोई हो सकता है तो यह है कि हिन्दू धर्म (फेथ) ही हो सकता है। हिन्दू धर्म की अपनी कल्पना

को स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं हिन्दू मजहब की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे हिन्दू धर्म में केवल वैदिक लोग ही नहीं जैन-बौद्ध आदि के बाकी लोग भी आते हैं। याने भारत में उत्पन्न सभी मतों-पथों का समावेस इसमें है।

शंकराचार्य के काल के पूर्व तक संन्यास संगठित नहीं था। संन्यासियों के मठ नहीं होते थे। वे परिव्राजक होते थे। तीन दिन से अधिक कहीं ठहरते नहीं थे। पर शंकराचार्यजी के समय वैदिक सनातन हिन्दू धर्म पर बौद्धों द्वारा निरन्तर आघात हो रहा था। बौद्धों ने अपनी प्रायः सारी सामग्री वेदों से ग्रहण की और फिर वेदों को ही नकारने लगे। पहले परम्परागत रूप से वैदिक सनातन धर्म की रक्षा होती आयी थी। कालान्तर में गृहस्थ लोग ज्यादा प्रवृत्ति में सांसारिकता में डूब गए तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बौद्धों और जैनियों की तरह दुर्गों की आवश्यकता थी, जहां हिन्दू धर्म वैदिक धर्म के रक्षक निर्माण होंवे और वे समाज में प्रकाश स्तम्भ के समान स्थिर रह कर समाज को प्रेरणा देते रहे, इसके लिए युवा संन्यासियों की आवश्यकता थी, वृद्ध, जर्जर संन्यासियों से यह काम सम्भव नहीं था। इसलिए ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यास की परम्परा स्थापित की। संन्यास को संगठित किया। शस्त्रधारण की आवश्यकता थी इसलिए नागा संन्यासियों की दशनामी अखाड़ों की परम्परा स्थापित की ताकि हिन्दू धर्म की रक्षा कर सके।

भारत में उद्बुद्ध मत-पथों के आपसी वैर-विरोध का शमन कर, उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए पंचायतन याने पंचदेवों की पूजा प्रचलित की।

फिर हम सीधे अद्वैत के सर्वोच्च शिखर पर नहीं चढ़ सकते। इसलिए भी पंचदेव उपासना पद्धति प्रचलित की, अनेक स्रोतों की रचना की। छोटे-बड़े अनेक प्रकरण ग्रन्थों की रचना की ताकि भ्रान्ति का कोई अवसर न रहे।

अद्वैत दर्शन के सर्वोच्च सिद्धान्त को इसकी दार्शनिक मान्यताओं का निचोड़ एक पंक्ति में रख दिया—'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैनापरः—ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है, जीव ब्रह्म से कदापि भिन्न नहीं है। ये चार सूत्र श्री शंकर के अद्वैत दर्शन के आधार स्तम्भ हैं।

जीव ही ब्रह्म है, ब्रह्म या ईश्वर सातवें आसमान में नहीं जैसा कि ईसाइयत और इसलाम मानती है। वह तो हमारे अन्दर ही समाया हुआ है और उसको पाना ही सच्चा स्वराज्य है, स्वतंत्रता है, मुक्ति है, स्वास्थ्य है अन्य किसी की गुलामी या अधीनता स्वीकारना गुलामी है।

और मात्र चार छोटे-छोटे सूत्र के आधार पर पूरे बौद्ध दर्शन को परास्त कर दिया। वे सूत्र हैं—

कोई भी कल्पना (या सर्जना) निराधिष्ठान नहीं होती है।

बाध असाक्षिक नहीं होता।

उत्पत्ति असन्नमूलक नहीं होती।

नाश निरवयव नहीं होता।

इन चारों सूत्रों के आधार पर बौद्ध धर्म के सर्वक्षणिकम् का खंडन किया। क्षणिकम् अर्थात् सबकुछ क्षणिक एवं परिवर्तनशील है। इससे बौद्धों ने अनात्मवाद का सिद्धान्त बनाया कि अमर आत्मा कुछ है ही नहीं। यह केवल चेतन की धारा है जो स्मृति की शृंखला से जुड़ी हुई है। प्रत्येक घटना स्वतंत्र बिन्दु के समान है जो अगले बिन्दु से, स्मृति की शृंखला से जुड़ जाता है और इस प्रकार की घटनाओं की शृंखला स्मृति की बंधी हुई धारा को मैं कहा जाता है। वास्तव में मैं या आत्मा की कोई सत्ता नहीं है।

और आज का आधुनिक विज्ञान भी अद्वैत वेदान्त के निकट आकर खड़ा हो गया है।

समग्र सनातन धर्म की, समग्र वेद मन्त्रों की व्याख्या एवं भारतीय संस्कृति की समग्र अभिव्यक्ति किसी विचार से हो सकती है तो वह अद्वैत विचार ही है।

चिन्तन के क्षेत्र में इससे ऊंचा विचार न आज तक हुआ और न आगे होने की सम्भावना है। वैदिक सनातन धर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामरस्य को लेकर चलता है। अतः शंकराचार्यजी ने कर्मकाण्ड, निष्काम कर्मयोग एवं उपासना को यथोचित महत्त्व देते हुए ज्ञानकाण्ड की स्थापना की। प्रवृत्ति को महत्त्व देने के लिए पंचदेवों की उपासना, प्रारम्भ करवायी, अनेक देवी-देवताओं के स्रोतों की रचना की।

भगवान कृष्ण के पश्चात् ऐसा व्यक्तित्व वाला दूसरा महापुरुष आदि शंकराचार्यजी हुए हैं जो एक साथ ज्ञानी, समाज संगठक, समाज संस्कारक, दूर दृष्टि सम्पन्न लोक संग्रह के आदर्श मूर्ति थे।

आज विज्ञान की चुनौती के समक्ष कोई खड़ा है तो वैदिक सनातन धर्म ही जिसका समग्र प्रतिनिधित्व अद्वैत मत ही करता है अन्य आंशिक ही कर पाते हैं।

वैदिक सनातन धर्म प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के सामरस्य को लेकर चलता है। पर पुनः मध्यकाल में प्रवृत्ति की उपेक्षा होने लगी निवृत्ति की प्रधानता हो गयी, इसी आधार पर मध्ययुग के संतों में देश-समाज की उपेक्षा की। विदेशी आक्रान्ता इसलाम के प्रति वे मूक रहे और अपनी व्यक्तिगत साधना को ही, संसार त्याग को ही प्रमुखता दी।

इस निवृत्ति के बादल से निकालने का कार्य आधुनिक समय में लोकमान्य तिलक और स्वामी विवेकानन्दजी, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. राधाकृष्णन्, स्वामी शिवानन्द आदि ने किया।

रामकृष्ण परमहंस देव

ईसा की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में जड़वाद ने फिर सिर उठाया और इस बार उसका आक्रमण ऐसा प्रबल था अस्त्र ऐसे अमोघ और ऐसे सबल थे कि भारत के अध्यात्म को उसके सामने सिर झुका देना पड़ा। हमारी आंखें इस भौतिक प्रकाश के सामने चौंधिया गईं और हमने अपने प्राचीन तत्त्वज्ञान, प्राचीन परम्परा और आदर्शों को त्यागना प्रारम्भ कर दिया।

ऐसे समय पुनीत भारत-भूमि की रक्षा के लिए अनेक महापुरुषों का आगमन हुआ जिसमें राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द, केशवचन्द्र सेन आदि थे। ये यूरोपीय जड़वाद के आक्रमण एवं ईसाइयों के सुख से अपने धर्म की निन्दा सुनकर उसकी रक्षा के लिए आगे आए। पर वे स्वयं समग्र हिन्दूत्व को समझने में समर्थ न थे। न समग्र हिन्दुत्व को रक्षणीय ही समझा।

आर्य समाज और ब्रह्म समाज बड़े ही प्रबल सांस्कृतिक आन्दोलन थे। किन्तु उनमें कुछ दुर्बलताएं भी थी। आर्य समाज के प्रवर्तक बाल ब्रह्मचारी निरीह संन्यासी प्रचण्ड तार्किक और उद्‌भट विद्वान् थे और उनके व्यक्तित्व में बौद्धिकता अत्यन्त प्रमुख थी। ब्रह्म समाज में तार्किकता अधिक नहीं थी तथा भक्ति और उपासना का भी उसमें अच्छा प्रचार था। ब्राह्मसमाजियों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार ही था किन्तु अखाड़ा उन्होंने धर्म को चुना था पर अपने धर्म में अचल विश्वास नहीं होने के कारण वे अधिकाधिक ईसाइयत की ओर स्वयं लुढ़कते रहे थे। वस्तुतः उनका हिन्दू-ईसाई का विश्वास था।

ऋषि दयानन्द ने उतने ही हिन्दुत्व को रक्षणीय माना जिसका आख्यान वेदों में मिलता है अर्थात् जिसमें मूर्तिपूजा नहीं है, जिसमें तीर्थ-व्रत-अनुष्ठान और श्राद्ध पद्धति का अभाव है जिनमें अवतारवाद स्वर्ग, नरक देवी, देवता कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार राममोहन राय ने उपनिषदों का पल्ला थामा और वे अद्वैत को लेकर बैठ गए। किन्तु हिन्दुत्व इतना ही नहीं है। उसके अन्दर उन समस्त विश्वासों का भी स्थान है जो अपार हिन्दू जनता के हृदय में घर किए हुए हैं। सच पूछिये तो दयानन्द और राममोहन राय ने जिस हिन्दुत्व की रक्षा की

वह हिन्दुत्व का एक अंश मात्र था। हिन्दुत्व का विशाल भाग उनसे अछूता ही रह गया।

हिन्दुत्व का उससे अधिक प्रतिनिधित्व श्रीमती एनी बीसेंट ने किया। क्योंकि वे शास्त्र पुराण, स्मृति और गीता, हिन्दुओं के देवी-देवता और उनके द्वारा पूजित अवतार एवं यज्ञ और परलोक सब की ओर से समान उत्साह से बोल रही थी।

अतः समग्र हिन्दुत्व की रक्षा एवं व्याख्या रामकृष्ण परमहंसजी के आर्विभाव से ही हो सकी।

दयानन्द, राममोहन राय तथा केशवचन्द्र से रामकृष्ण अनेक बातों से भिन्न थे। दयानन्द भारतीय परम्परा के उद्‌भट पंडित थे। और ब्रह्म समाजी नेता अंग्रेजी ढंग के विद्वान् थे। किन्तु रामकृष्ण देव बहुत कुछ अनपढ़ मनुष्य थे। दयानन्द, राममोहन राय और केशवचन्द्र सेन मैदान में इसलिए आए थे कि विधर्मियों की आलोचना से चोट लगी थी। किन्तु रामकृष्ण को किसी भी धर्म से कोई आक्रोश नहीं था। दयानन्द, राममोहन और केशवचन्द्र संस्कृति के आन्दोलनकारी नेता थे, किन्तु रामकृष्ण को आन्दोलन से कोई सरोकार नहीं था। वे अपनी बात सुनाने के आश्रम से बाहर नहीं गए न हिन्दुओं से उन्होंने कभी कहा कि तुम्हारा धर्म खतरे में हैं।

जब आस्तिक और नास्तिक, हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आपस में इस प्रश्न पर लड़ रहे थे कि किसका धर्म ठीक है और किसका धर्म नहीं, तब रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मों के मूल तत्त्व को अपने जीवन में साकार करके, मानों सारे विश्व को यह संदेश दिया कि धर्म को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओं, उसे सीधी अनुभूतियों का विषय बनाओं। सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने वाले अनेक मार्ग हैं। उन्होंने हिन्दुत्व के सभी मार्गों के साथ इसलाम एवं ईसाइयत की भी साधना करके यह सिद्ध कर दिखाया कि धर्मों के रूप में तो केवल बाहरी रूप है। उनसे मूल तत्त्व में कोई फर्क नहीं पड़ता। साधन और मार्ग अनेक हैं पर सत्य एक है। इस सनातन हिन्दू तत्त्व को पुनः साकार कर दिखाया। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' को अपने जीवित अनुभूति से साकार कर दिखाया। जल तत्त्व एक है पर उस तक पहुंचने के लिए घाट अनेक हो सकते हैं जल को भी अनेक नामों से पुकार जा सकता है। तत्त्व एक है पर पहुंचने के मार्ग भिन्न है अपने-अपने बौद्धिक, मानसिक, नैतिक विकास के अनुसार। सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म, षड् दर्शन का एक साथ अस्तित्व है। न करोड़ों मुख से करोड़ों युगों तक न ब्रह्म का व्याख्यान हो सकता, इसलिए रामकृष्ण परमहंस कहते हैं मुंह से ब्रह्म को झूठा नहीं किया जा सकता। सत्य की प्रयोगशाला सदैव खुली रही इसके लिए किसी को कभी भी सजा नहीं भुगतनी पड़ी।

भारतीय जनता की हजारों-लाखों वर्ष पुरानी धर्म साधना रूपी लता पर रामकृष्ण सबसे नवीन पुष्प बनकर चमके, उन्हें देखकर भारतीय जनता को विश्वास हो कि भारत में धर्म की अनुभूति करने वाले तथा अनुभूति को जगाने वाले जिन अनन्त ऋषियों और सन्तों की गाथाएं सुनी जाती है वे झूठी नहीं हैं।

रामकृष्ण में ही आकार वे देवी-देवता पौराणिक आचार और अनुष्ठान धर्म के विविध साधनाएं एवं जनता के अनेक धार्मिक विश्वास भी सत्य सिद्ध हुए जिनकी ओर से बोलने का साहस किसी भी सुधारक को नहीं हुआ था।

रामकृष्ण न तो अंग्रेजी जानते थे, न वे संस्कृत के ही जानकार थे, न वे सभाओं में भाषण देते थे, न अखबारों में वक्तव्य। उनकी सारी पूंजी उनकी सरलता और उनका सारा धन महाकाली का नाम स्मरण-मात्र था। न वे किसी को पढ़ाने गये न किसी से पढ़ने गए। चाहे गुरु हो या शिष्य सब स्वयं उनके पास समयानुसार पहुंचते रहे हैं। वे किसी से तर्क वाद-विवाद नहीं करते थे। वे वाद-विवाद से परे थे।

एक दिन केशवचन्द्र, रामकृष्ण के पास आए। केशवचन्द्र सेन ने बड़े तर्क दिये कि परमात्मा नहीं है। रामकृष्ण सुनते रहे। बड़े प्रफुल्लित हुए, बड़े आनन्दित हुए। छाती से लगा लिया केशवचन्द्र सेन को कहा कि बड़ी कृपा की तुम आए। मैं तो गांव का ग्रामीण हैं। बुद्धि का ऐसा वैभव कभी देखा नहीं। तुम्हें देखकर ही सिद्ध हो गया कि परमात्मा है। तुम जैसा फूल खिलेगा उसके बिना!

वे सिद्ध करने आए थे कि परमात्मा नहीं है। और उन्होंने बड़े स्पष्ट तर्क दिये थे। केशवचन्द्र बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। हजारों सालों में कभी वैसा प्रतिमा का आदमी होता है। बारीक तर्क दिए थे, जिनका उत्तर मुश्किल था। लेकिन रामकृष्ण ने उनका उत्तर दिया ही नहीं।

रामकृष्ण तो ऐसे प्रफुल्लित हुए कि बोले थोड़ा प्रमाण बाकी था, सो तुम्हें देखकर वह भी मिल गया। तुम हो सकते हो, संसार के पदार्थ नहीं। जब चेतना की ऐसी प्रक्रिया हो सकती है और तर्क की ऐसी बारीकी। तो संसार का सार पदार्थ नहीं, पत्थर नहीं है, यहां चेतना छिपी है। मेरे लिए परमात्मा का प्रमाण हो गया।

केशवचन्द्र हारे हुए लौटे। रात अपनी डायरी में लिखा कि यह आदमी जीत गया। इसको हराना मुश्किल है। धार्मिक आदमी को हराना मुश्किल है। क्योंकि धार्मिक आदमी तर्क देता ही नहीं। हरा उसे सकते हैं जो तर्क देते हो। क्योंकि तर्क तोड़े जा सकते हैं। तर्क तोड़ने में थोड़े और बड़े तार्किक होने की जरूरत है, और तो कुछ भी नहीं। बस थोड़ी सी कुशलता चाहिए।

प्रसिद्ध वकील हुए विश्वनाथ दत्त के तेजस्वी पुत्र नरेन्द्रनाथ दत्त के पाश्चात्य दर्शन के गम्भीर अध्ययन से इस तरुण के भीतर कई शंकायें और नास्तिकता के बीज अंकुरित होने लगे थे। वह प्रखर बुद्धि वाला नवयुवक नरेन्द्रनाथ सत्य की खोज में केशवचन्द्र सेन तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास पहुंचे तथा उनकी भुजा झंझोड़ कर पूछा था—क्या आपने ईश्वर देखा है? उनकी ओर से समाधान कारक उत्तर न प्राप्त होने पर उस बुद्धिवादी युवक की मानसिक कटुता और भी बढ़ गयी। दिनकर के शब्दों में नरेन्द्र बाबू की इस नास्तिकता के भीतर एक जिज्ञासा काम कर रही थी जो पैगम्बरों में उठा करती है, अवतारों और धर्म संस्थापकों में जगा करती है। वस्तुतः नरेन्द्रनाथ जब रामकृष्ण परमहंस की शरण में आए तब नवीन भारत ही प्राचीन की शरण में आया था। भगवान रामकृष्ण परमहंस धर्म के जीते-जागते स्वरूप थे। रामकृष्ण और नरेन्द्र का मिलन श्रद्धा और बुद्धि का मिलन था, रहस्यवाद और बुद्धिवाद का मिलन था। कदाचित रामकृष्ण और विवेकानन्द के मिलन में पूर्वी और पश्चिमी जगतों का ही मिलन हुआ था।

हृदय परिवर्तन

जिस प्रकार जीवन की एक ही घटना ने रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया। एक कामांध नवयुवक को गोस्वामी तुलसी दास बना दिया। एक पुच्छ के राजकुमार को बंदा वैरागी बना दिया। बालक मूलशंकर को स्वामी दयानन्द बना दिया। एक पथभ्रष्ट बनिये के बच्चे को महात्मा गांधी बना दिया उसी प्रकार जीवन की एक ही घटना ने बंगाल के महानास्तिक नरेन्द्रबाबू को स्वामी विवेकानन्द बना दिया। नरेन्द्र ने पूछा—श्रीमान् क्या आपने ईश्वर को देखा है? रामकृष्ण देव की समाधान कारक हां में नरेन्द्र की सारी नास्तिकता गलकर बह गई तथा वही नास्तिक संसार के कोटि-कोटि जनों को अपने संदेश से आस्तिक बनाने वाला बन गया।

वर्ष 1915 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त फ्रांसीसी उपन्यासकार रोमा रोलां ने अपनी पुस्तक रामकृष्ण परमहंस की पाश्चात्य पाठकों के लिए प्रकाशित भूमिका का समापन करते हुए लिखा है, जिस मनुष्य की मूर्ति की मैं यहां स्थापना करना चाहता हूं वह तीस करोड़ नर-नारियों के दो सहस्र वर्ष के अध्यात्मिक जीवन का परिपूर्ण रूप है। उनका आन्तरिक जीवन उस सम्पूर्ण शक्ति की मूलाधार स्वरूपिणी दैवी 'शक्ति' का अंश मात्र था जिस दैवी शक्ति की मिथिला के प्राचीन कवि विद्यापति और बंगाल के कवि रामप्रसाद ने वंदना की है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार आरनॉल्ड टॉयनबी जिनका कि विश्व इतिहास के दार्शनिक विवेचन का आधार द्वितीय महायुद्ध से पहले सभ्यता का उत्थान-पतन रहा था तथा द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् उसमें उच्च धर्मों की प्रधान भूमिका रहा

था, वे स्वामी घनानन्द की पुस्तक श्रीरामकृष्ण एण्ड हिज यूनीक मेसेज' की प्रस्तावना में हिन्दू जाति के धर्म के सनातन सत्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं धर्म केवल अध्ययन करने का विषय नहीं है, यह वह है जिसकी प्रत्यक्षानुभूति करने तथा व्यावहारिक जीवन में अनुकरण करने की अनोखापन स्पष्ट हुआ। यह युगानुरूप भी है क्योंकि हम आज भी विश्व के इतिहास के परिवर्तनशील युग में जी रहे हैं, किन्तु पहले से यह अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि जिस युग का समारम्भ पाश्चात्य हुआ था, उसका समापन भारतीय होना पड़ेगा। मानव जाति को विनाश से बचाने का यही एकमात्र उपाय है, क्योंकि मानव इतिहास के इस अति भयावह काल में मनुष्य के उद्धार का एकमात्र उपाय भारतीय पद्धति ही है। सम्राट अशोक एवं महात्मा गांधी का अहिंसा-सिद्धान्त तथा रामकृष्ण का सर्वधर्म का समन्वय सिद्धान्त इसमें आस्था एवं उत्साह समस्त मानव जाति को एक कुटुम्ब में विकसित करने की सम्भावना रखता है, और इस परमाणु युग में हमारे ध्वंस से बचने का एकमात्र पक्षधर यही है।

ऑक्सफोर्ड में भाषा-विज्ञान के जर्मन मूल के प्रोफेसर मैक्समूलर (1823-1900) ने 'रामकृष्ण हिज लाइफ एण्ड सेइग्ज' में रामकृष्ण देव के वचनों की समीक्षा करते हुए मैक्समूलर लिखते हैं, 'इनके वचनों से ज्ञात होता है कि भारत के अलावा प्रकृति एवं मनुष्य में इतना तीव्र तथा सार्वभौमिक दिव्यामास और कहीं भी नहीं देखा गया है। यद्यपि रामकृष्ण के सिवाय ईश्वर प्रेम व इष्टतन्मयता की प्रबल वाग्मी अभिव्यक्ति और कहीं भी नहीं है, किन्तु फिर भी ईश्वर और मनुष्य के पृथक् करने वाली सीमा से वे सुपरिचित थे—जैसा कि रामकृष्ण देव ने कहा था ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति में है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर में नहीं है और इसलिए वह दुःखी है।'

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं, ईश्वर के साथ सामंजस्य टूट जाना ही रोग है। Diseare is to be dis-at-ease with God. अर्थात् परमेश्वर के साथ सहज सरल सम्बन्ध टूट जाना ही रोग है।

गुरु नानकदेव कहते हैं—

परमेश्वर को भुल्लयो व्यापन सबै रोग

परमेश्वर को भूलने से ही संसार के सब रोग आदमी को जकड़ लेते हैं। अमेरीका के महान् दार्शनिक Ralph waldo Emerson इमर्सन ने कहा है The begining and end of everything wrong with as that we have forgotten God. अर्थात् हमारी समस्त बुराइयों (क्लेशों) एवं समस्याओं का प्रथम और अन्तिम कारण यही है कि हम परमेश्वर को भूल बैठे हैं।

जो व्यक्ति सदा ईश्वर को हाजर-नाजर जानता है, जो यह अटल विश्वास रखता है कि प्रभु सर्वसाक्षी एवं सर्वान्तर्यामी है वह पाप या कुकर्म करने से बचा रहता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

राम झरोखे बैठि के सबका मुजरा लेत,
जैसी जाकी भावना वैसा ही फल देत।

भारत की सोच प्रारम्भ से आज तक बड़ी रही है हम सब एक ही ईश्वर की ऋषियों की अमृत संतान है, अमर संतान है स्वदेशों भुवन त्रय। तीनों भुवन ही हमारा स्वदेश अतएवं वसुधैव कुटुम्बकम् हमारा राष्ट्रीय आदर्श रहा है और सर्वधर्म समभाव हमारा धार्मिक आदर्श रहा है। इस लिए हम tolerance की बात नहीं acceptance की बात करते हैं। जहां Rejection है, अस्वीकृति है वहां tolrance, सहिष्णुता की बात की जाती है। पर हम तो सभी धर्मों को सत्य मानकर उसका समादर करते हैं। इसलिए स्वामी विवेकानन्दजी शिकागो सभा में कहते हैं 'मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने का गर्व अनुभव करता हूं जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि सभी पीड़ित निराश्रित धर्मों को, जातियों को शरण स्थल भारत रहा है। यहूदि अपने देश से प्रताड़ित हुए तो भारत में उसे शरण मिली। पारसी अपने देश में प्रताड़ित हुए तो भारत में शरण मिली ईसाई सर्वप्रथम भारत के केरल राज्य में 50 एडी के लगभग पहुंचे। वहां हिन्दू शासक और हिन्दू जनता ने उन्हें बसने, धर्म प्रचार करने गिरजाघर बनाने में सहयोग दिया। ईसाइयों के सात फिरेक हैं वह एक साथ भारत में शान्ति से है विश्व में और कहीं नहीं है। मुसलमान भी 700 एडी के लगभग केरल पहुंचे उन्हें सरकारी पैसों से मस्जिद बनाकर दी। मुसलमानों के 73 फिरेक हैं जो भारत में एक साथ शान्ति से है विश्व में और कहीं नहीं।

पर ये भारत की अतिशय उदारता का लाभ उठाकर भारत को ही समाप्त करने, पीड़ित करने में लगे रहते हैं। इसलिए रामकृष्ण देव ने जहां सर्वधर्म समभाव की बात कह कर भारत के धार्मिक आदर्श की पुनः उद्घोषणा की। वहां उन्होंने हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा, शाश्वत धर्म कहा जो सनातन काल से है और अनन्त काल तक रहने वाला है। पर अन्य धर्म आने-जाने वाले हैं। मां की इच्छा से है और मां की इच्छा से चले जायंगे। माईकेल मधुसूदन दत्त जब ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया तो उन्होंने उससे मिलना, बात करना तक स्वीकार नहीं किया। अगर वे सभी धर्म पथ को समान मानते तो ऐसा सम्भव नहीं होता। रामकृष्ण देव

जहां आदर्श की बात कहते हैं वहां उन्हें यथार्थ का, व्यावहारिकता का बोध भी था। ये हमारी अतिशय उदारता का लाभ लेकर हमारे ही समूलोच्छेद में लगे हैं। अतः इन्हें चुपचाप देखते ही नहीं रहे इसका प्रतिकार भी करें।

जब वे इसलाम की साधना कर रहे थे तो उन्हें गो मांस खाने की इच्छा होने लगी। अरब देशों में बकरा, दुम्बा, ऊँट, घोड़े आदि होते हैं। वहां उन्हीं को काटते हैं उनके पर्व नाम भी बकरीद है गोईद नहीं। अरब देशों में गाय बहुत कम होती है नाममात्र की। कुरान और हदीस में भी गो वध की आज्ञा नहीं है वरन् निषेध है। गाय के गोश्त को बीमारी और गो दूध सेवन को अमृत, स्वास्थ्यवर्धक माना है। अरब गरम प्रदेश है—गोमांस भी गरम होने से बीमारी का हेतु है। अतः गोपालन की आज्ञा है। गाय को दौलत की रानी कहा गया है क्योंकि वह घास-फूस, चौकर खाकर अमृत जैसा दूध देती है। मक्का जो इनका सबसे बड़ा तीर्थ है वहां आज तक गोकुशी नहीं हुई, वहां गो वध निषिध है, कश्मीर जो आज इस्लामिक आतंक का अड्डा बना हुआ है। वहां भी गोकुशी निषिद्ध है। जब इसलाम का भारत में प्रवेश हुआ और हिन्दुओं की गो के प्रति अबाध आस्था देखकर, उनको अपमानित करने की भावना से मुसलमानों ने भारत में गो वध प्रारम्भ किया। अतः गो वध कुरान सम्मत नहीं वरन् कुरान-हदीस दोनों की आज्ञा की अवहेलना है। इसके बाद भी रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित ग्रन्थों में यह कहा जाता है रामकृष्ण परमहंस देव की इसलाम की साधना के दौरान उन्हें गोमांस खाने की इच्छा होती है तब तो ऐसा कहा जा सकता है—

यह तो ठीक वही बात है जब व्यक्ति कुसंग में पड़ता है तब उसका मद्यपान, तम्बाकू, जर्दा, गुटका, भांग, मांसाहार करने यहां तक कि कोठे पे जाने की प्रवृत्ति हो जाती है जैसा कि गांधीजी कुसंग में पड़कर इन सबके शिकार हो गये थे। और वही सुसंग में पड़ता है तो जीवन में अच्छी बातें आने लगती है, उसकी जीवनधारा शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र, दिव्य, पुण्यमय हो जाती है। जब रावण सीता को हरकर ले गया। पर सीता उसका वश स्वीकार नहीं करती है, तब वह कुम्भकरण को जगाता है और उसे बताता है कि सीता को मैं भोगना चाहता हूं पर वह मेरा वश स्वीकार नहीं कर रही है। कुम्भकरण ने कहा—तब तुम राम का रूप धरकर क्यों नहीं उसके पास जाते हो। तब रावण अपनी विवशता बताता है जैसे ही राम का चिन्तन करता हूं उसका रूप धारण करता हूं तब मन में सात्त्विक भाव आने लगते हैं। प्रत्येक परनारी में मातृभाव आने लगता है। भोग बुद्धि तिरोहित हो जाती है। इसलिए यह प्रयास नहीं कर सकता। यह है सुसंग का परिणाम, सुधर्म का परिणाम। रामकृष्णदेव कहते हैं सब में भगवान तो है पर तमोगुणी नारायण से दूर रहने को कहते हैं। यह पागल हाथी के दृष्टान्त

द्वारा बताया। एक गुरु ने अपने सब शिष्यों को बताया सब में नारायण का वास है अतः सबका आदर करना चाहिए। रास्ते में एक मतवाला हाथी जा रहा था, महावत सबको बचने के लिए कह रहा था, सब शिष्य तो भाग गये, एक शिष्य अड़ा रहा तो हाथी ने इसे सूंड से लपेट कर दूर फेंक दिया। तब गुरु ने कहा तुमने महावत भगवान् और अपने मित्र भगवान् की उपेक्षा क्यों की। तमोगुणी नारायण से बचो। कोई सज्जन सद्प्रयास करता है तो अकारण ही लोग उसकी आलोचना करने लगते हैं। इसे हाथी और कुत्ते के दृष्टान्त से बताया। जब हाथी बाजार में चलता है तो उसके पीछे अनेक कुत्ते भोंकने लगते हैं, पर हाथी उसकी परवाह नहीं करता। यही बात हिन्दू धर्म के साथ देखते हैं। हिन्दू धर्म ने तो इसलाम-ईसाइयत सहित सारी दुनिया को धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति व ज्ञान-विज्ञान का कला-कौशल का दान दिया—निःस्वार्थ भाव से, लोक मंगल की भावना से दिया। उसके बदले में इसलाम, ईसाइयत, चीन सहित सारी दुनिया भारत को आग-आतंक, नशीली पदार्थों की तस्करी दे रहे हैं। मुल्ला, मौलवी, पादरी, माओवादी, हिन्दू धर्म के प्रति, भारत के प्रति आग उगलते रहते हैं, निन्दा करते रहते हैं, पर हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म हाथी के समान उनकी परवाह नहीं करता। पर कोई ज्यादा उत्पात करे, प्राणों पर ही पड़ जाए तो अपनी आत्मरक्षा कैसे करें। कैसे उसका प्रतिकार करें यह विषधर सर्प के दृष्टान्त से बताया। जंगल में एक विषधर सर्प था जो सबको डसता था। लोगों ने उस रास्ते से जाना छोड़ दिया था। संयोग से एक संत उसी रास्ते से जा रहे थे, बच्चों ने सावधान किया। पर संत ने कहा, मेरे पास मंत्र है अतः मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जब सर्प डसने के लिए फुफकार मारते हुए आया तो मंत्र के बल से निस्तेज हो उनके चरणों पर गिर पड़ा। संत ने कहा और कितनी दुर्गति कराओगे, सर्प की योनि मिली है। फिर उन्होंने मंत्र दिया—ले इसका जप कर, इससे तेरी हिंसा वृत्ति शांत हो जायेगी, मन को शांति मिलेगी। उसके स्वभाव परिवर्तन को बच्चों ने लक्ष्य किया। वह अब फुफकारता हुआ आता नहीं है, बच्चे पत्थर फेंकने लगे, पर प्रतिकार नहीं करता। तब एक दिन एक बच्चे ने पूंछ पकड़कर धरती पर खूब पटका और लहूलुहान मरा हुआ जानकर बच्चे छोड़ गये। एक वर्ष पश्चात् वे संत फिर आये, उसकी खोज करने लगे। बच्चों ने कहा, वह तो मर गया है। संत ने मन में सोचा, सिद्ध मंत्र था! बिना प्रभु के दर्शन मृत्यु हो नहीं सकती। उसे खोजते हुए आवाज लगाने लगे, तो बिल से निकलकर धीरे-धीरे आया और प्रणाम किया। गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। संत ने पूछा, इतना दुर्बल कैसे हो गया? अब मैं घास-फूस खाकर निर्वाह करता हूं इसलिए दुबला हो गया हूं। संत ने कहा, केवल भोजन बदलने से ऐसी स्थिति नहीं हो सकती। कोई और बात

है। तब बच्चों के दुर्व्यवहार की बात याद आयी और उसने सारी बात बतायी। तब संत ने लताड़ा—अरे, तुम मूर्ख हो! अपनी आत्मरक्षा भी नहीं करना जानते। तुझे फुफकारना चाहिए था। जब हम समस्या के विरुद्ध उठकर खड़े हो जाते हैं तो अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जाता है। बनारस में स्वामी विवेकानन्दजी के पीछे बन्दर पड़ गये। स्वामीजी भागने लगे। दूर से एक संत की आवाज आयी—भागो मत, खड़े हो जाओ। सामना करो। तब जैसे ही स्वामीजी मुट्ठी भींचकर खड़े हुए सारे बन्दर भाग खड़े हुए। अतः हम जब डटकर खड़े हो जाते हैं तो अनेकों समस्या स्वतः सुलझ जाती हैं और जब इससे भी काम नहीं बने तब जिसकी साधना, आराधना से रामकृष्णदेव ने सबकुछ पाया वह मां दुर्गा, दुर्गा सप्तशती में कहती हैं—मां के चित्त में करुणा है पर समर में निष्ठुरता है। 'चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा'।

सब में एक ही ईश्वर का वास है अतः सबके प्रति कृपा आदर का भाव रहे पर वह जिस शरीर का आधार लेकर उदण्डता कर रहा है उस साधन को छीन लेना चाहिए। मां ने यही किया।

अतः सभी धर्म समान हैं की रट नहीं लगानी चाहिए—नहीं तो सत्-असत् में, पाप-पुण्य में, राम-रावण में, मां सीता और शूर्पणखा में, सती नारी और वेश्या में, कृष्ण और कंस में, गांधी और जिन्ना में, चोर और पुलिस में, न्यायाधीश और अपराधी में आक्रांता और उसका प्रत्युत्तर देने वाले आत्मरक्षक में अन्तर करना छोड़ देना चाहिए।

कई सज्जन कहते हैं मुसलमान और ईसाई भी तो ईश्वर को मानने वाले हैं। तब असुर भी ईश्वर को मानने वाले, उनकी आराधना कर उनसे वर प्राप्त कर अत्याचार करते थे तो वे दया नहीं दण्ड के पात्र बने। ईसाई और इसलाम की ईश्वर के प्रति अवधारणा त्रुटिपूर्ण विकृति के लिए हुए ही नहीं, पैशाचिकता के लिए हुए हैं। फिर एक तरफ तो रामकृष्णदेव को अवतार मानते हैं। अवतार तो सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के दलन के लिए, नाश के लिए ही आते हैं न कि दुष्टों को प्रमाणपत्र देने के लिए कि तुम (सज्जन और दुर्जन, देव और असुर) सभी समान हो। अतः देवी पथ और आसुरी पथ समान नहीं हो सकता। कोई कहे ईसाई-मुसलमान के द्वारा भी कुछ भला कार्य हुआ है। यह बात तो रावण, कंस, दुर्योधन के साथ भी लागू हो सकती है। पर ये सब दण्ड के पात्र बने। भीष्म-द्रोण जो स्वयं दुष्ट नहीं पुण्यात्मा थे, सदाचारी थे पर दुष्ट दुर्योधन का, कौरव पक्ष को उनसे संरक्षण मिल रहा था अतः भगवान् श्रीकृष्ण को उन्हें पहले मरवाना पड़ा। अतः एक तरफ तो रामकृष्णदेव को अवतार मानें, दूसरी तरफ उनका कार्य अवतार के ठीक विपरीत हो यह कैसे सम्भव माना जा सकता है?

मुसलमान बंधु औरंगजेब को आदर्श पुरुष यहां तक कि जिन्दा पीर मानते हैं। औरंगजेब पिता को कैद करके, पानी के लिए तरसा-तरसा कर मारने वाला, अपने तीनों भाइयों की धोखे से हत्या करके गद्दी पर बैठने वाला और अकारण हिन्दू धर्म, समाज, जाति, देश व धर्म पर कहर ढाने वाला—अपनों और परायों सबके साथ दंगा करने वाले को अपना आदर्श पुरुष मानकर न हम अपने व्यक्ति जीवन, न परिवार जीवन, न समाज जीवन व राष्ट्र जीवन और न ही विश्व जीवन का निर्माण कर सकते हैं। इसी प्रकार मुहम्मद गजनवी, मुहम्मद गोरी को आदर्श पुरुष मानकर आदर्श जीवन नहीं अमानुषिक जीवन का ही निर्माण हो सकता है। यही कारण है कि इस्लामिक राज्य के मुस्लिम काल में देख लेवें तो प्रायः सभी अपने पिता व भाइयों की हत्या करके ही गद्दी पर बैठे हैं और विकृत, विलासी का जीवन जीया है। उनके परिवारों की हालत देख लेवें, मुस्लिम राज्यों की हालत देख लेवें, सब जगह उन्माद का नंगा नृत्य ही दिखाई देगा। शान्ति से न सहवास की स्थिति है, न विकास की स्थिति है, अमर्यादित, विकृत विलास की स्थिति है। ईसाइयों के आदर्श पुरुष कोलम्बस हैं जिसने अमेरीका के मूलनिवासियों पर अमानुषिक अत्याचार कर समूल नष्ट कर दिया। कोलम्बस ने वहां के मूलवासी रेड इंडियनों से पानी मांगा तो उन्होंने दूध से स्वागत किया। उन भोले-भाले वासियों को निर्मम ढंग से नष्ट कर दिया। ईसाइयों के आदर्श पुरुष संत जेवियस हैं जिसने गोवा में हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार किया। भारत की वाणी धर्म की वाणी, मर्यादा की वाणी है। इसलाम सहित ईसाइयत की, छल-कपटाचार, अमर्यादित, अविवेकी भोग की वाणी है, राजनीति की वाणी है। शोषण और बलात्कार की वाणी है? ऐसी स्थिति में हिन्दू धर्म, इसलाम और ईसाइयत एक कैसे हो सकते हैं। इनको एक ही तराजू में कैसे तोला जा सकता है। अतः इसलाम-ईसाइयत के साथ हिन्दू धर्म का समभाव नहीं, हिन्दू धर्म का विनाश ही सम्भव है और वही हो रहा है–जब से ये दोनों धारायें भारत में आयी है। रामकृष्णदेव के सर्वधर्म समभाव का प्रभाव यत्किंचित् भी इसलाम और ईसाई समाज पर नहीं है केवल हिन्दू समाज ही इससे मतिभ्रम का शिकार हो रहा है। ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम सबको सम्मति दे भगवान। इसे गांधी किसी मुसलमान से यहां तक कि मौलाना अबुल कलाम से भी नहीं गवा सके। यही कारण है इसलाम और ईसाइयत, दोनों हिन्दू समाज को दुनिया के मानचित्र से मिटा देना चाहते हैं और हिन्दू मतिभ्रम का शिकार होकर उन्हें गले लगाने में लगा हुआ है। हमने इसलाम-ईसाइयत को न समझने की कमस खा रखी है।

अतः रामकृष्ण देव की आदर्श के साथ-साथ व्यावहारिक धरातल का भी ध्यान था। यही कारण है उनके द्वारा निर्मित स्वामी विवेकानन्दजी जहां सर्वधर्म समभाव की बात कही वही ईसाइयत और इसलाम की कुटिल योजनाओं एवं कार्यों का पर्दा-फांस भी किया।

डॉ. एनी बीसेंट

डॉ. एनी बीसेंट ने लिखा है—'India & Hinduism are one'. (भारत और हिन्दुत्व—दोनों एक और अभिन्न हैं)।

'....और यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करेंगे तो कौन इसे बचाएगा? यदि भारतमाता की अपनी सन्तानें ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहती तो कौन इसकी रक्षा करेगा? विदेशी कलेवर में कोई भी वह नहीं कर सकता जो अपने स्वदेश में कर सकता है। मेरा भारत के लिए कितना भी प्रेम, कितनी भी सेवा की पूर्णता, कितनी भी भक्ति की अनन्यता, इस विदेशी शरीर में वह नहीं कर सकती जो आप भारत के लाल कर सकते हैं। अतः हम भी, जिनके हृदय हिन्दू हैं, और जिनके पूर्वजन्म हिन्दू रहे हैं, हम केवल आपकी सहायता कर सकते हैं, मुख्य कार्य आपको स्वयं ही करना होगा।

'भूलो मत, हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह जनन-भूमि है जिसमें भारत की जड़ें स्थापित हैं, और उससे उखाड़ देने पर वह अनिवार्य रूप से मुरझाकर मर जाएगा, जैसे एक वृक्ष को उसके मूलस्थान से उजाड़ देने पर होता है। बहुत से धर्म हैं और बहुत सी जातियाँ हैं जो भारत में फल-फूल रही हैं, किन्तु उनमें से कोई भी उसके अतीत के अति दूर प्रथम सूर्योदय तक नहीं पहुँच पाती, तथा न ही वे उसके राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उनमें से प्रत्येक जैसे आया था भले ही चला जाए, और भारत फिर भी बना रहेगा। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को लुप्त होने दो, तो भारत क्या बचेगा? भूतकाल का एक भौगोलिक आभास मात्र, विनष्ट वैभव की धुँधली स्मृति मात्र! उसके इतिहास, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके स्मारकों—सभी पर हिन्दुत्व ही अंकित है।

जरथ्रुस्त्र का पारसी धर्म भारत में शरण के लिए आया और उसके पुत्रों को भारत में शरण एवं स्वागत मिला; किन्तु पारसी धर्म भले ही चला जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। बौद्धधर्म यहीं पर स्थापित हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म लुप्त हो गया और भारत भारत ही है। इसलाम एक आक्रमण की लहर बन कर आया,

और मुसलमान भारतीय राष्ट्र के अंग बने हुए हैं, तथा इसके भविष्य के निर्माण में योगदान करेंगे; फिर भी इसलाम भले ही चला जाए, भारत भारत ही रहेगा। ईसाइयत आई है, और ईसाई भारत में शासन करते हैं तथा इसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं; फिर भी ईसाइयत भले ही चली जाए, भारत भारत ही रहेगा। भारत उनके आगमन से पहले भी जीवित था; और भारत उनके चले जाने के बाद भी जीवित रह सकता है। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को जाने दो, हिन्दुत्व जो भारत का शैशव का झूला रहा है, और उसके लोप में ही भारत की मृत्यु हो जाएगी। तब भारत, भारत के धर्म के साथ, केवल स्मृति शेष बचेगा, जैसे मिस्र एवं मिस्र के धर्म आजकल हो गए हैं। तब भारत बचेगा मात्र प्राचीन इतिहास का एक विषय, पुरातत्त्व की वस्तु, चीर-फाड़ के लिए शवमात्र, किन्तु वह देशभक्ति की वस्तु नहीं बचेगा, वह राष्ट्र नहीं रहेगा।' (डॉ. एनी बीसेंट का हिन्दू आदर्शों पर व्याख्यान, सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस; हिंदुइज्म थ्रूदि एजेज, जी. एल. शर्मा पृष्ठ 118-119)

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ है। जैसे जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

भारतीय शिक्षा पद्धति का अधःपतन क्यों और कैसे हुआ

आधुनिक शिक्षा में शिक्षित युवक अपने मूल से कटा हुआ, राष्ट्रीयता से शून्य, स्वाभिमान से शून्य, आत्म गौरव से रहित है। आज देश की सारी समस्याओं की जड़ पढ़ा-लिखा आदमी है। आज वह अपने ही देश, धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य, इतिहास, परम्परा, श्रद्धा बिन्दु, मान बिन्दु के विरुद्ध खड़ा है, और विदेशी-विधर्मियों के समर्थन में खड़ा है। इसका तात्पर्य है इस शिक्षा के मूल में दोष है। शिक्षा के वर्तमान परिवेश को समझने के लिए थोड़ा अतीत में जाना होगा।

भारत में शिक्षा-व्यवस्था सांस्कृतिक-अध्यात्मिक अधिष्ठान में अधिष्ठित, चारों पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष) को लेकर चलने वाली सर्वाङ्गीण शिक्षा-व्यवस्था जो एक स्वायत्त संस्थान थी। शिक्षा और गुरु को सर्वोच्च सम्मान दिया गया। गुरु को ईश्वर के समान महत्त्व दिया गया। गुरु की तुलना ब्रह्मा-विष्णु-महेश से की गयी है। बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट भी अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर जंगल में जाते और अपने स्वर्णकिरीट, मणिमुकुट के साथ चतुरंगिणी सेना के सहित जिनके चरणों में लेटकर दण्डवत् प्रणाम कर अपने को धन्य मानते थे। हमारे यहां शिक्षा कभी राजनीति या सम्राटों की दासी या अधीन नहीं रही। वह उसको पोषण और संरक्षण देना अपना परम कर्तव्य मानता था। प्राचीन भारत के गुरुकुलों में बड़ी-बड़ी ज्ञान साधनायें सम्पन्न हुईं। प्राचीन भारत में विज्ञान को लेकर अद्‌भुत विकास को देखते हैं चाहे रामायण के काल को लेवें या महाभारत के काल को। हाँ, विकास का स्वरूप आज के स्वरूप से भिन्न था। प्राचीन भारत में अधिदेव को लेकर विज्ञान का विकास देखते हैं, मंत्र शक्ति की अद्‌भुत करामात देखते हैं। आज के सन्दर्भ में भी भारत 18वीं शताब्दी तक विज्ञान के हर क्षेत्र में आगे था। इस सन्दर्भ में जो आंकड़े ब्रिटिशों ने संग्रह किये थे उसी को धर्मपालजी ने खोज करके 'Science and Technology in Eighteen Century' में प्रकाशित कर दिया है। प्राचीन काल में ज्ञान की प्रामाणिकता के लिये जनक की सभा में जाना पड़ता था। जनक की सभा ज्ञान का प्रमाण थी। फिर काशी हो गयी। काशी के विद्वत् सभा की मान्यता आवश्यक थी। फिर ज्ञान का प्रमाण इंग्लैण्ड, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् से अमेरीका ज्ञान का प्रमाण हो गया है। अब धीरे-धीरे पुनः भारत की ओर लौट रहा है।

विद्या दो प्रकार की होती है 'अपराविद्या और पराविद्या। अपराविद्या को भौतिक विद्या, अविद्या आदि नामों से जाना जाता है। पराविद्या को ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या और अध्यात्म भी कहा जाता है।

अपराविद्या के आधार में पराविद्या, ब्रह्मविद्या या अध्यात्म प्रतिष्ठित है। इसलिये ब्रह्मविद्या सर्वविद्या प्रतिष्ठा कहा गया है। प्राचीन भारत में अंग्रेजों के पूर्व तक सभी प्रकार के ज्ञान के आधार में अध्यात्म प्रतिष्ठित था इससे सारी विद्यायें उपासना का रूप ले लेती हैं, सेवा का आधार बन जाती थी जो हमें मुक्ति की ओर ले जाती है। हमारे यहां विद्या की परिभाषा की गयी है—'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे। जो हमें पूर्णता की ओर, आनन्द की ओर ले जाये, तुच्छता से, पशुता से, कमीनेपन से, स्वार्थ से मुक्त कर परमार्थी बनावे।

ज्ञान के आधार में ब्रह्मविद्या प्रतिष्ठित न होने पर वह बंधन का आधार बन जाता है जिसे हम प्राचीन भारत में असुरों के जीवन में, विश्व की प्राचीन सभ्यताओं—रोम, यूनान, मिस्र, बेबीलोनिया आदि में, वर्तमान में आधुनिक पश्चिमी सभ्यता में और स्वातंत्र्योत्तर भारत में, आज के आधुनिक भारत में देखते हैं।

हमारे ज्ञान के मूल आधार वेद हैं। वेद तक कुछ लोगों की पकड़ होती है उसके अधिकारी थोड़े हैं। पहली श्रेणी में ऋषि-ऋषिकायें आते हैं। हमारे वेद मंत्रों के द्रष्टा ऋषि भी, ऋषिकायें भी हैं। ये प्रथम श्रेणी में आते हैं। फिर विद्वान्, विद्वानों की भी कई श्रेणियां है। सारे विषयों के विद्वान् या अनेक विषयों के विद्वान् या कुछ विषयों के विद्वान् या एक विषय के। फिर कथावाचकों का स्थान है जो वेदों के सार को, तत्त्व को, कथा के रूप में ग्राम-ग्राम, जन-जन रखते हैं। इन्हीं के प्रयासों से भारतीय संस्कृति का सार, शास्त्रों का सार वेद, उपनिषद्, गीता का सार जन-जन तक पहुंच गया। उदाहरणार्थ—गांव की अनपढ़ बुढ़िया भी सहज रूप से कहती है, आत्मा सो परमात्मा। हमारे अन्दर ही ईश्वर आत्मा के रूप में विराजमान है। जैसा करोगे वैसा भरोगे, पुनर्जन्म की बात जानती है।

कुछ लोग कहेंगे ये तो सारे विश्व के लोग मानते हैं। पर ऐसा नहीं है। सेमिटिक परम्परा इसे नहीं मानती। हमारे यहां लोकचेतना, लोकचित्त में शिक्षा के सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावाचकों द्वारा पहुंचते हैं। सभी वर्ण और जाति के कथावाचक होते थे और होते हैं।

भारतीय जीवन पद्धति ऐसी रही है कि अनेक आक्रमणों के उपरान्त भी हमेशा नया रूप लेकर जीवित रही। जीवन की यह शक्ति शिक्षा पद्धति के द्वारा प्राप्त हुई। सभी प्रकार के आघातों को झेलने की क्षमता यहां की संस्कृति ने, शिक्षा ने दी।

हमारी शिक्षा सर्वव्यापी थी। सभी वर्ण और जाति के लोगों को पढ़ने का अधिकार था। अंग्रेजों के समय के जो आंकड़े अंग्रेजों ने संग्रहित किये थे उसे धर्मपालजी ने खोजकर The beautiful tree के नाम से प्रकाशित कर दिया। उसके अनुसार भारत में पांच लाख स्कूल थे जिसमें प्रत्येक गांव में एक स्कूल है उसमें सभी वर्ण और जाति के बच्चे पढ़ते थे, जिन्हें आज निम्न जाति के कहा जाता है जिनका आज नाम लेना भी अपराध है उन सबके बच्चे पढ़ते थे। शिक्षक भी सभी वर्ण और जाति के होते थे जिसे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया। स्पष्ट है हमारी जाति-व्यवस्था में ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं था। यह तो अंग्रेजों की करामात है 'फूट डालो और शासन करो' नीति के तहत परस्पर जातियों को बांटकर लड़वाया।

कुछ पढ़ाई सबकी Common थी, समान थी। तीन ग्रन्थ सब विद्यार्थियों के लिये थे—रामायण, महाभारत और भागवत, जिसमें जीवन का पूरा नक्शा दे दिया जाता था। और कुछ पढ़ाई वर्ण, जाति, व्यवसाय, पेशा के आधार पर होती थी। वणिक वर्ण के बच्चे को व्यापार, कृषि, गो-पालन की; क्षत्रिय को अस्त्र-शस्त्र संचालन, प्रशासन संचालन की शिक्षा; ब्राह्मण को कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञानकाण्ड की शिक्षा, त्रिकाल संध्या सबको सिखायी जाती थी। शूद्र बच्चों को शिल्प-कला की, श्रम की शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचर्य आश्रम सीखने के लिये था और गृहस्थाश्रम उस पर अमल के लिये, प्रयोग के लिये था।

व्यापार करने आये अंग्रेजों के हाथ में यहां की राजनीतिक दुर्बलता के कारण शासन सूत्र उनके हाथ में आ गये। उन्होंने देखा यहां सभी प्रकार की विविधताओं में यह देश एक कैसे है? इतने आक्रान्ताओं को झेलकर भी यह जीवित कैसे है? अमर कैसे बना हुआ है? तो देखा यहां धर्म, संस्कृति और शिक्षा-व्यवस्था ने सबको जोड़ कर के रखा है। यही सभी आक्रान्ताओं को झेलने की ताकत देते हैं। इनके रहते हमारा शासन कभी स्थायी नहीं हो सकता है। इस स्थिति को समझकर योजनाबद्ध ढंग से अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा-व्यवस्था को तोड़कर अपने स्वार्थ, अपनी आवश्यकता के अनुसार ढाल दिया। शिक्षक को Paid servent बना दिया और शिक्षा को सरकार के अधीन कर दिया। हमें स्वावलम्बी न बनाकर सरकार मुखापेक्षी बना दिया गया। इस प्रकार शिक्षा-व्यवस्था को बदल कर हमारी रुचि, हमारे मानस को ही बदल दिया। वे हमारे दिल-दिमाग और घर में छा गये, हमारे आदर्श पुरुष बन गये। हमको अपना सब कुछ हेय, तुच्छ, त्याज्य लगने लगा। अंग्रेजों का, पश्चिम का सब कुछ श्रेष्ठ, ग्रहण योग्य, अनुकरणीय लगने लगा। अंग्रेजों का शासन भी हमें वरदान लगने लगा। हमारे भले के लिये है लगने लगा। अभी भी ऐसे लोग मिल जाएंगे, कहेंगे कि इससे तो अंग्रेजों का शासन अच्छा था। उसमें हम अधिक सुरक्षित थे।

और स्वाधीन भारत में अंग्रेजों के काल की बची-खुची भारतीयता को भी नष्ट करके और अधिक दोषपूर्ण बना दिया गया। अंग्रेजों के काल में गीता और रामायण पढ़ाई जाती थी उसे भी हटा दिया गया। 'ग' से गणेश के स्थान पर गधा कर दिया गया, बाद में गमला।

1947 में स्वतन्त्र भारत में भारत की शिक्षा को यूरोपीय पद्धति में ढाल दिया गया। नेहरूजी को भारत-भारतीयता से चिढ़ थी, घृणा थी। वे स्वयं अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेज थे, इसलाम, ईसाइयत, समाजवाद एवं रूस उनका आदर्श था। अतः शासन तंत्र को रूस के अनुसार ढाल दिया गया। शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम का फिर प्रो. हिमायु, कबीर, दोनों का भारत-भारतीयता से दूर का भी रिश्ता नहीं था। अतः शिक्षा पद्धति को यूरोपीय पद्धति में ढाल दिया गया। अंग्रेजों के काल में भारत-भारतीयता के जो अवशेष शेष बच गये थे उन्हें भी ढूंढ़-ढूंढ़ कर हटा दिया गया। भारत की शिक्षा-व्यवस्था को यूरोपीय पद्धति में ढालने के लिये यह तर्क दिया गया कि सब देशों ने एक समान शिक्षा-व्यवस्था के नाम पर यूरोपीय पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था लागू कर दी है। जबकि यूरोपीय पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था कुछ ही देशों में प्रचलित थी। सब देशों की अपनी-अपनी शिक्षा-व्यवस्था है और अपनी-अपनी ज्ञान-परम्पराओं से, अपने-अपने विद्वानों से, संस्कृति से सम्वाद करते हैं। इस प्रकार अंग्रेजों के काल में शिक्षा तंत्र को जो ग्रहण लगा था स्वाधीन भारत उससे मुक्त होने के बजाय और ज्यादा ग्रहणग्रस्त हो गया। जिस यूरोप की नकल पर यह शिक्षा-व्यवस्था लागू की उनके स्वयं के ज्ञान की परम्परा मात्र 300 वर्ष पुरानी है। इन तीन सौ वर्षों में इन्होंने खूब पुरुषार्थ किया उसका हम सम्मान करते हैं। हमने सत्य का द्वार, ज्ञान का द्वार सदा खुला रखा। भद्र विचार जहां से भी मिलें ग्रहण करें पर अपने ज्ञान की परम्परा की कीमत पर नहीं। इनके ज्ञान की परम्परा मात्र 300 वर्षों की है। इसके पूर्व ज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग था। इनका इतिहास स्वयं इस बात को स्वीकार करता है। मध्य युग में यूनानी ज्ञान परम्परा से नाता तोड़ लिया था। अरस्तू-प्लेटो-सुकरात आदि का पढ़ाना अपराध था। इसके लिये मृत्युदंड का विधान था। इन्होंने स्वयं अलेक्जेंड्रिया का विशाल पुस्तकालय जिसमें सात लाख पुस्तकें थी जो यूनानी और भारतीय ज्ञान परम्परा का उस समय सबसे बड़ा केन्द्र था जिसे यह कहकर जला दिया यदि यह बाइबिल की समर्थक है तो व्यर्थ है, और उसकी विरोधी है तो कूफ्र है, शैतान नष्ट होने ही योग्य है।

अब ये अपनी परम्परा को पुरानी दिखाने के लिए प्लेटो-अरस्तू आदि विचारकों से, यूनानी परम्परा से अपना नाता जोड़ रहे हैं और कह रहे हैं यूनान हमारे विचारों की जननी है, जबकि मध्ययुग में इनकी पढ़ाई शिक्षा से हटा दी गई थी। और इनको पढ़ना एक गम्भीर अपराध था। पढ़ाई का अधिकार केवल पादरियों को और राजकीय परिवारों को था। उनके कोई भी शिक्षक या प्रोफेसर

पादरी होते थे। मिल, बेन्थम, मैक्यावली, एडमस्मिथ, डार्विन आदि पादरी थे। और पढ़ाई का विषय था—स्त्रियों में आत्मा नहीं होती। ये पुरुषों की सेवा के लिये, मन-बहलाव के लिये, मनोरंजन के लिये हैं। अगर ये ठीक से सेवा नहीं देती तो इनको कैसे-कैसे सजा देकर अमानुषिक ढंग से मारना था। कैसे कांटेदार चेयर पर बैठाना, खौलते हुए पानी या तेल में डालना आदि-आदि।

भारत में शिक्षा लाखों वर्ष पुरानी है, सर्वाङ्गीण है। चारों पुरुषार्थों से सम्बन्धित है। वाल्मीकि, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, चाणक्य, कपिल, सुश्रुत, वराहमिहिर, आर्यभट्ट आदि-आदि। तो हमारे लाखों वर्षों से ऋषि-महर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, विद्वान् होते आये हैं उनसे आज कोई सम्वाद नहीं है। केवल यूरोपीयन विद्वानों से सम्वाद हो रहा है। इसमें बुरा कुछ नहीं है, पर अपनी परम्परा को अस्वीकार करने की कीमत पर नहीं। ज्ञान के द्वार खुले होने चाहिएं। सब ओर से भद्र विचार आयें। भद्र विचार को परखने की योग्यता स्वयं में स्थित होकर ही हो सकती है। तभी हम विचार कर सकेंगे कौन से पश्चिम के विचार, सम्वाद हमारे अनुकूल हैं, हमारे काम के हैं। उन्हें हम अपनी परम्परा में अपनी आवश्यकतानुसार ढाल कर स्वीकार कर पायेंगे। पर आज हम अपनी परम्परा में स्थित नहीं हैं, अपनी जड़ों से कटे हुए हैं। यही कारण है कि हम उनका कचरा स्वीकार कर रहे हैं न कि उनकी अनुकरणीय श्रेष्ठ बातों को। हम उनकी अपसंस्कृति को स्वीकार कर रहे हैं जिससे वे स्वयं परेशान हैं। वे स्वयं उससे उबरना चाहते हैं। उनमें जो श्रेष्ठता है वहां Work culture की पद्धति, ईमानदारी से परिश्रम का भाव है। अपने राष्ट्र, जाति, भाषा, वेश-भूषा पर जो गौरव का भाव है जिसे हमें अपनाना चाहिए उससे हम वंचित हैं। यह तभी संभव होगा जब हम स्वयं में स्थित होंगे। तभी उनकी श्रेष्ठ बातों को स्वीकार कर सकेंगे और उनकी बुराइयों से बच सकेंगे, परहेज कर सकेंगे। इसके लिए हमें अपनी ज्ञान-परम्परा के साथ, हमारे ऋषियों, मुनियों, विद्वानों के साथ पुनः सम्वाद स्थापित करना होगा।

पश्चिम की ज्ञान-परम्परा तो तीन सौ वर्षों की है। अब उसे प्राचीन दिखाने के लिए यूनानी चिन्तकों से जोड़ रहे हैं। पर उन्होंने स्वयं ही यूनानी चिन्तकों को अस्वीकार कर दिया था। उनको पढ़ना अपराध था। मृत्यु दण्ड का विधान था। अब यदि यूनानी चिन्तकों को भी ले लेवें तो यूनानी चिन्तक अर्शमेदस के काल से न्यूटन के काल तक लगभग दो हजार वर्षों तक पश्चिम में ज्ञान-विज्ञान मृत हो गया था ईसाइयत के कारण। एक लम्बी कालावधि के बाद 18वीं शताब्दी से ज्ञान-विज्ञान की परम्परा प्रारम्भ होती है।

यूरोपीय शिक्षा पद्धति निरी भौतिकता पर आधारित अर्थ केन्द्रित है। इसमें केवल आजीविका को केन्द्र में रखकर के यह शिक्षा-व्यवस्था है जिसमें चरित्र

को, आचरण को कोई स्थान नहीं है। इसलिये अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग सच्चे अर्थ में बुद्धिमान् न बनकर धूर्त ही बनते हैं। 'Modern western education is producing not wise man but only civilized crooks in 20th century' 20वीं शताब्दी सभ्य धूर्त पैदा कर रही है। यह शिक्षा सच को झूठ करने, झूठ को सच करने, सेवा के स्थान पर शोषण करने की प्रेरणा देती है अतः साक्षर के स्थान पर राक्षस बना रही है।

इससे उद्धार तभी सम्भव है जब हम अपनी गौरवशाली परम्परा को समझकर उसका मान करना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य मानें। इसके लिए हमारी शिक्षा को पुनः सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक अधिष्ठान पर अधिष्ठित करना होगा जिसके अनुसार हम सब अमृत की संतान हैं, ईश्वर की संतान हैं-'जीवो ब्रह्म नापरः'। ईश्वर में जो गुण-सम्पदा निहित है, हम उनके पुत्र-पुत्री होने के नाते वे सभी गुण सम्पदा, यथा—अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य, अनन्त वैभव, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रेम आदि हमारे अन्दर ही निहित हैं, हमारे अन्दर ही नारायण समाये हुए हैं, अनन्त पूर्णता, दिव्यता समायी हुई है। बस उसे साधना, शिक्षा, संस्कार, तपस्या, सत्संग, ध्यान-साधना आदि के द्वारा जगाना पड़ता है नहीं तो अन्तर के नारायण अन्तर में सोये हुए ही रह जाते हैं। अन्यथा सब कुछ हमारे अन्तर में ही समाया हुआ है।

एक फ्रेंच लड़की जो केवल अपनी मातृभाषा फ्रेंच ही जानती थी, वह बहुत खतरनाक रूप से बीमार हो गयी तथा एक सप्ताह बेहोश रही। जब उसकी बेहोशी दूर हुई तब लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह अपनी मातृभाषा फ्रेंच बिलकुल भूल चुकी है और एक दर्जन अन्य भाषाओं को, जिनको उसने पहले कभी सुना भी नहीं था, अच्छी तरह पढ़ने, बोलने और लिखने लग गयी है। इस समाचार को सुनकर अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक उसके पास दौड़े गये और जब उन्होंने उस विषय में खोज की तो पाया कि उस समाचार में कुछ भी धोखा नहीं है। सब सत्य है। अन्त में उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि मस्तिष्क में सभी बातों का सम्पूर्ण ज्ञान रहता है, पर उसके प्रकाशन के दरवाजे बन्द रहते हैं जिन्हें खोलने के लिए विशेष चाबियों की आवश्यकता होती है।

कल्याण मार्च, 72, पृष्ठ 774

लेखक श्री शंकराचार्य श्री भारतीय कृष्णतीर्थ

स्पष्ट है शिक्षा तंत्र को पुनः भारतीय अध्यात्मिक अधिष्ठान पर अधिष्ठित करके ही शिक्षा की गरिमा पुनः स्थापित हो सकती है। तभी सुयोग्य राष्ट्रभक्त, आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान से परिपूर्ण नागरिक तैयार होंगे।

संस्कृत भारत की महारानी है, हिन्दी पटरानी और अंग्रेजी नौकरानी है।

—फादर कामिल बुल्के

अशोक-चक्र पर नव प्रकाश

हमारे राष्ट्रीय-चिह्न अशोक-चक्र के बारे में, जिसका प्रयोग करेंसी के नोटों, डाक की टिकटों, राजकीय प्रमाणों और सरकारी-पत्रों पर होता है—जनता में काफी भ्रम है। इस चिह्न को अशोक-चक्र का नाम देना ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत है। सारनाथ के अशोक-स्तम्भ से यह चित्र उतारा गया है। परन्तु सत्य तो यह है कि चक्र भगवान् बुद्ध का मौलिक विचार है, अशोक का नहीं।

बुद्ध भगवान् ने ही पहले-पहल सारनाथ में प्रथम उपदेश के समय धर्मचक्र का प्रयोग किया था और पवित्र पाली धर्मग्रन्थों में इसे 'धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र' कहा गया है। इसके शीर्षक से ही पता चलता है कि शक्ति द्वारा होने वाले कठोर शासन के विरुद्ध बुद्ध भगवान् ने धर्म-शासन अथवा न्याय-शासन की स्थापना का श्रीगणेश किया, जैसा कि चाइल्डर्स का कथन है।

भगवान् बुद्ध के परम भक्त अशोक ने अपने गुरु के शब्दों को स्थायी रूप में अंकित करना चाहा। अतः अशोक-स्तम्भ पर अंकित चक्र का सम्बन्ध मुख्यता, भगवान् बुद्ध से है, जिन्होंने इसे अपने राजनैतिक आदर्शवाद का प्रतीक माना, और गौणतः अशोक से। एच.जी. वेल्स ने अशोक को इतिहास के अति महान् सम्राटों में से एक माना है, क्योंकि इतने बड़े साम्राज्य का संचालन उन्होंने विश्व-शान्ति, सहिष्णुता और भ्रातृ-भाव की भावना पर किया। भगवान् बुद्ध द्वारा चिंतित धर्म-राज्य को सत्यरूप

डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी

देने का अशोक ने सफल प्रयत्न किया। अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अंगीकृत अनेक साधनों में उनका एक साधन था विदेशों में पश्चिमी शांति एवं औषधि शिष्ट-मंडल भेजना। वह शिष्ट-मंडल अनेक आवश्यक औषधियों से युक्त था और प्रत्येक प्राणी का कष्ट दूर करने का आदेश उसे दिया गया था। पत्थरों पर खुदी हुई राज घोषणायें 2 तथा 13 इस कथन को पुष्ट करती है। समाजवादी राज्य का यह आदितम उदाहरण है।

इस विषय में एक आवश्यक तथ्य यह है कि हमारी सरकार ने अपने राष्ट्र-चिह्न में जिस चक्र का उपयोग किया है, वह अशोक के चक्र से भिन्न है। उसका मूल रूप है—

(1) विशाल आकार का चक्र।

(2) पीठ से पीठ मिलाए चार सिंहों के कंधों पर वह स्थित है। जैसा कि सारनाथ के वर्तमान भग्नावशेषों में दिखाई देता है।

(3) सम्पूर्ण चक्र के मूलाधार में चार पशु बने हैं। हाथी, बैल, घोड़ा और सिंह, जो भगवान् बुद्ध के जीवन की चार अवस्थाओं—क्रमशः विचार, सहज भाव, गृह-त्याग और पूर्ण शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मूल चक्र, जो सिंहों पर आरूढ़ था, स्तम्भ से टूट कर गिर गया किन्तु सौभाग्य से उस के टुकड़े अभी भी सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। वही चक्र, जैसा कि इस लेख के चित्रों से स्पष्ट है, अब अपने मूल रूप में पुनः आ गया है।

यह चक्र एक छोटे से पत्थर की धुरी पर अवलम्बित था, जो अभी तक प्राप्त नहीं हो सका। किन्तु एक छेद से इसका होना प्रमाणित है। इस छेद का व्यास 8 इंच है, जिससे धुरी की मोटाई का पता चलता है। यह छेद चार सिंहों के चार सिरों के बीच बनाया गया है, जो अब तक अपने

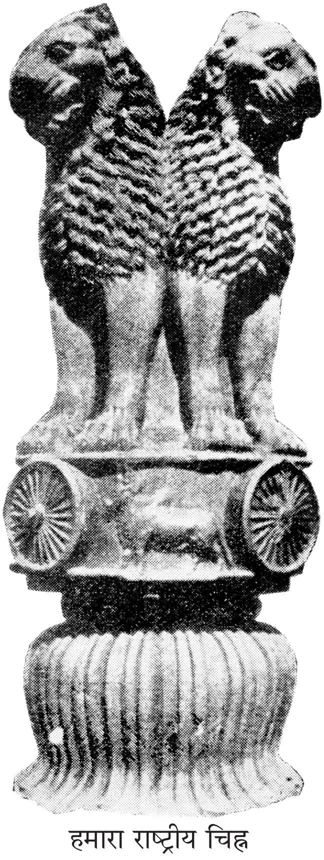

हमारा राष्ट्रीय चिह्न

प्रारम्भिक रूप में विद्यमान है। इस टूटे हुए चक्र के चार टुकड़े अब तक सुरक्षित हैं। इन टुकड़ों में 13 आरों के सिरे अब भी दिखाई देते हैं, और यह भी पता चलता है कि चक्र 32 आरों का था, न कि 24 आरों का, जैसा कि छोटे चक्र में दर्शित है। (देखिए डी. साहिनी के 'कैटलॉग ऑफ सारनाथ म्यूजियम' का पृष्ठ 28) सर जॉन मार्शल भी इस कथन की पुष्टि करते हैं।

मार्शल के 'मानुमेन्ट्स आफ सांची' से खण्ड 2-चित्र 27

चक्र अशोक-स्तम्भ का महत्त्वपूर्ण भाग था। इस कथन की पुष्टि इस बात से होती है कि दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में सांची का महान् स्तूप भी इसी के अनुरूप था। बाद में यह कलात्मक परम्परा इतनी प्रबल हो उठी कि यह दक्षिण में प्रचलित हुई और नागार्जुन कोंडा और अमरावती के स्तूप भी इसी के अनुरूप बनाए गए। इन सभी पाषाण प्रतिमाओं से यही पता चलता है कि अशोक की शिल्प परम्परा को जनता ने कितना पसन्द किया था। इसकी आजकल सुरक्षा होनी चाहिए, क्योंकि यह उस भारतीय विचारधारा से सम्बन्धित है जिसके प्रवर्त्तक भगवान् बुद्ध और अशोक महान् थे। आजकल यह चक्र बहुत ही छोटे आकार का है और महत्त्वहीन स्थान पर रखा गया है। सजावट के रूप में इसको शेरों के नीचे पशुओं की पंक्ति में रखा गया था। यह इसलिए कि अशोक के चक्र का मूलाधार पूरे आकार का एक भाग-मात्र था। अशोक के आदर्शों का यदि हम सम्मान करते हैं तो यह आवश्यक है कि चक्र को अपने सभी पत्रों, राजकीय प्रमाणों और राष्ट्र-चिह्न में अपनी पुरानी जगह, जहां कि वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था, पुनर्स्थापित करें, जैसा कि इस लेख के चित्रों से स्पष्ट है।

लाँगहर्स्ट के 'नागार्जुन कोडा' से चित्र 11 (अ)

यह चिह्न स्वयं शासन-भाव का व्यक्तिकरण तथा यह एक महत्त्वपूर्ण लाक्षणिक संकेत है, हमें इस बात को भूलना नहीं चाहिए। जैसा कि अशोक-चक्र की बनावट से पता चलता है, उन्होंने सिंहों के विशाल कन्धों पर आध्यात्मिक साम्राज्य का भार रखा, जिस का प्रत्यक्ष रूप वे अपने जीवन में देखना चाहते थे।

अतः बड़े चक्र का सिंहों पर आरूढ़ कराने का अर्थ है आध्यात्मिक शक्तियों की शारीरिक शक्तियों पर विजय। आधार पर जो चक्र सिंहों से नीचे है उसका तात्पर्य ही दूसरा है।

अशोक-स्तम्भ के प्रारम्भिक रूप में जो नये परिवर्तन कलाकारों ने बनावट को सुधारने के लिए किए हैं, उस के उदाहरण रेखा-चित्रों में अंकित हैं। सांची-स्तम्भ में चक्र उसी तरह सिंहों पर स्थित है जैसा कि सारनाथ के अशोक-स्तम्भ में। परन्तु सांची के दूसरे स्तूप में सौन्दर्य के लिए सिंहों के स्थान पर हाथी लगाए गए हैं, जो कि उन्हीं की तरह शारीरिक शक्ति के प्रतीक हैं और भारत के साथ विशेष रूप से सम्बन्धित है। साथ ही हाथी सौन्दर्य, शक्ति और गौरव के प्रतीक हैं।

स्मरण रहे कि सांची की मूर्तियों में सिंहारूढ़ चक्र सात सहायक आधारों पर निर्मित हैं। इन सात आधारों के चित्र मारशल के 'मानुमेन्दस ऑफ सांची' में चित्र संख्या 27, 40, 69, 74, 82, 103 और 108 पर हैं। त्रिगजारूढ़-चक्र इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 86 पर अंकित है।

मार्शल के 'मानुमेन्ट्स आफ सांची' से खण्ड 4-चित्र 86

इन दोनों चक्रों के विषय में ध्यान देने की बात यह है कि अशोक-स्तम्भ के ऊपर वाले बड़े चक्र में 32 आरे थे जब कि नीचे वाले छोटे चक्र में केवल 24। यह 32 आरे पाली धर्मग्रन्थ के अनुसार महापुरुष के 32 लक्षणों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन लक्षणों के कारण बुद्ध को महापुरुष की संज्ञा दी जाती है। ये लक्षण 'दिघ' तथा 'विशुद्धिमग्ग' बौद्ध धर्मग्रन्थों में लिखे हैं। महापुरुष की पदवी, पाली ग्रन्थों के अनुसार, महान् व्यक्तियों-विशेष कर बुद्ध या चक्रवर्ती सम्राटों को ही दी जाती है। भगवान् बुद्ध के शारीरिक अथवा 32 गुणों के प्रमाण स्वरूप उनके पैर के तलवों पर चक्र का चिह्न अंकित था। दूसरे चक्र के 24 आरे बौद्धमत के 24 मुख्य सत्यों के प्रतीक है, जो 24 धम्म कहलाते हैं।

डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी

साभार : नवम्बर 4, 1956, भारती

धर्मान्तरण द्वारा धर्म पर डाका एवं राजनीति पर लगाम

1. धर्मान्तरण द्वारा 1666 वर्ष पूर्व सूर्यपूजक यूरोप को ईसाई बना दिया गया। रोम का सूर्यपूजक राजा कॉँस्टेंटाइन यूरोप का प्रथम धर्मान्तरित ईसाई राजा बना।
2. धर्मान्तरण द्वारा 486 वर्ष पूर्व शिव पूजक मैक्सिको एवं अमरीका के रेड इण्डियन्स को ईसाई बना दिया गया। पूरे कनाडा देश को भी ईसाई बना दिया गया।
3. धर्मान्तरण द्वारा आस्ट्रेलिया के प्रकृति पूजक वनवासियों को ईसाई बना दिया गया तथा वहाँ यूरोप की गोरी जातियों का शासन हो गया।
4. धर्मान्तरण द्वारा 458 वर्ष पूर्व दक्षिणी चीन समुद्र में स्थित महाकलिंग द्वीप-समूह को ईसाई बना कर स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर फिलिपाइन नाम दे दिया गया।
5. धर्मान्तरण द्वारा भारत के नागा प्रदेश को नागालैण्ड नामक 'न्यू इंग्लैण्ड' बना दिया गया।
6. धर्मान्तरण द्वारा मिजोरम और मेघालय में भी ईसाई राज्य स्थापित हो गए।
7. धर्मान्तरण द्वारा शेष भारत को भी ईसाईस्तान में परिवर्तित करने का षड्यन्त्र चल रहा है। धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण हो जाने का भय है।

'यदि भारत को बचाना है, तो पादरी को भगाना है।'

27 मई 1979 में प्रकाशित

संस्कृति विहार, अपर बाजार, रांची

जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे

'....अरे वह नास्तिक कैसे!!' ज्यों ही वे विशाल भवन से निकले, एक व्यक्ति ने अचम्भे से कहा, 'और हम लोग उनके देश में प्रचारक भेजते हैं। इससे अधिक उपयुक्त तो यही होगा कि वे ही हमारे देश में प्रचारक भेजें।

—डॉ. एनी बीसेण्ट

(शिकागो धर्म-सम्मेलन में, स्वामी विवेकानन्द की झांकी, 1893)

भारत में पादरी भेजना मूर्खतापूर्ण

'वे (स्वामी विवेकानन्द) निस्सन्देह शिकागो धर्म सम्मेलन में महानतम विभूति हैं। उन्हें सुनने के पश्चात् हम अनुभव करते हैं कि इस ज्ञानवान राष्ट्र में ईसाई पादरी (मिशनरी) भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।'

—दि न्यूयार्क हेरल्ड

ईसाई पादरियों को स्पष्ट चेतावनी

'आप (पादरी) लोगों को शिक्षित और प्रशिक्षित करते हैं, उन्हें वस्त्र-विभूषित करते हैं तथा उन्हें वेतन देते हैं—यह सब किसलिए? क्या मेरे देश में आकर मेरे पूर्वजों को, मेरे धर्म को तथा मेरे देश की प्रत्येक वस्तु को गाली एवं अभिशाप देने के लिए? वे मन्दिर के निकट से गुजरते हुए कहते हैं, 'अरे मूर्ति पूजको! तुम सभी नरक में जाओगे।' परन्तु हिन्दू विनम्र होता है, वह हँसता है और यह कहता हुआ चला जाता है, 'मूर्खों को बकने दो।'

....और जब कभी तुम्हारे पादरी हम लोगों की आलोचना करते हैं उन्हें यह याद रखना चाहिए, यदि समस्त भारत खड़ा हो जाय और हिन्द महासागर के तल का सारा कूड़ा-कचरा लेकर पश्चिमी देशों के मुख पर फेंक दे, तो भी जो अत्याचार तुम हम लोगों के प्रति करते हो, उसकी तुलना में यह कार्य अणुमात्र भी न होगा।'

—स्वामी विवेकानन्द

(डिट्रायट में ईसाई पादरियों के प्रति)

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 317-318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)

स्वार्थ एवं तलवार द्वारा धर्मान्तरण

'तुम्हारी सारी थोथी डींग एवं दर्प-वाचालता के उपरान्त भी तुम्हारी ईसाइयत बिना तलवार के कहाँ सफल हुई है? सारे संसार में मुझे एक भी स्थान तो दिखाओ, केवल 'एक', मैं कहता हूँ ईसाई धर्म के समस्त इतिहास में केवल एक उदाहरण दिखाओ; मैं दो नहीं चाहता। मैं जानता हूँ तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार धर्मान्तरित हुए। उन्हें या तो धर्मान्तरित होना पड़ता अथवा मृत्यु के घाट उतरना पड़ता। यही अन्तिम निर्णय था। प्रत्येक वस्तु, स्वार्थ जिसका आधार है, प्रतिस्पर्धा ही जिसका दायाँ हाथ है और विलास ही जिसका लक्ष्य है, उसका विनाश आज या कल अवश्यंभावी ही है।'

—स्वामी विवेकानन्द

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कलकत्ता)

निष्काम कर्म गीता का ज्ञान
लोभ से धर्म पादरी की शान

× × ×

पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग है—थल सेना, जल सेना, वायु सेना और चर्च।

—श्री जे.सी. कुमारप्पा प्रख्यात गाँधीवादी ईसाई विचारक

× × ×

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखाई देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। इस दृष्टि से तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

× × ×

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(पंचतंत्र 3.192)

जहाँ अयोग्य का सम्मान हो, योग्य का तिरस्कार हो वहाँ तीन बातें—अकाल, मौत और भय है। (आज यही राष्ट्र में हो रहा है।)

डॉ. राधाकृष्णन उवाच

ईसाई कुप्रचार द्वारा भारतीय श्रद्धाओं पर भीषण आघात

'ईसाई धर्म प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है।.... वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहाई देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएँ करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के उन स्तम्भों को हिला डाला जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

क्रिश्चियन कालेज मद्रास में विद्यार्थी जीवन के अनुभव

—फ्रैग्मेंट्स आव ए कन्फेशन

हिन्दुत्व का स्वाभिमान

'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्‌गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कालेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मेरे लिए यह मान लेना अत्यन्त कठिन कार्य था कि हिन्दू ऋषि और उपदेष्टा, जिन्होंने हमारे युग के लिए भारत की इस प्राचीन संस्कृति के साथ जीवित सम्पर्क को सुरक्षित बना रखा है, जो कि हमारे अधिकांश ज्ञान एवं हमारी समस्त साधना का मूल स्रोत है, स्वयं वे (ऋषि) भी सच्चे धार्मिक व्यक्ति नहीं थे।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृष्ठ 5)

ईसाई आलोचक

'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित होकर मैं हिन्दुत्व का विधिवत् अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (माई सर्च फार ट्रुथ, पृ. 9)

वर्तमान ईसाइयत ईसा के विरुद्ध खुला विद्रोह

'ईसाइयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह हैं। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाय तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नीत्से (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलिजन, पृ. 67-68

बल प्रयोग द्वारा धर्म प्रचार

यदि हम लोग यह समझते हैं कि दूसरों को क्षति पहुंचाकर भी बल प्रयोग द्वारा हमें अपने-अपने धर्म का प्रचार करने का इसलिए अधिकार है कि हमारा धर्म अन्य धर्मों से ऊँचा है, तो हम नैतिक आत्म विरोध के दोषी हैं क्योंकि अन्याय, अत्याचार और दासता तो अध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और उच्चता के ठीक निषेध हैं। **—डॉ. राधाकृष्णन्**

× × ×

भारत में ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण, ईसाई पंथ के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने की एक-समान वैश्विक नीति का अंग है। इसका मूल प्रयोजन है कि इसके माध्यम से पश्चिम का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया जा सके। यह किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित नहीं है। प्रत्यक्षतया उनका उद्देश्य यह है कि ईसाई बहुल क्षेत्र स्थापित किये जाएं, ताकि गैर-ईसाई समुदायों की एकता को भंग किया जा सके। इस दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से जनजातियों के एक बड़े वर्ग का सामूहिक धर्मान्तरण राज्य की सुरक्षा के लिये एक भारी संकट का सूचक है।

—डॉ. बी.एम. नियोगी

इसलाम-ईसाइयत पर प्रबुद्धों के विचार

औरंगजेब बलवान और प्रतापी बादशाह था। उसके समय में इस्लाम की सुयश पताका बहुत ऊंचे पर पहुँच गई। कुफ्र और ईमान के संघर्ष में वह हमारे तरकस में (आखिरी) तीर था। जब नास्तिकता का नापाक बीज, जिसका पालन अकबर ने किया था, दारा के हृदय में अंकुरित हुआ, तो धर्म की ज्योति मंद पड़ने लगी। तब खुदा ने धर्म-रक्षा के लिए आलमगीर को खड़ा किया। उसकी तलवार ने पाप और अपवित्रता की फसल में आग लगा दी और धर्म की मशाल फिर प्रज्वलित हो उठी। मिली-जुली संस्कृति दारा के साथ समाप्त हो गई।

—डा. इकबाल

यह उर्दू आन्दोलन नहीं, अपितु मुस्लिम आन्दोलन है। उर्दू कोई भाषा थोड़े ही है। जिसकी अपनी लिपि नहीं, व्याकरण नहीं, वह कैसी भाषा? उर्दू की तो आड़ मात्र है उसके पीछे तो अराष्ट्रीय व विघटनात्मक तत्त्वों का षड्यन्त्र है कि किसी भी प्रकार से दूसरे पाकिस्तान की मांग उठायी जाए। यदि इस तथाकथित उर्दू आन्दोलन को सख्ती के साथ नहीं दबाया गया तो देश के सम्मुख भीषण खतरा उत्पन्न हो जाएगा। **—गुरुजी (माधवराव सदाशिव गोलवलकर)**

अगर अमीन खिराज में काफिर (हिन्दू) से चांदी मांगे तो उसे सोना देने को तैयार रहना चाहिए। यदि वह काफिर के मुंह में थूकना चाहे तो उसे अपना मुंह खोल देना चाहिए। काफिरों को लूटने, उन्हें दण्ड देने और मारने की आज्ञा अल्लाह ने मुसलमान शासक को दी है। ऐसा करके वह इस्लाम की सेवा करता है जो अल्लाह का ही कार्य है, अतः इसके लिए मुसलमान को कयामत के दिन कोई सजा नहीं मिलेगी। **—जियाउद्दीन-बरनी-तारीख-ए-फीरोजशाही**

विधि की विडम्बना देखो। यूरोपवासियों के देवता ईसा मसीह ने सिखाया— 'किसी से वैर मत करो, जो तुम्हें गाली दे उसे भी आशीर्वाद दो, यदि कोई तुम्हारे बाएं गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसकी ओर दाहिना गाल भी कर दो, सब काम-काजों को त्याग कर परलोक की तैयारी करो, क्योंकि संसार का अंत निकट है? इसके विपरीत हमारे कृष्ण गीता में कहते हैं, 'सदैव महान् उत्साह से कर्म करो, अपने शत्रुओं का विनाश कर संसार का भोग करो।' किन्तु अन्त में जो कृष्ण या ईसा मसीह चाहते थे, उसका बिल्कुल उलटा हो गया। **—स्वामी विवेकानन्द**

सुमित्रानन्दन पंत उवाच

सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में हिन्दुओं में, जीने की इच्छा दृढ़ नहीं है। हिन्दू लोग जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। वे लोग असंदिग्ध रूप से इहलोक की अपेक्षा परलोक में अधिक विश्वास करते हैं। उनमें जीवन की इच्छा का अभाव है और इसी कारण उसमें साहस की भावना भी नहीं है।' फ्रांस की क्रान्ति के रूप में डाल्टन का नारा था—'साहस करो, अब भी साहस करो, सदा ही साहस करो।' यदि हिन्दू भारत जीवित रहना चाहता है तो इसे यह शूरता और आक्रामकता का संदेश ग्रहण करना होगा। वीरतापूर्ण जीवन का यह तो पुरातन वैदिक संदेश ही नये आवरण में है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' केवल वीर और साहसी ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं। आक्रमणशीलता जीवन है, इसका अभाव मृत्यु है।

हिन्दुओं का दृष्टिकोण प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में 'जाने दो भाई' की वृत्ति का है, मानो इस जीवन का उनके लिए कोई अर्थ नहीं है। इस वृत्ति का त्याग करना होगा।

डॉ. अब्दुल कलाम उवाच

डॉ. अब्दुल कलाम ने अपनी पुस्तक इण्डिया मिशन 2020 में हमारी पांच सभ्यतागत कमजोरी को गिनाया है—

1. अत्यधिक सहनशीलता और अल्प अनुशासन। हम सहनशीलता पर गर्व करते हैं। अत्यधिक सहनशीलता कोई सद्‌गुण नहीं है इतिहास ने बार-बार हमें सिखाया है। 2. प्रतिकार प्रतिशोध के भाव का अभाव। हम प्रतिशोध ले नहीं सकते। ईसा-मसीह ने ईसाइयों को कहा कि अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। परन्तु ईसाई सभ्यता ने ऐसा कभी नहीं किया। हमारी पूरी सभ्यता में ऐसा किसी ने नहीं कहा, न किसी भगवान् ने, न किसी सद्ग्रंथ ने कि 'अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो' परन्तु हम हमेशा ऐसा ही करते हैं, हममें प्रतिशोध लेने की भावना नहीं है यह दूसरी सभ्यतागत न्यूनता है। 3. अतिथि देवोभवः—विदेशियों, विधर्मियों को स्वीकार करने में अत्यधिक लचीलापन। बाहर से कोई भी आये—चाहे दूसरा धर्म हो, चाहे दूसरा राजा अथवा कोई पूर्णतया अजनबी, उनकी ओर तुरन्त श्रद्धामय हो जाते हैं, जबकि अपने ही लोगों को स्वीकार करने में हम कम उदार होते हैं। 4. वंशवाद के प्रति मोह। 5. साहसिक कार्यों की बजाय व्यक्तिगत सुरक्षा को महत्त्व देना।

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग ८0 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 1९-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखैल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज के दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।

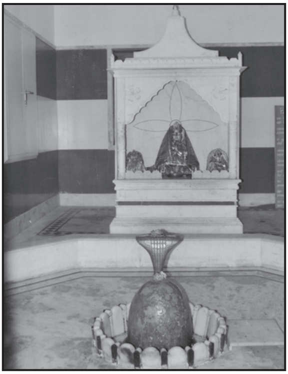

भक्तानन्द शिव मन्दिर

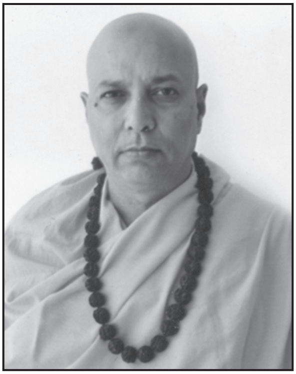

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

पन्द्रह अक्टूबर 1956 (विजयादशमी) को जन्मे स्वामी संवित् सुबोधगिरि ने दर्शन शास्त्र से एम.ए. (रांची विश्वविद्यालय 1980-81) कर अध्यात्म-साधना एवं भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति-परम्परा एवं राष्ट्रीय इतिहास के अध्ययन में पूर्णकालिक प्रवृत्त।

एकेडमी ऑफ इंडियन कल्चर के संस्थापक डॉ. हरवंशलाल ओबराय के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक इतिहास एवं भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति पर व्यापक कार्य।

स्वामी देवानन्द ब्रह्मचारीजी (प्रेम मन्दिर आश्रम, रिषड़ा) से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा और उनके सान्निध्य में साधना एवं स्वाध्याय—6 दिसम्बर 1992 से 12 मार्च 1999 तक। उन्हीं के निर्देश पर अनन्तश्री विभूषित पूर्वाम्नाय जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धन पीठाधीश्वर स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज के सान्निध्य में स्वाध्याय एवं साधना—प्रति चतुर्मास में 1993 से 2000 तक नियमित, फिर अनियमित।

सम्प्रति स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज से संन्यास दीक्षा ग्रहण कर उनके सान्निध्य में स्वाध्याय, साधना एवं प्रकाशन का दायित्व निभाया—20 मार्च 1999 से 13 जून 2012 तक। डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र (पांच खण्डों 2688 पृष्ठों में) संकलित, सम्पादित एवं प्रकाशित किया परमपूज्य महाराजश्री के आशीर्वाद से।

14 जून 2012 को भैरवगिरि मठ के महन्त परम श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दगिरिजी महाराज एवं श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर शिवबाड़ी के महन्त परम पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज, दोनों ने संयुक्त रूप से नृसिंह भवन संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर भीनासर (बीकानेर) के महन्त पद का दायित्व देकर उस पर अभिषिक्त किया।

प्रकाशन

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को खण्डशः विषयानुसार 26 पुस्तकों में प्रकाशित किया जिसमें दो पुस्तकें सुबोधगिरि की हैं। समग्र में प्रकाशित चार पुस्तकों में डॉ. ओबराय के साथ सुबोधगिरि सहलेखक हैं। समग्र से अतिरिक्त स्वयं सुबोधगिरि की चार और पुस्तकें भी प्रकाशित—

(1) राष्ट्रीय समस्या और समाधान (प्रथम संस्करण, पृ. 88)
(2) राष्ट्रीय समस्या और समाधान (द्वितीय संस्करण, पृ. 312)
(3) गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष (गीता का पहला और दूसरा अध्याय)
(4) भक्तियोग (गीता का बारहवां अध्याय)
(5) भारतीय संस्कृति, पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान
(6) भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ
(7) योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण (संयुक्त)
(8) गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा (संयुक्त)
(9) भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय (संयुक्त)
(10) भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप (संयुक्त)

पूरे मठ का जीर्णोद्धार सम्पन्न हुआ। जन सहयोग से मन्दिर के लिए नये भवन का निर्माण, नव-निर्माण व जीर्णोद्धार और अन्य नये आयाम भी जुड़ते जा रहे हैं। यू.आई.टी. अध्यक्ष श्रीमान् मकसूद अहमदजी के सहयोग से आश्रम के बाहर सीसी रोड का निर्माण हुआ। सन्त कुटीर का निर्माण श्री तरुण कुमार सोलंकी एवं श्रीमती सुशीला देवी के सहयोग से हुआ। विवेकानन्द वाचनालय का निर्माण (श्रीमान् गोपाल जोशी के) विधायक कोटे से हुआ। सांस्कृतिक भवन का निर्माण कार्य चल रहा है (श्रीमान् अर्जुनराम मेघवाल के) सांसद कोटे से। श्री मूलचन्द डागा के सहयोग से प्याऊ का निर्माण हुआ।

आगामी योजनाएं और कार्यक्रम

शौचालय, स्नानघर, रसोड़ा, भण्डार, मुमुक्षु आवास का निर्माण; सांस्कृतिक भवन का निर्माण कार्य पूर्ण होने के पश्चात् लॉन और बगीचा विकसित करना। सांस्कृतिक भवन में नियमित योग कक्षाओं का संचालन; साप्ताहिक बाल-संस्कार-केन्द्र संचालन; वर्ष में दो बार चिकित्सा शिविर का आयोजन। इसके अलावा भी छोटे-छोटे सेवा कार्य करना। भजन, सत्संग और देव-आराधन की व्यवस्था करना। इन सबके लिए जन सहयोग अपेक्षित है।

मो. 09413769139